"विशद शास्त्र संग्रह"

पद्यानुवाद :

प. पू. क्षमामूर्ति आचार्य श्री विशद सागर जी महाराज

कृति	–	**विशद शास्त्र संग्रह**
कृतिकार	–	प.पू. साहित्य रत्नाकर, क्षमामूर्ति आचार्य श्री 108 विशदसागर जी महाराज
संस्करण	–	प्रथम–2023, प्रतियां : 1000
संकलन	–	मुनि श्री 108 विशालसागर जी महाराज
सहयोग	–	आर्यिका 105 श्री भक्तिभारती क्षुल्लिका 105 श्री वात्सल्य भारती
संपादन	–	ब्र. ज्योति दीदी 9829076085 ब्र. आस्था दीदी 9660996425 ब्र. सपना दीदी 9829127533 ब्र. आरती दीदी 8700876822
प्राप्ति स्थल	–	1. विशद साहित्य केन्द्र – 9416888879 श्री दिगम्बर जैन मंदिर, कुआँ वाला जैनपुरी–रेवड़ी 2. लाल मंदिर, चाँदनी चौक, दिल्ली 3. रोहिणी सेक्टर–3 दिल्ली– 9810570747
मूल्य	–	101/– रुपये मात्र

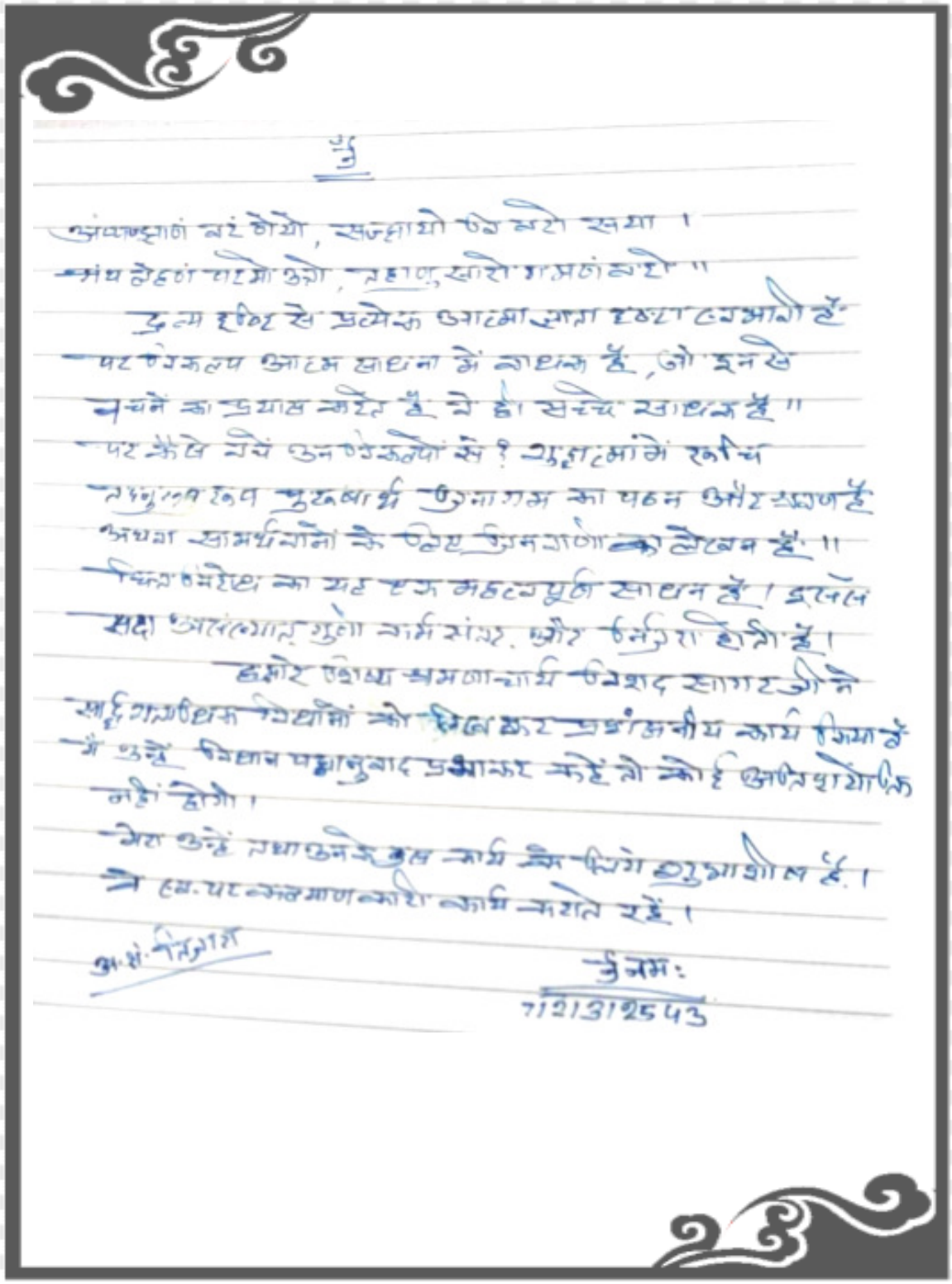

पत्र

संवत्सराणं वरं वीरो, सज्झायो वेव वरो तवा ।
संघ लेहणं चरमो उवो, नहाण खीरो रासजंबरो ॥

द्रव्य दृष्टि से प्रत्येक आत्मा समान होता हुआ भी
पर्याय की अपेक्षा आत्म साधना में बाधक है, जो इनसे
बचने का प्रयास करते हैं वे ही सच्चे साधक हैं ॥
पर कैसे बचें उन पर्यायों से ? शुद्धात्मा में रुचि
अनुभव तथा सुरक्षार्थ उपागम का पठन और श्रवण है
अथवा सामर्थ्यानुसार उनका लेखन है ॥
चित्त समाधि का यह एक महत्वपूर्ण साधन है । इसमें
सदा आत्मलाभ गुणों का संग्रह और निर्जरा होती है ।
हमारे परोपकारी श्रमणाचार्य उपाध्याय सागरजी ने
साधु साध्वियों को लेकर प्रशंसनीय कार्य किया है
मैं उन्हें विधान पद्धानुवाद प्रभाकर कहूं तो कोई अतिशयोक्ति
नहीं होगी ।
मेरा उन्हें तथा उनके इस कार्य में लगे सभी को शुभाशीष है ।
वे हम पर कल्याणकारी कार्य करते रहें ।

अ.भ. निर्मल

जैनम:
7213325423

विशद शास्त्र संग्रह

ज्ञान सुरवि की रोशनी, घट घट करे प्रकाश।

विशद ज्ञान का जीव को, नित प्रति करे विकास॥

मोक्षमार्ग हो या संसार वास हर जगह ज्ञान का अपना स्थान विशिष्ट होता है ज्ञान जहाँ संसार के सर्व कार्यों में जीवों को सुख शांति आनन्द प्रदायक है वहीं मोक्षमार्ग में सम्यग्ज्ञान का अपना स्थान विशेष है। सम्यग्ज्ञान वह प्रकाश है जिसके आलोक में सर्व चराचर पदार्थ या मूर्त अमूर्त पदार्थ झलकते हैं जिससे हिताहित का विवेक जागृत होता है और इंसान अपने हित का कार्य करने में सफल होता है। कहा भी है-

'बिन जाने तो दोष गुणन को, कैसे तजिए गहिए'

ज्ञान की प्राप्ति में शास्त्रों का अपूर्व योगदान होता है कहा भी है -

अंधकारमय क्षेत्र जहाँ, आदित्य नहीं है।

अंधा है वह देश जहाँ, साहित्य नहीं है॥

अर्थात् साहित्य के अभाव में कभी कोई विकास नहीं कर पाए हैं ज्ञान के विकास हेतु सत् साहित्य की अहं भूमिका रही है अतः जैन वाङ्मय के विशिष्ट ग्रन्थ जो भव्य जीवों के कल्याण हेतु विशद सेतु हैं उनका अर्थ पद्यानुवाद करके सरल कर लोगों को स्वपर भेद की प्राप्ति हो सके इसलिए साहित्य संकलन कर 'विशद शास्त्र संग्रह' लोगों तक पहुँचे।

भेद ज्ञानं विना शुद्धे चिद्रूप ज्ञान सम्भवः।

भवेत्रेव यथा पुत्र सम्भूतिर जनकं बिना॥

जिस प्रकार पुरुष के बिना स्त्री के पुत्र नहीं हो सकता है उसी प्रकार बिना भेद विज्ञान के शुद्ध चिद्रूप आत्मा का ध्यान भी नहीं हो सकता है। आचार्य श्री ज्ञान भूषण जी ने सुन्दर उदाहरण देते हुए कहा है कि कभी पुरुष के संयोग बिना स्त्री पुत्र को जन्म नहीं दे सकती है उसी प्रकार भेद ज्ञान के बिना शुद्धात्मा का ध्यान संभव नहीं है और भेद ज्ञान प्राप्त करने के लिए सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होना आवश्यक है तथा सम्यग्ज्ञान के द्वारा आत्मा में दृढ़ता आ सकती है ज्ञान वह आलोक है जिसके द्वारा अन्धकार हो या प्रकाश, मध्यलोक हो या अधोलोक या ऊर्ध्वलोक कहीं से भी वस्तु तत्त्व को जाना जा सकता है उस ज्ञान के लिए सत्साहित्य का ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है

ज्ञान की वृद्धि के लिए हमारे पूर्व आचार्यों ने भम्र व सत्य होकर अनेक ग्रन्थों की रचना की है किन्तु वर्तमान में लोग संस्कृत ज्ञान से नामिज्ञ हो रहे है अतः कतिपय ग्रन्थों का हिन्दी पद्यानुवाद करके उनको संकलित कर लोगों तक पहुँचाने का अल्प प्रयास किया है। सभी आत्माराधक साधक उनसे लाभ प्राप्त कर सके यही भावना है।

इसके पूर्व विशद पंचागम का प्रकाशन किया गया था जो लोगों ने बहुत पसंद किया उसकी सराहना कई स्थानों पर लोगों से सुनी गई। उसी को ध्यान में रखते हुए यहाँ (तत्त्वसार, योगसार, रयणसार, समाधितंत्र, वारसाणुपेक्खा, लघु द्रव्य संग्रह) ग्रन्थों का संग्रह किया गया है जो भव्य जीव अध्ययन करके सम्यग्ज्ञान की वृद्धि करते हुए रत्नत्रय के मार्ग पर अग्रसर होकर मुक्ती के राही बनें। ब्र. सपना दीदी न इस ग्रंथ में अपना सहयोग देकर मूर्त रूप दिया उनके लिए हमारा मंगल आशीर्वाद। जिन भव्य जीवों के द्वारा यह ग्रंथ प्रकाशित हो रहा है उनको बहुत बहुत आशीर्वाद जिन्होंने अपने धन के महत्व को समझकर ज्ञानदान में सहयोग दिया।

आ. विशद सागर

अहो आत्मन्

यह संसार असार है संसार की माया बड़ी सुहावनी है, संसार में जो जीव है वह उस माया के चक्र में मोहित होकर भ्रमित होते रहते है। जीव के अनादि से कर्म की वासना लगी हई है, कर्म के कारण जीव कषायों में वृद्धि हो रहे है कषाय के तीव्र, तीव्रतर, तीव्रतम भेद हैं एवं मंद, मदतर, मंदतम इस प्रकार से 6 अवस्थाएँ हैं। सामान्तयः कषाय उदय में रहती है जिनसे मध्यमभर्म्माश बन्धते है और जीव चतुर्गति में जिनके फल से भ्रम से है। तीव्रतम कर्म का उदय कभी-कभी होता है तब ही उत्कृष्ट अनुभाग स्थिति बंध होता है इसके विपरीत जब मन्दतम कषाय परिणाम होते है तब जीव के कर्म का जघन्य बन्ध होता है और पूर्वकृत कर्म का क्षय तीव्रता से होता है यह कर्म बन्ध की प्रक्रिया ही कुछ इस प्रकार की है। जब अज्ञान दशा होती है तब कषाय का आवेग होता है और जब ज्ञान की दशा आती है तो पश्चाताप का दौर चलता है तीव्र कषाय में जिस प्रकार कर्म का तीव्र बन्ध होता है तब बन्धते है और पश्चाताप में कर्म उसी तीव्र गति से कटते है यह भावों का खेल है अतः प्रतिदिन अपने भावों की निगरानी करना चाहिए।

विशाल हृदय के उद्‌गार

'स्व' अर्थात् आत्मा के हित के लिए अध्ययन करने को स्वाध्याय कहते हैं वाचना, पृच्छना, अनुप्रेक्षा, आम्नाय, धर्मोपदेश ये पाँच स्वाध्याय के भेद हैं।

स्वाध्याय करने से सदाचार का पालन होता है, इन्द्रियों का दमन होता, रागद्वेष आदि विकारों की मंदता होती, मन की चंचलता रुकती, कर्मों की निर्जरा होती, सद्‌गुणों का विकास होता, परिणामों में निर्मलता होती, आत्मा में विशुद्धि बढ़ती और मोक्षमार्ग प्रशस्त होता है। पंचम काल में परिणामों को वश में करने वाली और समाधि के समय परिणामों को सम्भालने वाली अगर कोई विद्या है तो वह स्वाध्याय ही है। समवशरण में तीर्थंकर की दिव्य ध्वनि खिरती है। गणधर उसे ग्रहण करते है। गणधर से प्राप्त कर आचार्यों ने उसे लिपिबद्ध किया जो हमें आज आगम के रूप में पढ़ने को मिल रही है। साक्षात् हमें तीर्थंकर का समागम नही मिला, उनका दिव्य संदेश सुनने को नही मिला परन्तु तीर्थंकर की वाणी आज भी जीवित है और वह हमें आचार्यों के द्वारा सुनने को एवं शास्त्रों में पढ़ने को मिल रही है।

शास्त्र बहुत है परन्तु काल अल्प है, हमारा जीवन छोटा है, हमारा जीवन इतना लघु है कि अनंत शास्त्रों का अध्ययन तो बहुत दूर की बात है उन अनंत शास्त्रों के हम अपनी जिंदगी में पन्ने भी नहीं पलट सकते। पढ़ना, समझना तो दूर की बात है। इसलिए हमें सारभूत ग्रहण करके उसकी श्रद्धा के साथ उपासना करनी चाहिए। जिस प्रकार हंस केवल दूध पीकर पानी छोड़ देता है उसी प्रकार हमें भी वही पढ़ना चाहिए जिससे हमारी जन्म मरण की परम्परा का क्षय हो जाये।

वर्तमान के सर्वाधिक 300 प्रकार के पूजन, विधानों के रचयिता परम पूज्य आचार्य गुरुवर श्री 108 विशदसागर जी महाराज ने इष्टोपदेश, छहढाला, रत्नकरण्डक श्रावकाचार आदि 30 प्रकार के शास्त्रों का पद्यानुवाद एवं विस्तार किया है उन्हीं में से एक यह (तत्त्वसार, योगसार, रयणसार, समाधितंत्र, वारसाणुपेक्खा, लघु द्रव्य संग्रह) विशद शास्त्र संग्रह भी है।

आशा है यह पुस्तक भक्तों के लिए मोक्ष मार्ग में आगे बढ़ने में हेतु बनेगी। इसी भावना के साथ गुरुवर के श्री चरणों में शत् शत् नमन। संघस्थ ब्र. सपना दीदी ने इस पुस्तक के प्रकाशन में विशेष सहयोग प्रदान किया उन्हें शुभाशीष।

मुनि विशालसागर

वर्षायोग 2022 श्री सम्मेद शिखर जी

गुरु की छांव तले

''प्रातरुत्थाय कर्त्तव्यं देवता गुरु दर्शनम्''

जिनागम से जिनदर्शन और जिनदर्शन से निजदर्शन की सुप्त शक्ति का जागरण करना ही देव-दर्शन है।

जीवन का सत्य वैराग्य है। वैराग्य से विमुखता ही संसार है। जीवन का सार वैराग्य के शोधन के सिवा कुछ भी नहीं है जीवन के प्रत्येक क्षण में वैराग्य खोजा जा रहा है, जो कि वहाँ है ही, तब ही समझें कि मनुष्य होने का सार पा लिया, वरना जीवन जन्म लेने और मर जाने के अलावा कुछ नहीं रहता।

खोजी व्यक्ति वह है जो जो दिख रहा है, उस पर विश्वास नहीं करता, अपितु जो दिख रहा है, उसके रहस्य में प्रवेश करता है। हम सभी संसारी जीव हैं। हम सभी ने संसार देखा, संसार का सार जो दुःख है वह नहीं देखा, संसार भोगों को हमने विज्ञान की देन समझा, संसार के गर्भ में स्थित रूपी वृक्ष व उसकी पुनः संसार रूपी संतति को हमने नहीं समझा। अगर समझा है तो वे हैं मेरे गुरुदेव जिन्होंने अपने जीवन को संयम से सजाया है, वैराग्य की बगिया को खुशबू से महकाया है और रोम रोम में ज्ञान की ज्योति जलाई हैं। जिस गाँव में गुरुदेव ने जन्म लिया वहाँ की माटी भी पवित्र, वहाँ के पेड़-पौधें की सुगंध, मधुर सुरम्यता से भरी है ऐसा लगता है गुरुदेव की वाणी में मधुरता, वात्सलता है वह लेखनी में भी दिखती है कभी-कभी बोल देते गुरुदेव कि कम्प्यूटर की बैटरी डिस्चार्ज हो जाती है लेकिन गुरुदेव की लेखनी बंद नहीं होती। ऐसे गुरुदेव जिन्होंने अनेक शास्त्रों का पद्यानुवाद करके एक शास्त्र का रूप दिया है। तुम चाहो तो गागर में सागर भी भर सकते हो, तुम चाहो तो बादल बन बसुन्धरा भर सकते हो, तुम चाहो तो ज्ञाता दृष्टा, तीर्थंकर बन सकते हो। ऐसे गुरुदेव के श्री चरणों में त्रय भक्तिपूर्वक नमोस्तु

चरण चंचरिका
संघस्थ आचार्य श्री विशदसागर जी
ब्र. सपना दीदी
सिद्धक्षेत्र सम्मेद शिखर जी

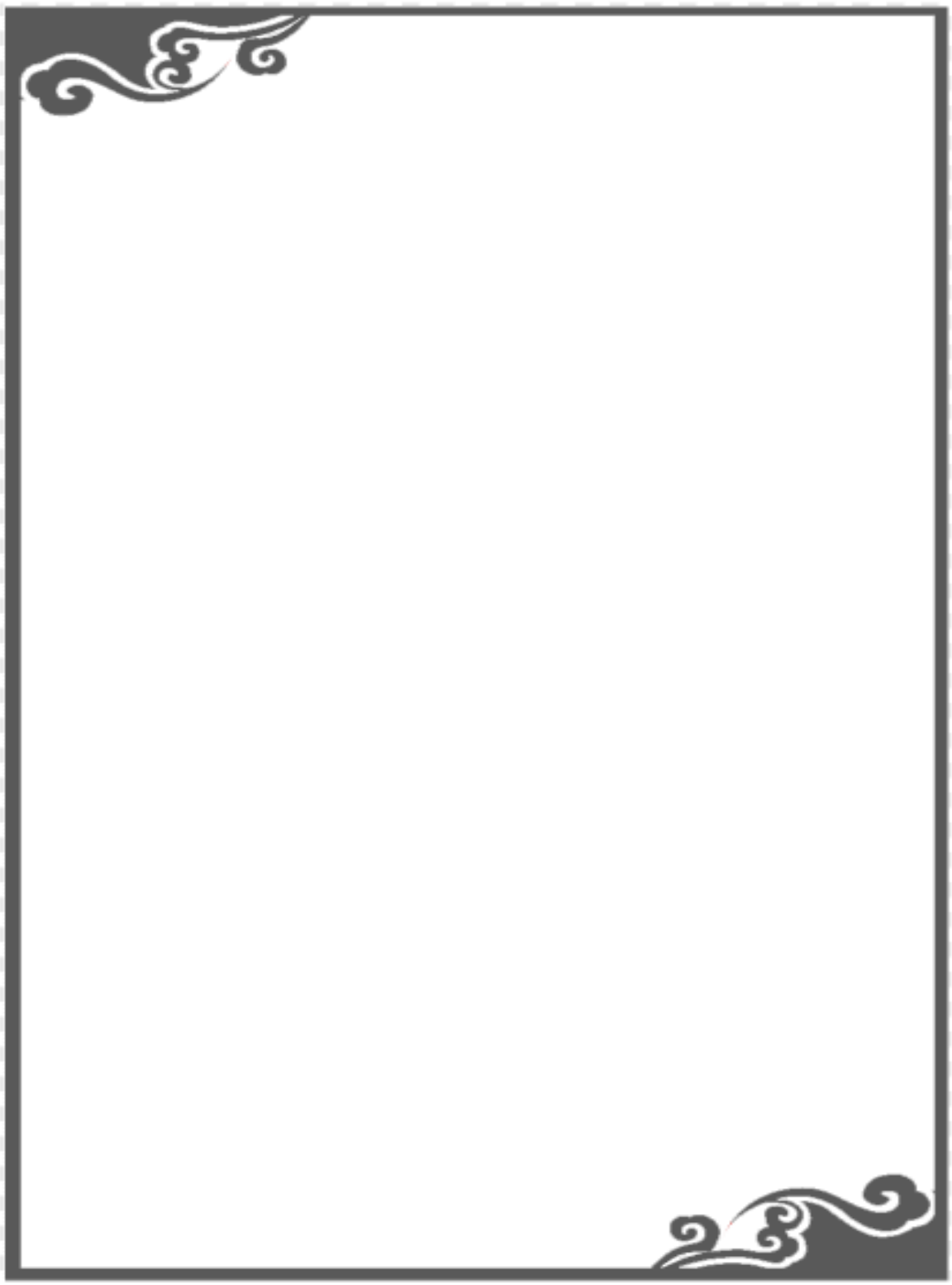

(श्री देवसेनाचार्य विरचित)

तत्त्वसार

मंगलाचरण

दोहा- स्वपर प्रकाशी सिद्ध जिन, करें जगत कल्याण।
'विशद' भावना भा रहे, पाएँ शिव सोपान ॥

''प्रथम पर्व''

झाणग्गि दड्ढकम्मे, णिम्मल सुविसुद्ध लद्धसब्भावे।
णमिऊण परम सिद्धे, सुतच्चसारं पवोच्छामि।। 1।।

ध्यानाग्नी से कर्म दग्ध कर, अमल आत्म स्वभाव विशुद्ध ।
परम सिद्ध पद वन्दन करके, तत्त्वसार मैं कहता शुद्ध ॥1॥

अन्वयार्थ - (झाणग्गिदड्ढकम्मे) आत्मध्यानरूप अग्नि से ज्ञानावरणादि कर्मों को दग्ध करने वाले, (णिम्मल सुविसुद्धलद्धसब्भावे) निर्मल और परम विशुद्ध आत्मस्वभाव को प्राप्त करने वाले (परमसिद्धे) परम सिद्ध परमात्माओं को (णमिऊण) नमस्कार करके (सुतच्चसारं) श्रेष्ठ तत्त्वसार को मैं देवसेन (पवोच्छामि) कहूँगा।

भावार्थ - विशद आत्मध्यान रूप अग्नि से ज्ञानावरणादि कर्मों को दग्ध करने वाले, निर्मल और परम विशुद्ध आत्म स्वभाव को प्राप्त करने वाले परम सिद्ध परमात्माओं को नमस्कार करके श्रेष्ठ तत्त्वसार को मैं देवसेन कहूंगा।

तच्चं बहुभेयगयं, पुव्वायरिएहिं अक्खियं लोए।
धम्मस्स वत्तणट्ठं, भवियाण पबोहणट्ठं च।। 2।।

लोक में पूर्वाचार्यों द्वारा, धर्म प्रवर्तन हेतु विशेष ।
भवि जीवों के बोध हेतु यह, कहे तत्त्व के भेद अनेक ॥2॥

अन्वयार्थ - (लोए) इस लोक में (पुव्वायरिएहिं) पूर्वाचार्यों ने (धम्मस्स वत्तणट्ठं) धर्म का प्रवर्तन करने के लिए (च) तथा (भवियाण पबोहणट्ठं) भव्यजीवों को समझाने के लिए (तच्चं) तत्त्व को (बहुभेयगयं) अनेक भेदरूप (अक्खियं) कहा है।

भावार्थ - इस लोक में पूर्वाचार्यों ने धर्म प्रवर्तन करने के लिये तथा भव्य जीवों को समझाने के लिये तत्त्व को अनेक भेद रूप कहा है। ''तस्य भावं तच्चं'' वस्तु के भाव को तत्त्व कहा है।

Aakriti

एगं सगयं तच्चं, अण्णं तह परगयं पुणो भणियं।
सगयं णिय-अप्पाणं, इयरं पंचावि परमेट्ठी॥ 3॥

स्व-गत तत्त्व है एक और फिर , दूजा परगत तत्त्व विधान ।
स्व-गत तत्व आत्म है दूजा , परगत तत्त्व परमेष्ठी जान ॥3॥

अन्वयार्थ - (एगं) एक (सगयं) स्वगत (तच्चं) स्वतत्त्व है। (तह) तथा (पुणो) फिर (अण्णं) दूसरा (परगयं) परतत्त्व (भणियं) कहा गया है। (सगयं) स्वगत तत्त्व (णिय) निज (अप्पाणं) आत्मा है। (इयरं) दूसरा परगततत्त्व (पंचावि परमेट्ठी) पाँचों ही परमेष्ठी हैं।

भावार्थ - एक स्वगत तत्त्व है तथा फिर दूसरा परतत्त्व कहा गया है। स्वगततत्त्व निज आत्मा है। दूसरा परगततत्त्व पाँचों ही परमेष्ठी हैं।

तेसिं अक्खर रूवं, भविय मणुस्साण झाय माणाणं।
बज्झइ पुण्णं बहुसो, परंपराए हवे मोक्खो।। 4।।

पंचपरमेष्ठी वाचक अक्षर , रूप मंत्र का करके ध्यान ।
पुण्य बंध हो बहुत भव्य को ,परम्परा से हो निर्वाण ॥4॥

अन्वयार्थ - (तेसिं) उन पंच परमेष्ठियों के (अक्खररूवं) वाचक और अक्षररूप मंत्रों को (झायमाणाणं) ध्यान करने वाले (भवियमणुस्साण) भव्यजनों के (बहुसो) बहुत सा (पुण्णं) पुण्य (बज्झइ) बँधता है। (परंपराए) और परम्परा से (मोक्खो) मोक्ष (हवे) प्राप्त होता है।

भावार्थ - उन पंच परमेष्ठियों के वाचक अक्षररूप मंत्रों को ध्यान करने वाले भव्य जनों के बहुत सा पुण्य बँधता है और परंपरा से मोक्ष प्राप्त होता है।

जं पुणु सगयं तच्चं, सवियप्पं हवइ तह य अवियप्पं।
सवियप्पं सासवयं, णिरासवं विगयसंकप्पं॥ 5॥

स्वगत तत्त्व है पुनः विकल्पक, अरु अविकल्प रहा दो रूप ।
सविकल्पक आश्रवयुत जानो, आश्रव रहित अविकल्प स्वरूप ॥5॥

अन्वयार्थ - (पुणु)पुनः (जं) जो (सगयं तच्चं) स्वगत तत्त्व है वह (सवियप्पं) सविकल्प (तह य) तथा (अवियप्पं) अविकल्प रूप से दो प्रकार का (हवइ) है। (सवियप्पं) सविकल्प स्वतत्त्व (सासवय) आस्रव सहित है। और (विगयसंकप्पं) संकल्प रहित निर्विकल्प स्वतत्त्व (णिरासवं) आस्रव रहित है।

भावार्थ - पुनः जो स्वगत तत्त्व है वह सविकल्प तथा अविकल्प रूप से दो प्रकार का है। सविकल्प स्वतत्त्व आस्रव सहित है, और जो संकल्प रहित निर्विकल्प स्वतत्त्व आस्रव रहित है।

इंदिय विसय विरामे, मणस्स णिल्लूरणं हवे जइया।
तइया तं अवियप्पं, ससरूवे अप्पणो तं तु॥ 6॥

इन्द्रिय विषय विराम होय तो , मन हो जाता है निर्मूल ।
स्व गत तत्त्व प्रकट तव होवे , निज स्वरूप के हो अनुकूल ॥6॥

अन्वयार्थ - (जइया) जब (इंदिय विसयविरामे) इन्द्रियों के विषयों का विराम अर्थात् इच्छानिरोध हो जाता है (तइया) तब (मणस्स) मनका (णिल्लूरणं) निर्मूलन (हवे) होता है, और तभी (तं) वह (अवियप्पं) निर्विकल्पक स्वगत तत्त्व प्रकट होता है। (तं तु) और वह (अप्पणो) आत्मा का (ससरूवे) अपने स्वरूप में अवस्थान होता है।

भावार्थ - जब इन्द्रियों के विषयों का विराम अर्थात् इच्छा निरोध हो जाता है तब मन का निर्मूलन होता है और तभी वह निर्विकल्प स्वगत तत्त्व प्रकट होता है और वह आत्मा का अपने स्वरूप में अवस्थान होता है।

समणे णिच्चलभूए, णट्ठे सव्वे वियप्प संदोहे।
थक्को सुद्धसहावो, अवियप्पो णिच्चलो णिच्चो।।7।।

निश्चल भूत होय मन जिसका, हों विकल्प सब उसके हान ।
निश्चल नित्य विकल्प रहित हो, शुद्ध स्वभाव स्थिर हो मान ॥7॥

अन्वयार्थ - (समणे) अपने मन के (णिच्चभूए) निश्चलीभूत होने पर (सव्वे) सर्व (वियप्पसंदोहे) विकल्प समूह के (णट्ठे) नष्ट होने पर (अवियप्पो) विकल्प रहित निर्विकल्प (णिच्चलो) निश्चल (णिच्चो)नित्य (सुद्धसहावो) शुद्ध स्वभाव (थक्को) स्थिर हो जाता है।

भावार्थ - अपने मन के निश्चलीभूत होने पर सर्व विकल्प समूह के नष्ट होने पर विकल्प रहित निर्विकल्प निश्चल नित्य शुद्ध स्वभाव में स्थिर हो जाता है।

जो खलु सुद्धो भावो सो अप्पा तं च दंसणं णाणं।
चरणं पि तं च भणियं सा सुद्धा चेयणा अहवा।।8।।

निश्चय से जो शुद्ध भाव है , वही आत्मा रही महान ।
दर्शन ज्ञान चरित मय पावन , अथवा शुद्ध चेतनावान ॥8॥

अन्वयार्थ - (जो) जो (खलु) निश्चय से (सुद्धो भावो) शुद्धभाव है (सो) वह (अप्पा) आत्मा है। (तं च) और वह आत्मा (दंसणं) दर्शनरूप (णाणं) ज्ञानरूप (चरणं पि) और चारित्ररूप (भणियं) कहा गया है। (अहवा) अथवा (सा) वह (सुद्धा) शुद्ध (चेयणा) चेतनारूप है।

भावार्थ - जो निश्चय से शुद्ध भाव है वह आत्मा है और वह आत्मा दर्शनरूप, ज्ञानरूप और चारित्ररूप कहा गया है अथवा वह शुद्ध चेतनारूप है।

Aakriti

द्वितीय पर्व

जं अवियप्पं तच्चं, तं सारं मोक्ख कारणं तं च।
तं णाऊण विसुद्धं, झायहु होऊण णिग्गंथा॥ 9॥

निर्विकल्प जो तत्त्व सार वह, मोक्ष का कारण रहा महान ।
हो निर्ग्रन्थ विशुद्धी पूर्वक , विशद जानकर करना ध्यान ॥9॥

अन्वयार्थ - (जं) जो (अवियप्पं) निर्विकल्प (तच्चं) तत्त्व है, (तं) वही (सारं) सार है-प्रयोजनभूत है। (तं च) और वही (मोक्खकारणं) मोक्ष का कारण है। (तं) उस (विशुद्धं) विशुद्ध तत्त्व को (णाऊण) जानकर (णिग्गंथा) निर्ग्रन्थ (होऊण) होकर (झायहु) ध्यान करो।

भावार्थ - जो निर्विकल्प तत्त्व है, वही सार है - प्रयोजन भूत है और वही मोक्ष का कारण है। उस विशुद्ध तत्त्व को जानकर निर्ग्रन्थ होकर ध्यान करो।

बहिरब्भन्तर गंथा, मुक्का जेणेह तिविह जोएण।
सो णिग्गंथो भणियो, जिणलिंगसमासिओ समणो॥ 10॥

तीन योग से बाह्याभ्यंतर , जिसने किया परिग्रह त्याग ।
किया है जिसने जिनलिंग धारण,श्रमण लोक में वह बड़भाग ॥10॥

अन्वयार्थ - (इह) इस लोक में (जेणेह) जिसने (तिविहजोएण) मन, वचन, काय इन तीन प्रकार के योगों से (बहिरब्भन्तर) बाहरी और भीतरी परिग्रहों को (मुक्का) त्याग दिया है, (सो) वह (जिणलिंगसमासियो) जिनेन्द्र देव के लिंग का आश्रय करने वाला (समणो) श्रमण (णिग्गंथो) निर्ग्रन्थ (भणिओ) कहा है।

भावार्थ - इस लोक में जिसने मन, वचन, काय इन तीन प्रकार के योगों से बाहरी और भीतरी परिग्रहों को त्याग दिया है, वह जिनेन्द्रदेव के लिंग का आश्रय करने वाला श्रमण निर्ग्रन्थ कहा गया है।

लाहालाहे सरिसो, सुह-दुक्खे तह य जीविए मरणे।
बंधु-अरिय ण समाणो, झाण समत्थो हु सो जोई॥ 11॥

सुख दुख लाभालाभ में जो भी, जीवन मरण में रहे समान ।
शत्रु मित्र में समभावी यह, निश्चय योगी करता ध्यान ॥11॥

अन्वयार्थ - जो (लाहालाहे) लाभ और अलाभ में, (सुहदुक्खे) सुख और दुःख में (तह य) और उसी प्रकार (जीविए मरणे) जीवन तथा मरण में (सरिसो) सदृश रहता है, समभाव धारण करता इसी प्रकार (बंधु अरिय ण समाणो) बन्धु और अरि में समान भाव रखता है, (सो हु) निश्चय से वही (जोई) योगी (झाणसमत्थो) ध्यान करने में समर्थ है।

A-Arihant

भावार्थ - जो लाभ और अलाभ में, सुख और दुख में, और उसी प्रकार जीवन और मरण में सदृश (समभाव) रहता है, इसी प्रकार बंधु और अरि [शत्रु] में समान भाव रखता है, निश्चय से वही योगी ध्यान करने में समर्थ है।

कालाइ लद्धि णियडा, जह जह संभवइ भव्व पुरिसस्स।
तह तह जायइ णूणं, सुसव्व सामग्गि मोक्खट्ठं ॥12॥

जैसे -जैसे भव्य पुरुष की, कालादिक लब्धी जब आय ।
वैसे- वैसे मोक्ष की सारी, सामग्री निश्चय से पाय ॥12॥

अन्वयार्थ - (जह जह) जैसे जैसे (भव्वपुरिसस्स) भव्य पुरुष की (कलाइलद्धि) काल आदि लब्धियाँ (णियडा) निकट (संभवइ) आती जाती हैं, (तह तह) वैसे वैसे ही (णूणं) निश्चय से (मोक्खट्ठं) मोक्ष के लिए (सुसव्वसामग्गि) उत्तम सर्व सामग्री (जायइ) प्राप्त हो जाती है।

भावार्थ - जैसे जैसे भव्य पुरुष की काल आदि लब्धियाँ निकट आती हैं वैसे वैसे ही निश्चय से मोक्ष के लिये उत्तम सर्व सामग्री प्राप्त हो जाती है। जैसे पंचेन्द्रियपना, संज्ञिपना, पर्याप्तक, आर्यक्षेत्र की प्राप्ति, भाव विशुद्धि, सद्गुरू का उपदेश आदि की प्राप्ति हो जाती है।

चलण रहिओ मणुस्सो, जह वंछइ मेरु सिहर मारुहिउं।
तह झाणेण विहीणो, इच्छइ कम्मक्खयं साहू।। 13।।

पद से विरहित ज्यों सुमेरु पर, चढ़ने का हो इच्छावान ।
रहित ध्यान से वैसे साधू , करें कर्म क्षय क्या? कोई आन ॥13॥

अन्वयार्थ - (जह) जैसे (चलण-रहिओ) पाद-रहित (मणुस्सो) मनुष्य (मेरु-सिहरं) सुमेरु पर्वत के शिखर पर (आरुहिउं) चढ़ने के लिए (वंछइ) इच्छा करे, (तह) वैसे ही (झाणेण) ध्यान से (विहीणो) रहित (साहू) साधु (कम्मक्खयं) कर्मों का क्षय (इच्छइ) करना चाहता है।

भावार्थ - जैसे पाद [पैर] रहित मनुष्य सुमेरू पर्वत के शिखर पर चढ़ने के लिये इच्छा करे, वैसे ही ध्यान से रहित साधु कर्मों का क्षय करना चाहता है। जो दुर्लभ है।

संका-कंखा गहिया, विसयासत्ता सुमग्गपब्भट्ठा।
एवं भणंति केई, ण हु कालो होइ झाणस्स ॥ 14॥

शंका कांक्षावान इन्द्रिय , विषयों में आसक्त पुमान ।
मोक्षमार्ग से भ्रष्ट कहे इस, काल में ना होता है ध्यान ॥14॥

अन्वयार्थ - (संका-कंखागहिया) शंकाशील और विषय-सुख की आकांक्षा वाले, (विसयासत्ता) इन्द्रियों के विषयों में आसक्त (सुमग्गपब्भट्ठा) और मोक्ष के सुमार्ग से प्रभ्रष्ट (केई) कितने ही पुरुष (एवं) इस प्रकार (भणंति) कहते हैं कि (कालो) यह काल (झाणस्स) ध्यान के योग्य (ण हु) नहीं (होइ) है।

भावार्थ - शंकालु और विषय सुख की आकांक्षा वाले इन्द्रिय विषयों में आसक्ति और मोक्ष के सुमार्ग से प्रभ्रष्ट कितने ही पुरुष इस प्रकार कहते हैं कि यह काल ध्यान के योग्य नहीं है।

अज्जवि तिरयणवंता, अप्पा झाऊण जंति सुरलोए।
तत्थ चुया मणुयत्ते, उप्पज्जिय लहहि णिव्वाणं।। 15।।

आज भी रत्नत्रय के धारी, आत्म ध्यान कर जाते स्वर्ग ।
वहाँ से च्युत हो उत्तम मानव, होकर प्राप्त करें अपवर्ग ॥15॥

अन्वयार्थ - (अज्जवि) आज भी (तिरयणवंता) रत्नत्रय धारक मनुष्य (अप्पा) आत्मा का (झाऊण) ध्यानकर (सुरलोए) स्वर्गलोक को (जंति) जाते हैं, और (तत्थ) वहाँ से (चुया) च्युत होकर (मणुयत्ते) उत्तम मनुष्य कुल में (उप्पज्जिय) उत्पन्न होकर (णिव्वाणं) निर्वाण को (लहहि) प्राप्त करते हैं।

भावार्थ - आज भी रत्नत्रय धारक मनुष्य आत्मा का ध्यान कर स्वर्ग लोक को जाते हैं और वहाँ से च्युत होकर उत्तम मनुष्य कुल में उत्पन्न हो निर्वाण को प्राप्त करते हैं।

तम्हा अब्भसऊ सया, मोत्तूणं राय दोस वा मोहो।
झायउ णिय अप्पाणं, जइ इच्छह सासयं सोक्खं॥ 16॥

अतः यदि शाश्वत सुख चाहो, राग द्वेष अरु मोह का त्याग ।
ध्यानाभ्यास में सदा आत्म के, विशद आप रखना अनुराग ॥16॥

अन्वयार्थ - (तम्हा) इसलिए (जइ) यदि (सासयं) शाश्वत (सुक्खं) सुख को (इच्छह) चाहते हो तो (राय दोस वा मोहे) राग, द्वेष और मोह को (मोत्तूणं) छोड़कर (सया) सदा (अब्भसऊ) ध्यान का अभ्यास करो और (णिय-अप्पाणं) अपने आत्मा का (झायउ) ध्यान करो।

भावार्थ - इसलिये यदि शाश्वत सुख को चाहते हो तो राग, द्वेष और मोह को छोड़कर सदा ध्यान का अभ्यास करो और अपनी आत्मा का ध्यान करो।

दंसण-णाण पहाणो, असंखदेसो हु मुत्ति परिहीणो।
सगहिय देह पमाणो, णायव्वो एरिसो अप्पा॥ 17॥

मूर्ति रहित असंख्यात प्रदेशी , आतम दर्शन ज्ञान प्रधान।
है निज देह प्रमाण स्वरूपी , यही आतमा की पहिचान ॥17॥

अन्वयार्थ - (हु) निश्चयनय से आत्मा (दंसण-णाणपहाडो) दर्शन और ज्ञानगुण-प्रधान है, (असंखदेसो) असंख्यात प्रदेशी है, (मुत्तिपरिहीणो) मूर्ति से रहित है, (सगहियदेहपमाणो) अपने द्वारा गृहीत देह प्रमाण है। (एरिसो) ऐसे स्वरूप वाला (अप्पा) आत्मा (णायव्वो) जानना चाहिए।

भावार्थ - निश्चय नय से आत्मा दर्शन और ज्ञान गुण प्रधान है, असंख्यात् प्रदेशी है, मूर्तित्व से रहित है, अपने द्वारा गृहीत देह प्रमाण है। ऐसे स्वरूप वाला आत्मा जानना चाहिये।

रागादिया विभावा, बहिरंतर-उहयवियप्पं मोत्तूणं।
एयग्गमणो झायउ, णिरंजणं णियय-अप्पाणं॥ 18॥

बाह्यंयभ्तर सर्व विकल्पों , रागादिक सब तजो विभाव ।
अंजन रहित एकाग्र सुमन से, आत्म ध्यान कर करो उपाव ॥18॥

अन्वयार्थ - (रागादिया विभावा) रागादि विभावों को, तथा (बहिरंतर-उहयहवयप्पं) बाहिरी और भीतरी दोनों प्रकार के विकल्पों को (मोत्तूणं) छोड़कर (एयग्गमणो) एकाग्र मन होकर (णिरंजणं) कर्मरूप अंजन से रहित शुद्ध (णियय-अप्पाणं) अपने आत्मा का (झायउ) ध्यान करना चाहिए।

भावार्थ - रागादि विभावों को, तथा बाहरी दोनों प्रकार के विकल्पों को छोड़कर एकाग्र चित्त होकर कर्मरूप अंजन से रहित शुद्ध अपने आत्मा का ध्यान करना चाहिये।

जस्स ण कोहो माणो, माया लोहो य सल्ल लेस्साओ।
जाइ जरा मरणं चिय, णिरंजणो सो अहं भणिओ॥ 19॥

जिसके क्रोध मान माया ना ,लोभ शल्य ना लेश्यावान ।
जन्म जरा न मरण प्राप्त हो , वही निरंजन मैं गुणवान ॥19॥

अन्वयार्थ - (जस्स) जिसके (ण कोहो) न क्रोध है, (ण माणो) न मान है, (ण माया) न माया है, (ण लोहो) न लोभ है, (ण सल्ल) न शल्य है, (ण लेस्साओ) न कोई लेश्या है, (ण जाइमरा-मरणं चिय) और न जन्म, जरा और मरण भी है, (सो) वही (णिरंजणो) निरंजन (अहं) मैं (भणिओ) कहा गया हूँ।

भावार्थ - जिसके न क्रोध है, न मान है, न माया है, न लोभ है, न शल्य है, न कोई लेश्या है और न जन्म, जरा और मरण भी है, वही निरंजन मैं कहा गया हूँ।

णत्थि कलासंठाणं, मग्गण गुणठाण जीवठाणाइं।
ण य लद्धि बंधठाणा, णोदय ठाणाइया केई।। 20।।

कला नहीं संस्थान मार्गणा, ना गुणस्थान जीव स्थान ।
बन्ध उदय लब्धी स्थान ना , वही निरंजन कहा महान ॥20॥

अन्वयार्थ - उस निरंजन आत्मा के (णत्थि कला) कोई कला नहीं है(संठाणं) कोई संस्थान नहीं है, (मग्गण-गुणठाण) कोई मार्गणास्थान नहीं है, कोई गुणस्थान नहीं है, (जीवठाणाइं) और न कोई जीवस्थान है (ण य लद्धिबंधठाणा) न कोई लब्धिस्थान है, न कोई बन्धस्थान है, (णोदयठाणाइया केई) और न कोई उदयस्थान है।

भावार्थ - उस निरंजन आत्मा के कोई कला नहीं है, कोई संस्थान नहीं है, कोई मार्गणास्थान नहीं है, कोई गुण स्थान नहीं है, और न कोई जीव स्थान है, न कोई लब्धिस्थान है, न कोई बंधस्थान है और न कोई उदयस्थान आदि है।

फास रस रूव गंधा, सद्दादीया य जस्स णत्थि पुणो।
सुद्धो चेयणभावो, णिरंजणो सो अहं भणिओ॥ 21॥
जिसके ना स्पर्श गंध रस, नहीं वर्ण ना शब्द विशेष ।
मैं वह शुद्ध निरंजन आतम, ऐसा कहते हैं तीर्थेश ॥ 21॥

अन्वयार्थ - (पुणो) और (जस्स) जिसके (फास-रस-रूव-गंधा) स्पर्श, रस, गन्ध , रूप (सद्दादीया य) और शब्द आदिक (णत्थि) नहीं हैं (सो) वह (सुद्धो) शुद्ध (चेयणभावो) चेतनभावरूप (अहं) मैं (निरंजणो) निरंजन (भणिओ) कहा गया हूँ।

भावार्थ - और जिसके स्पर्श, रस, गंध, रूप और शब्द आदिक नहीं है वह शुद्ध चेतन भाव रूप मैं निरंजन कहा गया हूँ।

तृतीय पर्व

अत्थित्ति पुणो भणिया, णएण ववहारिएण ए सव्वे।
णोकम्म-कम्मणादी, पज्जाया विविह भेयगया।। 22।।
पुनः अनेक भेद गत ये सब, हैं व्यवहार सुनय अनुसार ।
कर्म और नो कर्म जनित सब, पर्यायें हैं विविध प्रकार ॥22॥

अन्वयार्थ - (पुणो) पुनः (ववहारिएण) व्यवहारिक नय से (विविहभेयगया) अनेक भेदगत (ए सव्वे) ये सर्व (णोकम्मकम्मणादी) नोकर्म और कर्मजनित (पज्जाया) पर्याय (अत्थित्ति) जीव के हैं, ऐसा (भणिया) कहा गया है।

भावार्थ - पुनः व्यवहारिक नय से अनेक भेद गत ये सर्व नोकर्म और कर्म जनित पर्याय जीव के हैं, ऐसा कहा गया है।

संबंधो एदेसिं, णायव्वो खीर-णीर णाएण।
एकत्तो मिलियाणं, णिय-णिय सब्भावजुत्ताणं ।। 23।।
जो निज- निज सद्भाव युक्त हैं, किन्तु मिले एकत्व समान ।
क्षीर नीर सम जीव कर्म हैं , ऐसा जानो हे विद्वान! ॥23॥

अन्वयार्थ - (णिय-णिय सब्भावजुत्ताणं) अपने अपने सद्भाव से युक्त, किन्तु (एकत्तो मिलियाणं) एकत्व को प्राप्त (एदेसिं) इन जीव और कर्म का (संबंधो) सम्बन्ध (खीर-णीरणाएणा) दूध और पानी के न्याय से (णायव्वो) जानना चाहिए।

भावार्थ - अपने अपने सद्भाव से युक्त किन्तु एकत्व को प्राप्त इन जीव और कर्म का संबंध दूध और पानी के न्याय से जानना चाहिये। अर्थात् क्षीर-नीर वह जानना चाहिए।

Aakriti

जह कुणइ को वि भेयं, पाणिय-दुद्धाण तक्क जोएणं।
णाणी वि तहा भेयं, करेइ वर झाणजोएणं ॥ 24॥

क्षीर नीर में तर्क योग से,भेद करें क्यों कोई पुमान ।
भेद ज्ञान से ज्ञानी वैसे , ध्यान योग से करें महान ॥24॥

अन्वयार्थ - (जह) जैसे (को वि) कोई पुरुष (तक्कजोएणं) तर्क के योग से (पाणिय-दुद्धाण) पानी और दूध का (भेयं) भेद (कुणइ) करता है, (तहा) उसी प्रकार (णाणी वि) ज्ञानी पुरुष भी (वर-झाणजोएणं) उत्तम ध्यान के योग से चेतन और अचेतनरूप स्व-परका (भेयं) भेद (करइ) करता है। अर्थात् भेद ज्ञान प्राप्त करता है।

भावार्थ - जैसे कोई पुरुष तर्क के योग से पानी और दूध का भेद करता है, उसी प्रकार ज्ञानी पुरुष भी उत्तम ध्यान के योग से चेतन और अचेतन स्व-पर का भेद करता है।

झाणेण कुणउ भेयं, पुग्गल-जीवाण तह य कम्माणं।
घेत्तव्वो णिय अप्पा, सिद्धसरूवो परो बंभो॥ 25॥

ध्यान से पुद्गल और जीव का, कर्म जीव का भेद ज्ञान ।
कर के सिद्ध स्वरूप ब्रह्ममय , निज आतम का करना ध्यान॥25॥

अन्वयार्थ - (झाणेण) ध्यान से (पुग्गल-जीवाणं) पुद्गल और जीव का (तह य) और उसी प्रकार (कम्माणं) कर्म और जीव का (भेयं) भेद (कुणउ) करना चाहिए। तत्पश्चात् (सिद्धसरूवो) सिद्ध स्वरूप (परो बंभो) परम ब्रह्मरूप (णिय अप्पा) अपना आत्मा को (घेत्तव्वो) ग्रहण करना चाहिए।

भावार्थ - ध्यान से पुद्गल और जीव का और उसी प्रकार कर्म और जीव का भेद करना चाहिये। तत्पश्चात् सिद्ध स्वरूप परम ब्रह्मरूप अपनी आत्मा को ग्रहण करना चाहिये।

मलरहिओ णाणमओ णिवसइ सिद्धीए जारिसो सिद्धो।
तारिसओ देहत्थो परमो बंभो मुणेयव्वो॥ 26॥

कर्म मलों से रहित ज्ञानमय , जैसे सिद्धलोक में सिद्ध ।
परम ब्रह्ममय देह में वैसे ,करें वास है जगत प्रसिद्ध॥26॥

अन्वयार्थ - (जारिसो) जैसा (मल-रहिओ) कर्म-मल से रहित, (णाणमओ) ज्ञानमय (सिद्धो) सिद्धात्मा (सिद्धीए) सिद्धलोक में (णिवसइ) निवास करता है, (तारिसओ) वैसा ही (परमो बंभो) परम ब्रह्मस्वरूप अपना आत्मा (देहत्थो) देह में स्थित (मुणेयव्वो) जानना चाहिए।

भावार्थ - जैसा कर्म-मल से रहित, ज्ञानमय सिद्धात्मा सिद्धलोक में निवास करता है, वैसा ही परम ब्रह्मस्वरूप अपनी आत्मा देह में स्थित जानना चाहिये।

णोकम्म-कम्मरहिओ, केवलणाणाइ गुणसमिद्धो जो।
सो हं सिद्धो सुद्धो, णिच्चो एक्को णिरालंबो॥ 27॥

कर्म और नो कर्म रहित जो, केवल ज्ञानादिक गुणवान ।
सिद्ध शुद्ध हूँ नित्य एक मैं , निरालम्ब हूँ सिद्ध समान ॥27॥

अन्वयार्थ - (जो) जो सिद्ध जीव, (णोकम्म-कम्मरहिओ) शरीरादि नोकर्म, ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म तथा राग-द्वेषादि भावकर्म से रहित है, (केवलणाणाइ-गुणसमिद्धो) केवलज्ञानादि अनन्त गुणों से समृद्ध है, (सो हं) वही मैं (सिद्धो) सिद्ध हूँ, (सुद्धो) शुद्ध हूँ, (णिच्चो) नित्य हूँ, (एक्को) एक स्वरूप हूँ और (णिरालंबो) निरालंब हूँ।

भावार्थ - जो सिद्ध जीव, शरीरादिक, नोकर्म, ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म तथा राग-द्वेषादि भावकर्म से रहित है, केवलज्ञानादि अनंत गुणों से समृद्ध है, वही मैं सिद्ध हूँ, शुद्ध हूँ, नित्य हूँ, एक स्वरूप हूँ और निरालंब हूँ।

सिद्धोहं सुद्धोहं, अणंतणाणाइ समिद्धो हं।
देहपमाणो णिच्चो, असंखदेसो अमुत्तो य ॥28॥

मैं अनन्त ज्ञानादिक संयुत, सिद्ध शुद्ध हूँ देह प्रमाण ।
मैं हूँ नित्य असंख्य प्रदेशी, और अमूर्त विशद गुणवान ॥28॥

अन्वयार्थ - (सिद्धोहं) मैं सिद्ध हूँ, (सुद्धोहं) मैं शुद्ध हूँ, (अणंतणाणाइसमिद्धो हं) मैं अनन्त ज्ञानादि से समृद्ध हूँ, (देहपमाणो) मैं शरीर-प्रमाण हूँ, (णिच्चो) मैं नित्य हूँ, (असंखदेसो) मैं असंख्य प्रदेशी हूँ, (अमुत्तो य) और अमूर्त्त हूँ।

भावार्थ - मैं सिद्ध हूँ, मैं शुद्ध हूँ, मैं अनंतज्ञानादि से समृद्ध हूँ, मैं शरीर प्रमाण हूँ, मैं नित्य हूँ, मैं असंख्य प्रदेशी हूँ और अमूर्त्त हूँ।

थक्के मणसंकप्पे, रुद्धे अक्खाण विसयवावारे।
पयडइ बंभसरूवं, अप्पा झाणेण जोईणं॥ 29॥

मन के संकल्पों के रुकते , रुके विषय इन्द्रिय व्यापार ।
ब्रह्म स्वरूप जो आत्म योग से, योगी प्रगटाए शुभकार ॥29॥

अन्वयार्थ - (मणसंकप्पे) मन के संकल्पों के (थक्के) बन्द हो जाने पर और (अक्खाण) इन्द्रियों के (विसयवावारे) विषय-व्यापार के (रुद्धे) रुक जाने पर (जोईणं) योगियों के (झाणेण) ध्यान के द्वारा (बंभसरूवं) ब्रह्मस्वरूप (अप्पा) आत्मा (पयडइ) प्रकट होता है।

भावार्थ - मन के संकल्पों के बंद हो जाने पर और इन्द्रियों के विषय व्यापार के रुक जाने पर योगियों के ध्यान के द्वारा शुद्ध ब्रह्म स्वरूप आत्मा प्रकट होती है।

जह जह मणसंचारा, इंदियविसया वि उवसमं जंति।
तह तह पयडइ अप्पा, अप्पाणं जह णहे सूरो॥ 30॥

ज्यों इन्द्रिय विषयों का उपशम ,अरु मन का रुकता संचार ।
त्यों आतम स्वरूप प्रगट हो , नभ में प्रगटे रवि मनहार ॥30॥

अन्वयार्थ - (जह जह) जैसे जैसे (मणसंचारा) मन का संचार और (इंदियविसया वि) इन्द्रियों के विषय भी (उवसमं) उपशमभाव को (जंति) प्राप्त होते हैं, (तह तह) वैसे वैसे ही (अप्पा) अपना आत्मा (अप्पाणं) अपने शुद्धस्वरूप को (पयडइ) प्रकट करता है। (जह) जैसे (णहे) आकाश में (सूरो) सूर्य।

भावार्थ - जैसे जैसे मन का संचार और इन्द्रियों के विषय भी उपशमभाव को प्राप्त होते हैं, वैसे-वैसे ही आत्मा अपने शुद्ध स्वरूप को प्रकट करती है, जैसे आकाश में सूर्य।

मण-वयण-कायजोया, जइणो जइ जंति णिव्वियारत्तं।
तो पयडइ अप्पाणं, अप्पा परमप्पय सरूवं ॥ 31॥

योगी यदि मन वचन काय से , निर्विकारता करते प्राप्त ।
निज आतम परमात्म स्वरूपी, प्रगट करें हो जाए आप्त ॥31॥

अन्वयार्थ - (जइणो) योगी के (जइ) यदि (मण-वयण-कायजोया) मन, वचन और काययोग (णिव्वियारत्तं) निर्विकारता को (जंति) प्राप्त हो जाते हैं (तो) तो (अप्पा) आत्मा (अप्पाणं) अपने (परमप्पयसरूवं) परमात्म स्वरूप को (पयडइ) प्रकट करता है।

भावार्थ - योगी के यदि मन, वचन और काय योग निर्विकारता को प्राप्त हो जाते हैं तो आत्मा अपने परमात्मस्वरूप को प्रकट करती है।

मण-वयण-काय रोहे, रुज्झइ कम्माण आसवो णूणं।
चिर-बद्धं गलइ सयं, फलरहियं जाइ जोईणं॥ 32॥

काय वचन मन रुकते आश्रव, का निश्चय से होय निरोध।
योगी का चिर बँधा कर्म तव , गले स्वयं में जागे बोध ॥32॥

अन्वयार्थ - (मण-वयण-कायरोहे) मन-वचन-काय की चंचलता रुकने पर (कम्माण) कर्मों का (आसवो) आश्रव (णूणं) निश्चय से (रुज्झइ) रुक जाता है, तब (चिर-बद्धं) चिरकालीन बँधा हुआ कर्म (जोईण) योगियों का (सयं) स्वयं (गलइ) गल जाता है और (फलरहियं) फल-रहित (जाइ) हो जाता है।

भावार्थ - मन, वचन,काय की चंचलता रुकने पर कर्मों का आस्रव निश्चय से रुक जाता है। तब चिरकालीन बँधा हुआ कर्म योगियों के स्वयं गल जाता है और फल रहित हो जाता है।

''चतुर्थ पर्व''

ण लहइ भव्वो मोक्खं, जावय परदव्व वावडो चित्तो।
उग्ग तवं पि कुणंतो, सुद्धे भावे लहुं लहइ॥ 33॥

पर द्रव्यों में रत मन जब तक, तब तक उग्र सुतप भी पाय ।
भव्य जीव ना मुक्ती पाए, शुद्ध भाव से शिवपुर जाय॥33॥

अन्वयार्थ - (जावय) जब तक (चित्तो) मन (परदव्ववावडो) पर द्रव्यों में व्यापृत अर्थात् व्यापार युक्त है, तब तक (उग्गतवं पि) उग्र तप को भी (कुणंतो) करता हुआ (भव्वो) भव्य जीव (मोक्खं) मोक्ष को (ण लहइ) नहीं पाता है। किन्तु (सुद्धे भावे) शुद्ध भाव में लीन होने पर (लहुं) शीघ्र ही (लहइ) मोक्ष पा लेता है।

भावार्थ - जब तक मन परद्रव्यों में व्यावृत [व्यापार युक्त] है। तब तक उग्र तप को भी करता हुआ भव्य जीव मोक्ष को नहीं पाता है। किन्तु शुद्ध भाव में लीन होने पर शीघ्र ही मोक्ष पा लेता है।

परदव्वं देहाई कुणइ, ममत्तिं च जाय तेसुवरिं।
पर समय रदो तावं, बज्झदि कम्मेहिं विविहेहिं॥ 34॥

देहादिक पर द्रव्य में जब तक , ममत्व भाव रखता है जीव ।
अपर समय में रत नाना विधि , कर्म बंध जो करे अतीव ॥34॥

अन्वयार्थ - (देहाई) देहादिक (परदव्वं) पर द्रव्य हैं, (जाम च) और जब तक (तेसुवरिं) उनके ऊपर (ममत्तिं) ममत्व भाव (कुणइ) करता है, (तावं) तब तक वह (पर-समय-रदो) पर समय में रत है, अतएव (विविहेहिं) नाना प्रकार के (कम्मेहिं) कर्मों से (बज्झदि) बँधता है।

भावार्थ - देहादिक पर द्रव्य हैं और जब तक जीव उनके ऊपर ममत्व भाव करता है, तब तक वह पर समय में रत है, अतएव नाना प्रकार के कर्मों से बँधता है।

रूसइ तूसइ णिच्चं, इंदिय विसएहिं वसगओ मूढो।
सकसाओ अण्णाणी, णाणी एत्तो दु विवरीदो॥ 35॥

इन्द्रिय विषयासक्त अज्ञानी, मूढ़ नित्य होवे कभी रुष्ट ।
हो सन्तुष्ट किसी से ज्ञानी , रुष्ट कभी न हो संतुष्ट ॥35॥

अन्वयार्थ - (इंदिय विसएहिं) इन्द्रियों के विषयों में (वसगओ) आसक्त (मूढो) मूढ़ (सकसाओ) कषाय युक्त (अण्णाणी) अज्ञानी पुरुष (णिच्चं) नित्य (रूसइ) किसी में रुष्ट होता है और किसी में (तूसइ) सन्तुष्ट होता है। किन्तु (णाणी) ज्ञानी पुरुष (एत्तो दु) इससे (विवरीदो) विपरीत स्वभाव वाला होता है।

भावार्थ - इन्द्रियों के विषयों में आसक्त मूढ़ कषाय युक्त अज्ञानी पुरुष नित्य किसी में रुष्ट होता है, और किसी में संतुष्ट होता है। किन्तु ज्ञानी पुरुष इससे विपरीत स्वभाव वाला होता है।

चेयण रहिओ दीसइ , ण य दीसइ इत्थ चेयणासहिओ।
तम्हा मज्झत्थोहं, रूसेमि य कस्स तूसेमि॥ 36॥

चेतन रहित दिखे इस जग में, नहीं दिखे जो चेतनवान ।
रहूँ माध्यस्थ अतः मैं किससे , रुष्ट तुष्टता करूँ प्रधान ॥36॥

अन्वयार्थ - (इत्थ) इस संसार में (चेयण रहिओ) चेतन रहित पदार्थ (दीसइ) दिखाई देता है, और (चेयणा-सहिओ) चेतना सहित पदार्थ (ण य दीसइ) नहीं दिखाई देता है। (तम्हा) इस कारण (मज्झत्थोहं) मध्यस्थ हूँ मैं (कस्स) किससे (रूसेमि) रुष्ट होऊँ (तूसेमि य) और किससे सन्तुष्ट होऊँ?

भावार्थ - इस संसार में चेतना रहित पदार्थ दिखायी देता है, और चेतना सहित पदार्थ दिखायी नहीं देता है। इस कारण मध्यस्थ हूँ मैं किससे रुष्ट होऊँ और किससे संतुष्ट होऊँ ?

अप्प समाणा दिट्ठा, जीवा सव्वे वि तिहुयणत्था वि।
सो मज्झत्थो जोई, ण य रूसइ णेय तूसेइ॥ 37॥

सभी जीव त्रिभुवन में हैं जो, दिखते सारे स्वयं समान ।
हो माध्यस्थ अतः योगी जन , रुष्ट तुष्ट ना होते मान॥37॥

अन्वयार्थ - (तिहुयणत्था वि) तीन भुवन में स्थित (सव्वे वि) सभी (जीवा) जीव (अप्प समाणा) अपने समान (दिट्ठा) दिखाई देते हैं, (सो) इसलिए वह (मज्झत्थो) मध्यस्थ (जोई) योगी (ण य) न तो (रूसइ) किसी से रुष्ट होता है (णेय) और न ही (तूसेइ) किसी से सन्तुष्ट होता है।

भावार्थ - तीन भुवन में स्थित सभी जीव अपने समान दिखायी देते हैं, इसलिये वह मध्यस्थ योगी न तो किसी से रुष्ट होता है और न ही किसी से संतुष्ट होता है।

जम्मण-मरण विमुक्का, अप्प पएसेहिं सव्व सामण्णा।
सगुणेहिं सव्वसरिसा, णाणमया णिच्छयणएण॥ 38॥

जन्म मरण से मुक्त जीव सब, निश्चय नय से रहे महान ।
आत्म प्रदेश सभी के सम हैं, निज गुण सदृश सदृश ज्ञान ॥38॥

अन्वयार्थ - (णिच्छयणएण) निश्चयनय से सभी जीव (जम्मणमरणविमुक्का) जन्म-मरण से विमुक्त (अप्पएसेहिं) आत्मप्रदेशों की अपेक्षा (सव्वसामण्णा) सभी समान (सगुणेहिं सव्वसरिसा) आत्मीय गुणों से सभी सदृश और (णाणमया) ज्ञानमयी हैं।

भावार्थ -निश्चय नय से सभी जीव जन्म मरण से विमुक्त, आत्मप्रदेशों की अपेक्षा सभी समान, आत्मीय गुणों से सभी सदृश और ज्ञानमयी हैं।

इय एवं जो बुज्झइ, वत्थुसहावं णएहिं दोहिं पि।
तस्स मणो डहुलिज्जइ, ण राय-दोसेहिं मोहेहिं॥ 39॥

इस प्रकार वस्तु स्वभाव जो, ज्ञानी जाने द्वय नय वान ।
राग द्वेष अरु मोह से उसका, डँवाडोल ना मन हो जान ॥39॥

अन्वयार्थ - (जो) जो ज्ञानी (दोहिं पि) दोनों ही (णएहिं) नयों से (इय एवं) यह इस प्रकार का (वत्थुसहावं) वस्तु-स्वभाव (बुज्झइ) जानता है (तस्स) उसका (मणो) मन (राय-दोसेहिं) रागद्वेष से (मोहेहिं) और मोह से (ण डहुलिज्जइ) डँवाडोल नहीं होता है।

भावार्थ - जो ज्ञानी दोनों ही नयों से यह इस प्रकार का वस्तु स्वभाव जानता है उसका मन रागद्वेष से और मोह से डँवाडोल नहीं होता है।

रायद्दोसा दीहि य, डहु लिज्जइ णेव जस्स मण सलिलं।
सो णिय तच्चं पिच्छइ, ण हु पिच्छइ तस्स विवरीओ॥ 40॥

मन जल जिसका रागद्वेषादिक, से ना डाँवाडोल हो जान ।
वह निज तत्व को देखे इससे, विपरीत नहीं दीखे यह मान ॥40॥

अन्वयार्थ - (जस्स) जिसका (मणसलिलं) मनरूपी जल (रायद्दोसादीहि य) रागद्वेष आदि के द्वारा (णेव) नहीं (डहुलिज्जइ) डँवाडोल होता है (सो) वह (णियतच्चं) निजतत्त्व को (पिच्छइ) देखता है। (तस्स) इससे (विवरीओ) विपरीत पुरुष (ण हु) निश्चय से नहीं (पिच्छइ) देखता है।

भावार्थ - जिसका मनरूपी जल रागद्वेष आदि के द्वारा डाँवाडोल नहीं होता है, वह निजतत्त्व को देखता है। इससे विपरीत पुरुष निश्चय से नहीं देखता है।

सर-सलिले थिरभूए, दीसइ णिरु णिवडियं पि जह रयणं।
मण-सलिले थिरभूए, दीसइ अप्पा तहा विमले॥ 41॥

ज्यों सरवर में जल स्थिर हो , दिखे नियम से उसमें रत्न ।
त्यों मन जल स्थिर होने पर, विमल आत्म दिखती कर यत्न ॥41॥

अन्वयार्थ - (जह) जैसे (सरसलिले) सरोवर के जल के (थिरभूए) स्थिर होने पर (णिवडियं पि) सरोवर में गिरा हुआ भी (रयणं) रत्न (णिरु) नियम से (दीसइ) दिखाई देता है, (तहा) उसी प्रकार (मणसलिले) मन रूपी जल के (थिरभूए) स्थिर होने पर (विमले) निर्मल भाव में (अप्पा) आत्मा (दीसइ) दिखाई देता है।

भावार्थ - जैसे सरोवर के जल के स्थिर होने पर सरोवर में गिरा हुआ रत्न भी नियम से दिखायी देता है, उसी प्रकार मनरूपी जल के स्थिर होने पर निर्मल भाव में आत्मा दिखायी देता है।

दिट्ठे विमलसहावे, णियतच्चे इंदियत्थपरिचत्ते।
जायइ जोइस्स फुडं, अमाणुसत्तं खणद्धेण॥ 42॥

विमल स्वभावी इन्द्रिय विजयी, आत्म तत्व ज्यों दिखे प्रधान ।
योगी अमानुष पना क्षणार्ध में, कर लेते हैं ऐसा मान ॥42॥

अन्वयार्थ - (विमलसहावे) निर्मल स्वभाव वाले, (इंदियत्थपरिचत्ते) इन्द्रियों के विषयों से रहित (णियतच्चे) निज आत्मतत्त्व के (दिट्ठे) दिखाई देने पर (खणद्धेण) आधे क्षण में (जोइस्स) योगी के (अमाणुसत्तं) अमानुषपना (फुडं) स्पष्ट प्रकट (जायइ) हो जाता है।

भावार्थ - निर्मल स्वभाव वाले, इन्द्रियों के विषयों से रहित निज आत्मतत्त्व के दिखायी देने पर, आधे क्षण में योगी के अमानुषपना स्पष्ट प्रकट हो जाता है। अर्थात् निजस्वरूप दिखता है।

णाणमयं णियतच्चं मेल्लिय सव्वे वि परगया भावा।
ते छंडिय भावेज्जो सुद्धसहावं णियप्पाणं॥ 43॥

ज्ञानमयी निज तत्व छोड़कर , सभी भाव परगत हैं जान ।
उन्हें छोड़कर शुद्ध स्वभावी, कर निज आतम की पहचान ॥43॥

अन्वयार्थ - (णाणमयं) ज्ञानमयी (णियतच्चं) निज तत्त्व को (मेल्लिय) छोड़कर (सव्वे वि) सभी (भावा) भाव (परगया) परगत हैं, (ते छंडिय) उन्हें छोड़कर (सुद्धसहावं) शुद्ध स्वभाव वाले (णियप्पाणं) निज आत्मा की ही (भावेज्जो) भावना करनी चाहिए।

भावार्थ - ज्ञानमयी निजतत्त्व को छोड़कर सभी भाव परगत हैं, उन्हें छोड़कर शुद्ध स्वभाव वाली निज आत्मा की ही भावना करनी चाहिये।

जो अप्पाणं झायदि संवेयण चेयणाइ उवजुत्तो।
सो हवइ वीयराओ णिम्मल रयणत्तओ साहू॥ 44॥

स्वसंवेदन चेतनादिक से, युक्त साधु आतम जो ध्याय ।
वह निर्मल रत्नत्रय धारी , परम वीतरागी हो जाए॥44॥

अन्वयार्थ - (जो संवेयणचेयणाइ उवजुत्तो) जो स्वसंवेदनचेतनादि से उपयुक्त (साहू) साधु (अप्पाणं) आत्मा को (झायदि) ध्याता है (सो) वह (णिम्मलरयणत्तओ) निर्मल रत्नत्रय का धारक (वीयराओ) वीतराग (हवइ) हो जाता है।

भावार्थ - जो स्वसंवेदन चेतनादि से उपयुक्त साधु आत्मा को ध्याता है वह निर्मल रत्नत्रय का धारक वीतराग हो जाता है।

दंसण-णाण-चरित्तं जोई तस्सेह णिच्छयं भणइ।
जो झायइ अप्पाणं सचेयणं सुद्धभावट्ठं॥ 45॥

साधु सचेतन शुद्ध स्वभावी, आतम को ध्याता है जान ।
वह इस लोक में निश्चय दर्शन, ज्ञान चरित वाला हो मान ॥45॥

अन्वयार्थ - (जो) जो (जोई) योगी (सचेयणं) सचेतन और (सुद्धभवट्ठं) शुद्ध भाव में स्थित (अप्पाणं) आत्मा को (झायइ) ध्याता है (तस्स) उसको (इह) इस लोक में (णिच्छयं) निश्चय (दंसणणाण चरित्तं) दर्शन ज्ञान चारित्र (भणइ) कहते हैं।

भावार्थ – जो योगी सचेतन और शुद्ध भाव में स्थित आत्मा को ध्याता है, उसको इस लोक में निश्चय से दर्शन, ज्ञान, चारित्र कहते हैं।

पंचम पर्व

झाणट्ठिओ हु जोई जइ णो संवेइ णिययय-अप्पाणं।
तो ण लहइ तं सुद्धं भग्ग विहीणो जहा रयणं॥ 46॥

ध्यान स्थित योगी यदि निश्चय से आतम अनुभव न पाय।
शुद्ध आत्म को नहीं पाए ज्यों, भाग्य हीन ना रत्न लहाए ॥46॥

अन्वयार्थ – (झाणट्ठिओ) ध्यान में स्थित (जोई) योगी (जइ) यदि (हु) निश्चय से (णिययअप्पाणं) अपने आत्मा को (णो) नहीं (संवेइ) अनुभव करता है (तो) तो वह (तं) उस (सुद्धं) शुद्ध आत्मा को (ण) नहीं (लहइ) प्राप्त कर पाता है। (जहा) जैसे (भग्गविहीणो) भाग्यहीन मनुष्य (रयणं) रत्न को नहीं प्राप्त कर पाता है।

भावार्थ – ध्यान में स्थित योगी यदि निश्चय से अपने आत्मा को नहीं अनुभव करता है तो वह उस शुद्ध आत्मा को नहीं प्राप्त कर पाता है। जैसे भाग्यहीन मनुष्य रत्न को प्राप्त नहीं कर पाता है।

देहसुहे पडिबद्धो जेण य सो तेण लहइ ण हु सुद्धं।
तच्चं वियाररहियं णिच्चं चिय झायमाणो हु॥ 47॥

रहित विचार नित्य ही करता, है निश्चय से आतम ध्यान ।
हो अनुरक्त देह सुख में वह, निज स्वरूप ना पाए मान ॥47॥

अन्वयार्थ – (वियाररहियं) विचार-रहित (तच्चं) तत्त्व को (णिच्चं) नित्य (चिय) ही (झायमाणो हु) निश्चय से ध्यान करता हुआ भी (जेण) यतः (देहसुहे) शरीर के सुख में (पडिबद्धो) अनुरक्त है (तेण) इसलिए (सो) वह (सुद्धं) शुद्ध आत्मस्वरूप को (ण हु) नहीं (लहइ) प्राप्त कर पाता है।

भावार्थ – विचार रहित तत्त्व को नित्य ही निश्चय से ध्यान करता हुआ भी शरीर के सुख में अनुरक्त है इसलिये वह शुद्ध आत्मस्वरूप को नहीं प्राप्त कर पाता है।

मुक्खो विणास रूवो चेयण परिवज्जिओ सया देहो।
तस्स ममत्ति कुणंतो बहिरप्पा होइ सो जीवो॥ 48॥

देह चेतना रहित विनाशी , मूर्ख सदा रहता है जान ।
उसकी ममता करने वाला ,बहिरातम है ऐसा मान ॥48॥

अन्वयार्थ - (देहो) शरीर (सया) सदाकाल (मुक्खो) मूर्ख है, (विणासरूवो) विनाशरूप है, (चेयणपरिवज्जिओ) चेतना से रहित है, जो (तस्स) उसकी (ममत्ति) ममता (कुणंतो) करता है (सो) वह (बहिरप्पा) बहिरात्मा (होइ) है।

भावार्थ - शरीर सदाकाल मूर्ख है, विनाशरूप है, चेतना से रहित है, जो उसकी ममता करता है, वह बहिरात्मा है।

रोयं सडणं पडणं देहस्स य पिक्खिऊण जर-मरणं।
जो अप्पाणं झायदि सो मुच्चइ पंच देहेहिं ॥ 49॥

सड़न पतन अरु रोग देह के, जरा मरण जिसको दिख जाए ।
भव्य आतमा को ध्याता वह , पंच देह से मुक्ती पाए ॥49॥

अन्वयार्थ - (देहस्स य) देह के (रोयं) रोग (सडणं) सड़न और (पडणं) पतन को तथा (जरमरणं) जरा और मरण को (पिक्खिऊण) देखकर (जो) जो भव्व (अप्पाणं) आत्मा को (झायदि) ध्याता है (स) वह (पंचदेहेहिं) पाँच प्रकार के शरीर से (मुच्चइ) मुक्त हो जाता है।

भावार्थ - देह के रोग सड़न [सड़न,गलन] और पतन को तथा जरा और मरण को देखकर जो भव्य आत्मा को ध्याता है, वह पाँच प्रकार के शरीरों से मुक्त हो जाता है।

जं होइ भुंजियव्वं कम्मं उदयस्स आणियं तवसा।
सयमागयं च तं जइ सो लाहो णत्थि संदेहो॥ 50॥

कर्म उदय में तप से लाकर , रहा भोगने योग्य प्रधान ।
यदि वह स्वयं उदय में आए, निः संदेह लाभ यह मान ॥50॥

अन्वयार्थ - (जं) जो (कम्मं) कर्म (तवसा) तप के द्वारा (उदयस्स) उदय में (आणियं) लाकर (भुंजियव्वं) भोगने के योग्य (होइ) होता है, (तं) वह (जइ) यदि (सयं) स्वयं (आगयं च) उदय में आ गया है (सो) वह (लाहो) बड़ा भारी लाभ है। इसमें कोई (संदेहो) सन्देह (णत्थि) नहीं हैं।

भावार्थ - जो कर्म तप के द्वारा उदय में लाकर भोगने के योग्य होता है वह यदि स्वयं उदय में आ गया है तो बड़ा भारी लाभ है। इसमें कोई संदेह नहीं है।

भुंजंतो कम्मफलं कुणइ ण रायं तह य दोसं च।
सो संचियं विणासइ अहि णव कम्मं ण बंधेइ॥ 51॥

राग द्वेष ना करे भव्य जो, कर्मों का फल भोगे जान ।
संचित पूर्व कर्म का नाशी , नये कर्म ना बाँधे आन ॥51॥

अन्वयार्थ - जो भव्व जीव (कम्मफलं) कर्मों के फल को (भुंजंतो) भोगता हुआ (ण-रायं) न राग ो (तह य) और (दोसं च) न द्वेष को (कुणइ) करता है (सो) वह (संचियं) पूर्व संचित कर्म को (विणासइ) विनष्ट करता है और (अिहणवकम्मं) नवीन कर्म को (ण बंधेइ) नहीं बाँधता है।

भावार्थ - जो भव्य जीव कर्मों के फल को भोगता हुआ राग और द्वेष नहीं करता है वह पूर्व संचित कर्म को विनष्ट करता है और नवीन कर्म को नहीं बाँधता है।

भुंजंतो कम्मफलं, भावं मोहेण कुणइ सुह-मसुहं।
जइ तो पुणो वि बंधइ, णाणा वरणादि अट्ठविहं॥ 52॥

कर्म के फल को भोगे यदि जो, करे शुभाशुभ मोह से भाव ।
तब भी ज्ञानावरणादिक वसु, कर्म बंध का करे उपाव ॥52॥

अन्वयार्थ - (कम्मफलं) कर्मों के फल को (भुंजंतो) भोगता हुआ अज्ञानी पुरुष (जइ) यदि (मोहेण) मोह से (सुहमसुहं) शुभ और अशुभ (भावं) भाव को (कुणइ) करता है (तो) तब (पुणो वि) फिर भी वह (णाणावरणादि) ज्ञानावरणादि (अट्ठविहं) आठ प्रकार के कर्म को (बंधइ) बाँधता है।

भावार्थ - कर्मों के फलों को भोगता हुआ अज्ञानी पुरुष यदि मोह से शुभ और अशुभ भाव को करता है,तब फिर वह श्रमण कर्म से नहीं छूटता है।

परमाणु मित्तरायं, जाम ण छंडेइ जोइ समणम्मि।
सो कम्मेण ण मुच्चइ, परमट्ठ वियाणओ समणो।।53।।

जब तक योगी अणुमात्र भी, मन से नहीं छोड़ता राग ।
तब तक वह परमार्थ का ज्ञायक, कर्म से ना छूटे बड़भाग॥53॥

अन्वयार्थ - (जाम) जब तक (जोई) योगी (समणम्मि) अपने मन से (परमाणुमित्त रायं) परमाणु मात्र भी राग को (ण छंडेइ) नहीं छोड़ता है, तब तक (परमट्ठवियाणओ) परमार्थ का ज्ञायक भी (सो समणो) वह श्रमण (कम्मेण) कर्म से (ण मुच्चइ) नहीं छूटता है।

भावार्थ - जब तक योगी अपने मन से परमाणु मात्र भी राग को नहीं छोड़ता है, तब तक परमार्थ का ज्ञायक भी वह श्रमण कर्म से नहीं छूटता है।

सुहदुक्खं पि सहंतो, णाणी झाणम्मि होइ दिढचित्तो।
हेऊ कम्मस्स तओ, णिज्जरणट्ठं इमो भणिओ।।54।।

सुख दुख भी सहकर के ज्ञानी, ध्यान में रहता है दृढ़ चित्त।
कर्म निर्जरा हेतू उसका ,वह तप होता परम पवित्र॥54॥

अन्वयार्थ - (सुह-दुक्खं पि) सुख दुःख को भी (सहंतो) सहता हुआ प्राणी (णाणी) ज्ञानी पुरुष जब (झाणम्मि) ध्यान में (दिढचित्तो) दृढ़ चित्त (होइ) होता है, तब उसका (तओ) तप (कम्मस्स) कर्म की (णिज्जरणट्ठं) निर्जरा के लिए (हेऊ) हेतु होता है (इमो) ऐसा (भणिओ) कहा गया है।

भावार्थ - सुख-दुःख को भी सहता हुआ ज्ञानी पुरुष जब ध्यान में दृढ़ चित्त होता है, तब उसका तप कर्म की निर्जरा के लिये हेतु होता है, ऐसा कहा गया है।

ण मुएइ सगं भावं, ण परं परिणमइ मुणइ अप्पाणं।
जो जीवो संवरणं, णिज्जरणं सो फुडं भणिओ॥ 55॥

नहीं छोड़ता जो स्वभाव को, वह परिणत ना होवे जान ।
निश्चय से निज आतम चिंतक , संवर और निर्जरावान ॥55॥

अन्वयार्थ - (जो जीवो) जो जीव (सगं) अपने (भावं) भाव को (ण मुएइ) नहीं छोड़ता है, (परं) और पर पदार्थरूप (ण परिणमइ) परिणत नहीं होता है, किन्तु (अप्पाणं) अपने आत्मा का (मुणइ) मनन, चिन्तन और अनुभवन करता है, (सो) वह जीव (फुडं) निश्चयनय से (संवरणं) संवर और (णिज्जरणं) निर्जरारूप (भणिओ) कहा गया है।

भावार्थ - जो जीव अपने भाव को नहीं छोड़ता है और पर पदार्थ रूप परिणत नहीं होता है, किन्तु अपने आत्मा का मनन, चिन्तवन और अनुभवन करता है, वह जीव निश्चय नय से संवर और निर्जरा रूप कहा गया है।

ससहावं वेदंतो, णिच्चल चित्तो विमुक्क परभावो।
सो जीवो णायव्वो, दंसण-णाणं चरित्तं च॥ 56॥

निज स्वभाव का अनुभव कारी , निश्चल चित्त छोड़ परभाव ।
दर्श ज्ञान चरित का धारी, जीव प्राप्त करता स्वभाव ॥56॥

अन्वयार्थ - (ससहावं) अपने आत्म स्वभाव को (वेदंतो) अनुभव करता हुआ जो जीव (विमुक्कपरभावो) परभाव को छोड़कर (णिच्चलचित्तो) निश्चल चित्त होता है (सो जीवो) वही जीव (दंसण णाणं चरित्तं च) सम्यग्दर्शन है, सम्यग्ज्ञान है और सम्यक् चारित्र है, ऐसा (णायव्वो) जानना चाहिए।

भावार्थ - अपने आत्म स्वभाव को अनुभव करता हुआ जो जीव परभाव को छोड़कर निश्चल चित्त होता है, वही जीव सम्यग्दर्शन है, सम्यग्ज्ञान है, और सम्यक् चारित्र है, ऐसा जानना चाहिये।

जो अप्पा तं णाणं, जं णाणं तं च दंसणं चरणं।
सा सुद्ध चेयणा वि य, णिच्छय णयमस्सिए जीवे॥ 57॥

निश्चय नय के आश्रित जीवों, में जो आतम है वह ज्ञान ।
जो है ज्ञान दर्श वह चारित्र , वह है शुद्ध चेतनावान॥ 57॥

अन्वयार्थ - (णिच्छयणयमस्सिए) निश्चयनय के आश्रित (जीवे) जीव में (जो अप्पा) जो आत्मा है, (तं णाणं) वही ज्ञान है, (जं णाणं) और जो ज्ञान है (तं च दंसणं चरणं) वही दर्शन है, वही चारित्र है (सा सुद्धचेयणा वि य) और वही शुद्ध चेतना भी है।

भावार्थ - निश्चय नय के आश्रित जीव में जो आत्मा है, वही ज्ञान है, वही दर्शन है, वही चारित्र है और वही शुद्ध चेतना भी है।

उभय विणट्ठे भावे, णिय-उवलद्धे सुसुद्ध ससरूवे।
विलसइ परमाणंदो, जोईणं जोयसत्तीय॥ 58॥

राग द्वेष द्वय भाव नष्ट हों, प्रगटे शुद्ध आत्म स्वरूप।
परमानन्द योग शक्ती से, योगी विलसित करें अनूप ॥58॥

अन्वयार्थ - (उभयविणट्ठे भावे) राग और द्वेषरूप दोनों भावों के विनष्ट होने पर (सुसुद्धससरूवे) अत्यन्त शुद्ध आत्मस्वरूप (णियउवलद्धे) निज भाव के उपलब्ध होने पर (जोयसत्तीए) योग शक्ति से (जोइणं) योगियों के (परमाणंदो) परम आनन्द (विलसइ) विलसित प्राप्त होता है।

भावार्थ - राग और द्वेष रूप दोनों भावों के विनष्ट होने पर अत्यंत शुद्ध आत्म स्वरूप निज भाव के उपलब्ध होने पर योगशक्ति से योगियों के परम आनंद विलसित [प्रकट] होता है।

किं किज्जइ जोएणं, जस्स य ण हु अत्थि एरिसी सत्ती।
फुरइ ण परमाणंदो, सच्चेयण संभवो सुहदो॥ 59॥

ऐसे योग से क्या करना है , जिसमें ऐसी शक्ति नहीं ।
परमानन्द सुखद सद् चेतन, ना प्रगटाए विशद कहीं ॥59॥

अन्वयार्थ - (जोएण किं कीरइ) उस योग से क्या करना है? (जस्स य) जिसकी (एरिसी) ऐसी (सत्ती) शक्ति (ण हु) नहीं (अत्थि) है कि उससे (सच्चेयणसंभवो) सत्चेतन से उत्पन्न (सुहदो) सुखद (परमाणंदो) परमानंद (ण फुरइ) प्रकट न हो।

भावार्थ - उस योग से क्या करना है ? जिसकी ऐसी शक्ति नहीं है कि उससे सत्चेतन से उत्पन्न सुखद् परमानंद प्रकट न हो।

जाम किंचि वि चलइ, मणो झाणे जोइस्स गहिय जोयस्स।
ताम ण परमाणंदो, उप्पज्जइ परम सुक्खयरो॥ 60॥

जब तक योग के धारी योगी, का मन ध्यान में कुछ चंचल ।
तब तक परमानन्द परम सुख, पाना है भाई मुश्किल ॥60॥

अन्वयार्थ - (जाम) जब तक (गहियजोयस्स) योग के धारक (जोइस्स) योगी का (मणो) मन (झाणे) ध्यान में (किंचिवि) कुछ भी (चलइ) चलायमान रहता है (ताम) तब तक (परमसुक्खयरो) परम सुख कारक (परमाणंदो) परमानन्द (ण उप्पज्जइ) नहीं उत्पन्न होता है।

भावार्थ - जब तक योग के धारक योगी का मन ध्यान में कुछ भी चलायमान रहता है तब तक परम सुख कारक परमानंद नहीं उत्पन्न होता है।

सयलवियप्पे थक्के उप्पज्जइ को वि सासओ भावो।
जो अप्पणो सहावो मोक्खस्स य कारणं सो खु ॥61॥

सर्व विकल्पों के रुकते ही कोई ,अद्वितिय शाश्वत भाव ।
निश्चय से जो मोक्ष का कारण, हो उत्पन्न आत्म स्वभाव ॥61॥

अन्वयार्थ - (सयलवियप्पे) समस्त विकल्पों के (थक्के) रुक जाने पर (को वि) कोई अद्वितीय (सासओ) शाश्वत-नित्य (भावो) भाव (उप्पज्जइ) उत्पन्न होता है (जो) जो (अप्पणो) आत्मा का (सहावो) स्वभाव है। (सो) वह (खु) निश्चय से (मोक्खस्स य) मोक्ष का (कारणं) कारण है।

भावार्थ - समस्त विकल्पों के रुक जाने पर कोई अद्वितीय शाश्वत नित्य भाव उत्पन्न होता है जो आत्मा का स्वभाव है। वही निश्चय से मोक्ष का कारण है।

अप्पसहावे थक्को, जोई ण मुणेइ आगए विसए।
जाणइ णिय-अप्पाणं, पिच्छइ तं चेव सुविसुद्धं॥ 62॥

निज स्वभाव में स्थित योगी , उदयागत विषयों का ज्ञान ।
हो ना अपना आतम जाने , वही आत्म देखें विद्वान ॥62॥

अन्वयार्थ - (अप्पसहावे) आत्मस्वभाव में (थक्को) स्थित (जोई) योगी (आगए) उदय में आए हुए (विसए) इन्द्रियों के विषयों को (ण मुणेइ) नहीं जानता है। किन्तु (णिय-अप्पाणं) अपने आत्मा को ही (जाणइ) जानता है (तं चेव) और उसी (सुविसुद्धं) अतिविशुद्ध (पिच्छइ) देखता है।

भावार्थ -आत्म स्वभाव में स्थित योगी उदय में आये हुये इन्द्रिय विषयों को नहीं जानता है, किन्तु अपनी आत्मा को ही जानता है और उसी अति विशुद्ध आत्मा को देखता है।

ण रमइ विसएसु मणो, जोइस्सुवलद्ध सुद्धतच्चस्स।
एकी हवइ णिरासो, मरइ पुणो झाणसत्थेण॥ 63॥

शुद्ध तत्त्व को प्राप्त योगी का, मन विषयों में रमें नहीं ।
किन्तु स्थिर हो आतम में , ध्यान शस्त्र में मरे वहीं ॥63॥

अन्वयार्थ - (उवलद्धसुद्धतच्चस्स) जिसने शुद्धतत्त्व को प्राप्त कर लिया है, ऐसे (जोइस्स) योगी का (मणो) मन (विसएसु) इन्द्रियों के विषयों में (ण रमइ) नहीं रमता। किन्तु (णिरासो) विषयों में निराश होकर आत्मा में (एकीहवइ) एकमेव हो जाता है। (पुणो) पुनः (झाणसत्थेण) ध्यानरूपी शस्त्र के द्वारा (मरइ) मरण को प्राप्त हो जाता है।

भावार्थ - जिसने शुद्ध तत्त्व को प्राप्त कर लिया है, ऐसे योगी का मन इन्द्रिय विषयों में नहीं रमता है। किन्तु विषयों से निराश होकर आत्मा में एकमेव हो जाता है। पुनः ध्यान रूपी शस्त्र के द्वारा मरण को प्राप्त हो जाता है।

ण मरइ तावेत्थ मणो, जाम ण मोहो खयं गओ सव्वो।
खीयंति खीणमोहे, सेसाणि य घाइकम्माणि ॥ 64॥

जब तक पूर्ण मोह क्षय ना हो, तब तक यह मन मरे नहीं ।
मोह क्षीण होते ही घाती, शेष कर्म भी नशें वहीं ॥ 64 ॥

अन्वयार्थ - (जाम) जब तक (सव्वो मोहो) सम्पूर्ण मोह (खयं) क्षयको (ण गओ) नहीं प्राप्त होता, (ताव) जब तक (इत्थ) इस आत्मा का (मणो) मन (ण मरइ) नहीं मरता। (खीणमोहे) मोह के क्षीण होने पर (सेसाणि य) शेष भी (घाइकम्माणि) घातीकर्म (खीयंति) नष्ट हो जाते हैं।

भावार्थ - जब तक संपूर्ण मोह क्षय को प्राप्त नहीं होता है, तब तक इस आत्मा का मन नहीं मरता है। मोह के क्षीण होने पर शेष घाति कर्म नष्ट हो जाते हैं।

णिहए राए सेण्णं णासइ सयमेव गलियमाहप्पं।
तह णिहय मोहराए गलंति णिस्सेस घाईणि ॥ 65॥

ज्यों माहात्म्य भूप के मरते , सेना स्वयं नष्ट हो जाए ।
मोहराज के नशते घाती, कर्म समस्त स्वयं गल जाए॥65॥

अन्वयार्थ - (राए) राजा के (णिहए) मारे जाने पर जैसे (गलियमाहप्पं) जिसका माहात्म्य गल गया है ऐसी (सेण्णं) सेना (सयमेव) स्वयं ही (णासइ) नष्ट हो जाती है, (तह) उसी प्रकार (णिहयमोहराए) मोहराजा के नष्ट हो जाने पर (णिस्सेसघाईणि) समस्त घातिया कर्म (गलंति) स्वयं ही गल जाते हैं।

भावार्थ - राजा के मारे जाने पर जैसे जिसका माहात्म्य गल गया है ऐसी सेना स्वयं ही नष्ट हो जाती है, उसी प्रकार मोह रूपी राजा के नष्ट हो जाने पर समस्त घातिया कर्म स्वयं ही गल जाते हैं।

घाइचउक्के णट्ठे, उप्पज्जइ विमल केवलं णाणं।
लोयालोय पयासं, कालत्तयजाणगं परमं॥ 66॥

कर्म घातिया के नशते ही ,लोकालोक प्रकाशी ज्ञान ।
तीनों लोक जानने वाला, परम विमल प्रगटित हो जान ॥66॥

अन्वयार्थ - (घाइचउक्के णट्ठे) चारों घातिया कर्मों के नष्ट होने पर (लोयालोयपयासं) लोक अलोक को प्रकाशित करने वाला, (कालत्तयजाणगं) तीनों कालों को जानने वाला, (परमं) परम (विमल) निर्मल (केवलं णाणं) केवलज्ञान (उप्पज्जइ) उत्पन्न होता है।

भावार्थ - चारों घातिया कर्मों के नष्ट होने पर लोक और अलोक को प्रकाशित करने वाला, तीनों कालों को जानने वाला, परम निर्मल केवल ज्ञान उत्पन्न होता है।

''षष्ठम् पर्व''

तिहुवणपुज्जो होउं, खविउ सेसाणि कम्म जालाणि।
जायइ अभूदपुव्वो, लोयग्ग णिवासिओ सिद्धो॥67॥

अर्हत् तीनों लोक पूज्य हों, शेष कर्म का जाल विनाश ।
सिद्ध परम परमातम होके, करें शीघ्र लोकाग्र निवास ॥67॥

अन्वयार्थ - (तिहुवणपुज्जो होउं) अरहन्त अवस्था में तीन भुवन के जीवों का पूज्य होकर, पुनः (सेसाणि) शेष (कम्मजालाणि) कर्मजालों को (खविउ) क्षय करके (अभूदपुव्वो) अभूतपूर्व (लोयग्गणिवासिओ) लोकाग्र का निवासी (सिद्धो) सिद्ध परमात्मा (जायइ) हो जाता है।

भावार्थ - अरहंत अवस्था में तीन भुवन के जीवों का पूज्य होकर पुनः शेष कर्म जालों को क्षय करके अभूत पूर्व लोकाग्र का निवासी सिद्ध परमात्मा हो जाता है।

गमणागमण विहीणो, फंदण-चलणेहि विरहिओ सिद्धो।
अव्वाबाह सुहत्थो, परमट्ठगुणेहिं संजुत्तो॥ 68॥

गमनागमन रहित स्पन्दन, हलन चलन से रहित विशेष।
अव्याबाध अष्ट गुण संयुत, होते हैं श्री सिद्ध जिनेश ॥68॥

अन्वयार्थ - (गमणागमण विहीणो) गमन और आगमन से रहित (फंदण-चलणोहि विरहिओ) परिस्पन्द और हलन-चलन से रहित, (अव्वाबाहसुहत्थो) अव्याबाध सुख में स्थित (परमट्ठगुणेहिं) परमार्थ या परम अष्टगुणों से (संजुत्तो) संयुक्त (सिद्धो) सिद्ध परमात्मा होता है।

भावार्थ - गमन और आगमन से रहित परिस्पन्द और हलन चलन से रहित, अव्याबाध सुख में स्थित परमार्थ या परम अष्ट गुणों से संयुक्त सिद्ध परमात्मा होता है।

लोयालोयं सव्वं, जाणइ पेच्छइ करण कमरहियं।
मुत्तामुत्ते दव्वे, अणंत पज्जाय गुणकलिए ॥69॥

इन्द्रिय क्रम से रहित साथ सब , लोकालोक अनन्तानन्त।
मूर्तामूर्त द्रव्य पर्यायें, देखें जाने गुण भगवंत ॥69॥

अन्वयार्थ - (करणकमरहियं) इंद्रियों के क्रम से रहित एक साथ (सव्वं) सर्व (लोयालोयं) लोक और अलोक को, तथा (अणंतपज्जायगुणकलिए) अनन्त पर्याय और अनन्त गुणों से संयुक्त सभी (मुत्तामुत्ते दव्वे) मूर्त और अमूर्त द्रव्यों को (जाणइ) जानता है और (पेच्छइ) देखता है।

भावार्थ - इन्द्रियों के क्रम से रहित एक साथ सर्व लोक और अलोक को, तथा अनंत पर्याय और अनंत गुणों से संयुक्त सभी मूर्त और अमूर्त द्रव्यों को जानता है और देखता है।

धम्माभावे परदो, गमणं णत्थि त्ति तस्स सिद्धस्स।
अच्छइ अणंतकालं, लोयग्ग णिवासिओ होउ।।70।।

लोक बाह्य ना धर्म द्रव्य हैं, अतः सिद्ध ना करें गमन ।
होते हैं लोकाग्र निवासी, कालानन्त रहें भगवन् ॥70॥

अन्वयार्थ - (तस्स सिद्धस्स) उस सिद्ध परमात्मा का (धम्माभावे) धर्मद्रव्य का अभाव होने से (परदो) लोक से परे अलोक में (गमणं णत्थि त्ति) गमन नहीं है, इस कारण (लोयग्गणिवासिओ होउ) लोकाग्र निवासी होकर वहाँ (अणंतकालं) अनंतकाल तक (अच्छइ) रहते हैं।

भावार्थ - उस सिद्ध परमात्मा का धर्मद्रव्य का अभाव होने से लोक से परे अलोक में गमन नहीं है, इस कारण लोकाग्र निवासी होकर वहाँ अनंत काल तक रहते हैं।

संते वि धम्मदव्वे, अहो ण गच्छेइ तह य तिरियं वा।
उड्ढ गमण सहाओ, मुक्को जीवो हवे जम्हा॥ 71॥

मुक्त कर्म से जीव धर्म द्रव्य, पाके भी नीचे ना आय।
ऊर्ध्व गमन स्वभावी हो जो, मुक्त जीव तिरछा ना जाय ॥71॥

अन्वयार्थ - (मुक्को जीवो) कर्मों से मुक्त हुआ जीव (धम्मदव्वे संते वि) धर्म द्रव्य के होने पर भी (अहो ण गच्छेइ) नीचे नहीं रह जाता है, (तह य तिरियं वा) उसी प्रकार तिरछा भी नहीं जाता है। (जम्हा) क्योंकि मुक्त जीव (उड्ढगमणसहाओ) ऊर्ध्वगमन स्वभाव वाला (हवे) है।

भावार्थ - कर्मों से मुक्त हुआ जीव धर्मद्रव्य के होने पर भी नीचे नहीं जाता है, उसी प्रकार तिरछा भी नहीं जाता है, क्योंकि मुक्त जीव ऊर्ध्वगमन स्वभाव वाला है।

असरीरा जीवघणा, चरमसरीरा हवंति किंचूणा।
जम्मण-मरण-विमुक्का, णमामि सव्वे पुणो सिद्धा॥ 72॥

देह रहित वे सिद्ध घने हैं, कुछ कम परम शरीर प्रमाण ।
जन्म मरण से रहित सिद्ध पद, करते हैं हम विशद प्रणाम ॥72॥

अन्वयार्थ - (पुणो) पुनः (सिद्ध जीवा) वे सिद्ध जीव (असरीरा) शरीर रहित हैं, (घणा) अर्थात् बहु घने हैं, (किंचूणा) कुछ कम (चरमशरीरा) चरम शरीर प्रमाण (हवंति) होते हैं, (जम्मण-मरण-विमुक्का) जन्म और मरण से रहित हैं। ऐसे (सव्वे सिद्धा) सर्व सिद्धों को (णमामि) मैं नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ - पुनः वे सिद्ध जीव शरीर रहित हैं अर्थात् बहुत घने हैं, कुछ कम चरम शरीर प्रमाण हैं, जन्म और मरण से रहित हैं। ऐसे सर्व सिद्धों को मैं नमस्कार करता हूँ।

जं अल्लीणा जीवा, तरंति संसार सायरं विसमं।
तं भव्व जीव सरणं, णंदउ सग-परगयं तच्चं॥ 73॥

जिसमें लीन हुए सब प्राणी, तिरें भयानक भव संसार ।
भव्य जीव को शरणभूत वह, तत्व स्वपर गत बढ़े अपार ।73॥

अन्वयार्थ - (जं अल्लीणा) जिसमें तल्लीन हुए (जीवा) जीव (विसमं) विषम (संसार सायरं) संसार समुद्र को (तरंति) तिर जाते हैं (तं) वह (भव्वजीवसरणं) भव्य जीवों को शरणभूत (सगपरगयं) स्व और परगत (तच्चं) तत्त्व (णंदउ) सदा वृद्धि को प्राप्त हो।

भावार्थ - जिसमें तल्लीन हुये जीव विषम [दुस्तर एवं भयानक] संसार समुद्र को तिर जाते हैं वह भव्य जीवों को शरण भूत स्व और परगत तत्त्व सदा वृद्धि को प्राप्त हो।

सोऊण तच्चसारं, रइयं मुणिणाह देवसेणेण ।
जो सद्दिट्ठी भावइ, सो पावइ सासयं सोक्खं॥ 74॥

देवसेन मुनिनाथ रचित यह , तत्व सार सदृष्टी जीव ।
सुनकर करे भावना शाश्वत, सुख पाए वह 'विशद' अतीव॥74॥

अन्वयार्थ - (जो सद्दिट्ठी) जो सम्यग्दृष्टि (मुणिणाह देवसेणेण) मुनिनाथ देवसेन के द्वारा (रइयं) रचित (तच्चसारं) इस तत्त्वसार को (सोऊण) सुनकर (भावइ) उसकी भावना करेगा, (सो) वह (सासयं सोक्खं) शाश्वत सुख को (पावइ) पावेगा।

भावार्थ - जो सम्यग्दृष्टि मुनिनाथ देवसेन के द्वारा रचित इस तत्त्वसार को सुनकर उसकी भावना करेगा, वह शाश्वत् सुख को पायेगा।

।। तत्त्व सारं समाप्तं।।

Aakriti

तीर्थंकर की दिव्य देशना, झेल रहे जो गणधर देव।
सप्त तत्त्व छह द्रव्य गुणों का, देती है सन्देश सदैव॥

भेद ज्ञान प्रगटाने वाली, करने वाली कर्म शमन।
ऊँकार मय जिनवाणी माँ को, हम भी करते विशद नमन॥

श्रीमद् योगीन्दुदेव विरचित

योगसार

णिम्मल-झाण-परिट्ठया, कम्म-कलंक डहेवि।
अप्पा लद्धउ जेण परु, ते परमप्प णवेवि ॥1॥

स्थित निर्मल ध्यान में, कर्म कलंक निवार ।
परमातम पद प्राप्त जिन, वन्दन बारम्बार ॥1॥

अन्वयार्थ- णिम्मल-झाण-परिट्ठया= जो निर्मल ध्यान में स्थित हैं और, **कम्म-कलंक**= जिन्होंने कर्म-मल को, **डहेवि**= भस्म कर, **जेण परु अप्पा**= जिन्होंने परमात्म-पद को, **लद्धउ**= प्राप्त कर लिया है, **ते**= उन, **परमप्प णवेवि**= परमात्माओं को नमस्कार करता हूँ।

अर्थ - जो निर्मल ध्यान में स्थित हैं, और जिन्होंने कर्म मल को भस्म कर परमात्म पद को प्राप्त कर लिया है, उन विशद परमात्माओं को नमस्कार करता हूँ।

ग्रन्थकार की प्रतिज्ञा

घाई-चउक्कहँ किउ विलउ, णंत-चउक्कु पदिट्टु।
तह जिणइंदहँ पय णविवि, अक्खामि कव्वु सु-इट्टु॥ 2॥

कर्म घातिया नाश जिन, अनन्त चतुष्टय वान ।
नमन श्री जिनराज पद, करूँ नाथ गुणगान ॥2॥

अन्वयार्थ- घाई-चउक्कहँ= जिनने चार घातिया कर्मों का, **किउ विलउ**= नाश कर, **णंत-चउक्कु** = अनन्त-चतुष्टय को, **पदिट्टु**= प्रकट किया है, **तह**= उन, **जिणइंदहँ पय**= जिनेन्द्र के चरणों को, **णविवि**= नमस्कार कर, **सु-इट्टु कव्वु**= यहाँ अभीष्ट काव्य को, **अक्खामि**= कहता हूँ।

अर्थ - जिनने चार घातिया कर्मों का नाश कर अनंत चतुष्टय को प्रकट किया है, उन जिनेन्द्र देव के चरणों को नमस्कार कर, यहाँ अभीष्ट काव्य को कहता हूँ।

ग्रंथकर्त्ता का उद्देश्य

संसारहँ भय-भीयहँ, मोक्खहँ लालसयाहँ।
अप्पा-संबोहण-कयइ, कय दोहा एक्कमणाहँ॥ 3॥

मोक्ष की रही लालसा जिनकी, हैं संसार से जो भयभीत ।
हो एकाग्र संबोधन हेतू, दोहे रचे धर जिनपद प्रीत ॥3॥

अन्वयार्थ- संसारहँ=जो संसार से, **भयभीयहँ**= भयभीत हैं और, **मोक्खहँ**= मोक्ष के लिए, **लालसयाहँ**=

जिनकी लालसा है, **अप्पा-संबोहण**= उन आत्माओं के संबोधन के लिए, **एक्कमणाहँ**= एकाग्रचित्त से मैंने, **दोहा**= इन दोहों की, **कयइ**= रचना की है।

अर्थ - जो संसार से भयभीत हैं और मोक्ष के लिये जिनकी लालसा है, उनके संबोधन के लिये एकाग्रचित्त से मैंने इन दोहों की रचना की है।

मिथ्यादर्शन का प्रभाव

काल अणाइ अणाइ जिउ, भव-सायरु जि अणंतु।
मिच्छा-दंसण-मोहियउ, णवि सुह दुक्ख जि पत्तु॥ 4॥
कालअनादी जीव अनादी, भव सागर यह रहा अनन्त ।
मिथ्यादर्शन से मोहित हो, सुख नहिं दुख पाया भगवन्त ॥4॥

अन्वयार्थ- **काल अणाइ**= काल अनादि है, **जिउ अणाइ**= जीव अनादि हैं और, **भव-सायरु**= भवसागर, **जि अणंतु**= अनन्त है, **मिच्छादंसणमोहियउ**= उसमें मिथ्यादर्शन से मोहित जीव ने, **दुक्ख जि पत्तु**= दुःख-ही-दुःख पाया है, **णवि सुह**= सुख नहीं पाया।

अर्थ - काल अनादि है, जीव अनादि है और भवसागर अनंत है। उसमें मिथ्यादर्शन से मोहित जीव ने दुःख ही दुःख पाया है, अर्थात् सुख नहीं पाया है।

मोक्ष-सुख की प्राप्ति का उपाय

जइ बीहउ चउ-गइ-गमण, तो पर भाव चएहि।
अप्पा झायहि णिम्मलउ, जिम सिव-सुक्ख लहेहि॥ 5॥
भ्रमण से चारों गति का भय है, तो परभाव जीव तू त्याग ।
निर्मल आत्म ध्यान कर जिससे, मोक्ष मिले उसमें तू लाग ॥5॥

अन्वयार्थ- ..... हे जीव!, **जइ**= यदि तू, **चउ-गइ-गमण**= चतुर्गति के भ्रमण से, **बीहउ**= भयभीत है, **तो**= तो, **परभाव चएहि**= परभाव का त्याग कर और, **णिम्मलउ अप्पा**= निर्मल आत्मा का **झायहि**= ध्यान कर, **जिम**= जिससे तू, **सिव-सुक्ख**= मोक्ष-सुख को, **लहेहि**= प्राप्त कर सके।

अर्थ - हे जीव! यदि तू चतुर्गति के भ्रमण से भयभीत है, तो परभाव का त्याग कर, और निर्मल आत्मा का ध्यान कर, जिससे तू मोक्ष सुख को प्राप्त कर सकता है।

आत्मा के प्रकार

ति-पयारो अप्पा मुणहि, परु अंतरु बहिरप्पु।
पर झायहि अंतर-सहिउ , बाहिरु चयहि णिभंतु॥ 6॥
बहिरातम अन्तर परमातम ये, तीन भेद आतम के जान ।
बाह्य त्याग अन्तर आतम हो, परमातम का करना ध्यान ॥6॥

अन्वयार्थ- **परु**= परमात्मा, **अंतरु**= अन्तरात्मा और, **बहिरप्पु**= बहिरात्मा (इस तरह), **अप्पा**=

आत्मा के, **ति-पयारो**= तीन प्रकार, **मुणहि**= समझने चाहिये। .... हे जीव!, **अंतर-सहिउ**= अन्तरात्मा सहित होकर, **पर झायहि**= परमात्मा का ध्यान कर और, **णिभंतु**= भ्रान्तिरहित होकर, **बाहिरु चयहि**= बहिरात्मा को त्याग।

अर्थ - परमात्मा, अंतरात्मा और बहिरात्मा इस तरह आत्मा के तीन प्रकार समझने चाहिये। हे जीव! अंतरात्मा सहित होकर परमात्मा का ध्यान कर और भ्रान्ति रहित होकर बहिरात्मा को त्याग।

बहिरात्मा कौन?

मिच्छा-दंसण-मोहियउ, परु अप्पा ण मुणेइ।
सो बहिरप्पा जिण-भणिउ पुण संसार भमेइ॥ 7॥

मिथ्या से मोहित यह प्राणी, परमातम को समझे नाहिं।
बहिरातम कहते जिन उसको, पुनः पुनः संसार भम्राहिं ॥7॥

अन्वयार्थ- **मिच्छादंसणमोहियउ**= मिथ्यादर्शन से मोहित जीव, **परु अप्पा**= परमात्मा को, **ण मुणेइ**= नहीं समझता, **सो**= उसे, **बहिरप्पा जिण-भणिउ**= जिन-भगवान ने बहिरात्मा कहा है, (वह जीव) **पुण**= पुनः-पुनः, **संसार**= संसार में, **भमेइ**= परिभ्रमण करता है।

अर्थ - जो मिथ्यादर्शन से मोहित जीव परमात्मा को नहीं समझता, उसे जिन भगवान ने बहिरात्मा कहा है। वह जीव पुनः पुनः संसार में परिभ्रमण करता है।

अन्तरात्मा का स्वरूप

जो परियाणइ अप्पु परु, जो परभाव चएइ।
सो पंडिउ अप्पा मुणहु, सो संसारु मुएइ॥ 8॥

परमातम को समझे जो भी, करे जीव परभाव का त्याग ।
अन्तर आतम जीव कहाए, कर देता संसार का त्याग ॥8॥

अन्वयार्थ- **जो**= जो, **परुअप्पु**= परमात्मा को, **परियाणइ**= समझता है और, **जो**= जो, **परभाव चएइ**= परभाव का त्याग करता है, **सो**= उसे, **पंडिउ अप्पा**= पंडित-आत्मा (अन्तरात्मा), **मुणहु**= समझो, **सो**= वह जीव, **संसारु**= संसार को, **मुएइ**= छोड़ देता है।

अर्थ - जो परमात्मा को समझता है और जो परभाव का त्याग करता है, उसे पंडित-आत्मा [अंतरात्मा] समझो। वह जीव संसार को छोड़ देता है।

परमात्मा का स्वरूप

णिम्मलु णिक्कलु सुद्धु जिणु, विण्हु बुद्धु सिव संतु।
सो परमप्पा जिण-भणिउ, एहउ जाणि णिभंतु॥ 9॥

निर्मल निकिल शुद्ध जिन, विष्णु बुद्ध शिव शांत ।
जिन ने परमातम कहा, इसमें नहीं है भ्रांति ॥9॥

अन्वयार्थ- **णिम्मलु**= जो निर्मल, **णिक्कलु**= निष्कल, **सुद्धु**= सुद्ध, **जिणु**= जिन, **विण्हु**= विष्णु, **बुद्धु**= बुद्ध, **सिव**= शिव और, **संतु**= शान्त है, **सो**= उसे, **परमप्पा जिण-भणिउ**= जिन भगवान ने परमात्मा कहा है-, **एहउ**= इसमें कुछ भी, **णिभंतु जाणि**= भ्रांति न करनी चाहिए।

अर्थ - जो निर्मल, निष्फल, शुद्ध, जिन, विष्णु, बुद्ध, शिव और शांत है, उसे जिन भगवान ने परमात्मा कहा है। इसमें कुछ भी भ्रांति न करनी चाहिये।

बहिरात्मा का स्वरूप

देहादिउ जे परि कहिय, ते अप्पाणु मुणेइ।
सो बहिरप्पा जिणभणिउ, पुणु संसारु भमेइ॥ 10॥

देहादिक जो पर कहे , उनको जाने आत्म ।
भव सिन्धू में वह भ्रमे, कहलाए बहिरात्म ॥10॥

अन्वयार्थ- **देहादिउ जे**= देह आदि जो पदार्थ, **परि कहिय**= पर कहे गये हैं, **ते**= उन पदार्थों को ही जो, **अप्पाणु**= आत्मा, **मुणेइ**= समझता है, **सो**= उसे **बहिरप्पा जिणभणिउ**= जिन-भगवान ने बहिरात्मा कहा है, **संसारु**= वह जीव संसार में, **पुणु**= पुनः-पुनः, **भमेइ**= परिभ्रमण करता है।

अर्थ - देह आदि जो पदार्थ पर कहे गये हैं, उन पदार्थों को ही जो आत्मा समझता है, उसे जिन भगवान ने बहिरात्मा कहा है। वह जीव संसार में फिर फिर से परिभ्रमण करता है।

आत्मा को पहिचान

देहादिउ जे परि कहिय, ते अप्पाणु ण होहि।
इउ जाणेविणु जीव तुहुँ, अप्पा अप्प मुणेहि॥ 11॥

देहादिक जो पर पदार्थ हैं, वे आतम ना हों यह जान ।
निज आतम को अरे जीव तू!, चेतनवान आत्म पहिचान ॥11॥

अन्वयार्थ- **देहादिउ जे**= देह आदि जो पदार्थ, **परि कहिय**= पर कहे गये हैं, **ते**= वे पदार्थ, **अप्पाणु ण होहि**= आत्मा नहीं होते, **इउ जाणेविणु**= यह जानकर, **जीव**= हे जीव!, **तुहुँ**= तू, **अप्पा अप्प**= आत्मा को आत्मा, **मुणेहि**= पहिचान।

अर्थ - देह आदि जो पदार्थ पर कहे गये हैं, वे पदार्थ आत्मा नहीं होते-यह जानकर, हे जीव! तू आत्मा को आत्मा पहचान।

निर्वाण-मार्ग

अप्पा अप्पउ जइ मुणहि, तो णिव्वाणु लहेहि।
पर अप्पा जइ मुणहि तुहुँ, सो संसार भमेहि॥ 12॥

आतम को समझे यदि तू हे, जीव! पाएगा पद निर्वाण ।
पर पदार्थ माने यदि आतम, तो भव भ्रमण करे यह मान ॥12॥

अन्वयार्थ- ..... हे जीव, **जइ**= यदि तू, **अप्पा अप्पउ**= आत्मा को आत्मा, **मुणहि**= समझेगा, **तो**= तो, **णिव्वाणु लहेहि**= निर्वाण प्राप्त करेगा और, **जइ**= यदि तू, **पर**= पर पदार्थों को, **अप्पा मुणहि**= आत्मा मानेगा, **तुहुँ सो**= तो तू, **संसार भमेहि**= संसार में परिभ्रमण करेगा।

अर्थ - हे जीव! यदि तू आत्मा को आत्मा समझेगा, तो निर्वाण प्राप्त करेगा तथा यदि तू पर पदार्थों को आत्मा मानेगा, तो तू संसार में परिभ्रमण करेगा।

परमगति प्राप्ति का उपाय

इच्छा-रहियउ तव करहि, अप्पा अप्पु मुणेहि।
तो लहु पावहि परम-गइ, फुडु संसार ण एहि॥ 13॥
हे आतम! इच्छा से विरहित, सुतप करेआतम को जान ।
शीघ्र परमगति को पाएगा, ना संसार में आए मान ॥13॥

अन्वायार्थ- **अप्पा**= हे आत्मन्!, **इच्छा-रहियउ**= यदि तू इच्छा-रहित होकर, **तव करहि**= तप करे और, **अप्पु मुणेहि**= आत्मा को समझे, **तो**= तो तू, **लहु**= शीघ्र ही, **परम-गइ पावहि**= परमगति को पा जाय और तू, **फुडु**= निश्चय से फिर, **संसारु**= संसार में, **ण एहि**= न आवे।

अर्थ - हे आत्मन्! यदि तू इच्छा रहित होकर तप करे और आत्मा को समझे, तो तू शीघ्र ही परम गति को पा जायेगा और तू निश्चय से फिर संसार में न आये।

भावों से बंध, भावों से मोक्ष

परिणामे बंध जि कहिउ, मोक्ख वि तह जि वियाणि।
इउ जाणे विणु जीव तुहुँ, हु तहभाव परियाणि॥ 14॥
परिणामों से बंध कहा है, परिणामों से हो निर्वाण ।
ऐसा समझ जीव हे! मन में, उन भावों को तू पहचान ॥14॥

अन्वयार्थ- **परिणामें जि**= परिणाम से ही जीव को, **बंध कहिउ**= बंध कहा है, **तह**= तथा, **मोक्ख वि**= परिणाम से ही मोक्ष, **वियाणि**= कहा है, **इउ जाणेविणु**= यह समझकर, **जीव**= हे जीव!, **तुहुँ**= तू, **हु**= निश्चय से, **तहभाव**= उनभावों को, **परियाणि**= जान पहिचान।

अर्थ - परिणाम से ही जीव को बंध कहा गया है और परिणाम से ही मोक्ष कहा है-यह समझकर, हे जीव! तू निश्चय से उन भावों को जान।

पुण्य सब कुछ नहीं

अह पुणु अप्पा णवि मुणहि, पुण्णु जि करहि असेस।
तो वि ण पावहि सिद्धि-सुहु, पुणु संसारु भमेस॥ 15॥
नहीं आत्मा को जाने तू, करे पुण्य ही पुण्य महान ।
सिद्ध सुखों को तो ना पाए, भ्रमण करे तू सर्व जहान ॥15॥

अन्वयार्थ- **अह पुणु**= हे जीव! यदि तू, **अप्पा**= आत्मा को, **णवि मुणहि**= नहीं जानेगा और, **असेस पुण्णु जि**= सब पुण्य-ही-पुण्य, **करहि**= करता रहेगा, **तो वि**= तो भी तू, **सिद्धि-सुहु**= सिद्ध सुख को, **ण पावहि**= नहीं पा सकता, किन्तु **पुणु**= पुनः-पुनः, **संसारु**= संसार में, **भमेय**= भ्रमण करेगा।
अर्थ - हे जीव! यदि तू आत्मा को नहीं जानेगा और सब पुण्य ही पुण्य करता रहेगा, तो भी तू सिद्ध सुख को नहीं पा सकता, किन्तु पुनः पुनः असार संसार में ही भ्रमण करेगा।

मोक्ष का कारण क्या ?

अप्पा-दंसणु एक्कु परु, अण्णु ण किं पि वियाणि।
मोक्खहँ कारण जोइया, णिच्छइँ एहउ जाणि॥ 16॥
बाह्यआत्मा का दर्शन हो , मोक्ष का कारण हे योगीश! ।
नहीं मोक्ष का कारण कोई, अन्य जान तू हो भयभीत ॥16॥

अन्वयार्थ- **जोइया**= हे योगिन्!, **एक्कु**= एक, **परु अप्पा-दंसणु**= परम आत्मदर्शन ही, **मोक्खहँ कारण**= मोक्ष का कारण है, **अण्णु किं पि**= अन्य कुछ भी, **ण वियाणि**= मोक्ष का कारण नहीं है, **एहउ**= यह तू, **णिच्छइँ जाणि**=निश्चय समझ।
अर्थ - हे योगिन्! एक परम आत्म दर्शन ही मोक्ष का कारण है, अन्य कुछ भी मोक्ष का कारण नहीं, यह तू निश्चय समझ और आत्म दर्शन करने का प्रयत्न कर।

निश्चय से आत्मा ही सब कुछ

मग्गण-गुण-ठाणइ, कहिया ववहारेण वि दिट्ठि।
णिच्छय-णइँ अप्पा मुणहि, जिम पावहु परमेट्ठि॥17॥
गुणस्थान मार्गणाओं का, किया गया व्यवहार कथन ।
निश्चय से निज आतम जाने , परमेष्ठी पददाय वचन॥17॥

अन्वयार्थ- **मग्गण-गुण ठाणइ**= मार्गणा और गुणस्थान का, **ववहारेण वि**= व्यवहार से ही, **दिट्ठि कहिय**=उपदेश किया गया है, **णिच्छय-णइँ**= निश्चय से तो तू, **अप्पा**= आत्मा को ही (सब कुछ), **मुणहि**= समझ, **जिम**= जिससे तू, **परमेट्ठि**= परमेष्ठि-पद को, **पावहु**= प्राप्त कर सके।
अर्थ - मार्गणा और गुणस्थान का व्यवहार से ही उपदेश किया गया है, निश्चयनय से तो तू आत्मा को ही [सब कुछ] समझ, जिससे तू परमेष्ठी पद को प्राप्त कर सके।

ध्यान से निर्वाण

गिहि-वावार-परिट्ठिया, हेयाहेय मुणंति।
अणुदिणु झायहिँ देउ जिणु, लहु णिव्वाणु लहंति॥ 18॥
गृह धन्धें में रत रहकर जो, हेयाहेय को जानें लोग ।
जिनका ध्यान निरंतर करके, शिव का शीघ्र पाए संयोग ॥18॥

अन्वयार्थ- गिहि-वावार-परिट्ठिया= जो गृहस्थी के व्यापर धंधे मे रहते हुए भी, **हेयाहेउ**= हेय और उपादेय को, **मुणंति**= समझते हैं और, **जिणु देउ**= जिन-भगवान का, **अणुदिणु**= निरन्तर, **झायहिँ**= ध्यान करते हैं, **लहु**= वे शीघ्र ही, **णिव्वाणु**= निर्वाण को, **लहंति**= पाते हैं।

अर्थ - जो गृहस्थी के धंधे में रहते हुये भी हेयाहेय को समझते हैं और जिन भगवान का निरंतर ध्यान करते हैं वे शीघ्र ही निर्वाण को पाते हैं।

जिनेन्द्र चिन्तवन, स्मरण से परम पद

जिणु सुमिरहु जिणु चिंतहु, जिणु झायहु सुमणेण।
सो झायंतहँ परम-पउ, लब्भइ एक्क-खणेण॥ 19॥
चिन्तन और स्मरण जिनका, शुद्ध भाव से करना ध्यान ।
क्योकि ध्यान के द्वारा क्षण में, प्राणी पाए पद निर्वाण ॥19॥

अन्वयार्थ- सुमणेण= शुद्ध मन से, **जिणु सुमरिहु**= जिन का स्मरण करो, **जिणु चिंतहु**= जिन का चिंतवन करो और, **जिणु झायहु**= जिन का ध्यान करो, **सो झायंतहँ**= उनका ध्यान करने से, **एक्क-खणेण**= एक क्षण में, **परम-पउ**= परमपद, **लब्भइ**= प्राप्त हो जाता है।

अर्थ - शुद्ध मन से जिन का स्मरण करो, जिन का चिन्तवन करो, और जिन का ध्यान करो, क्योंकि जिनका ध्यान करने से एक क्षण भर में परम पद प्राप्त हो जाता है।

शुद्धात्मा व जिनेन्द्र में भेद नहीं

सुद्धप्पा अरु जिणवरहँ, भेउ ण किं पि वियाणि।
मोक्खहँ कारणे जोइया, णिच्छइँ एउ विजाणि॥ 20॥
मोक्ष प्राप्त करने में एवं, शुद्धात्मा में हे योगीश !।
नहीं भेद है कुछ जिनवर में, निश्चय मानो यही ऋशीष ॥20॥

अन्वयार्थ- जोइया= हे योगिन्!, **मोक्खहँ कारणे**= मोक्ष प्राप्त करने में, **सुद्धप्पा**= शुद्धात्मा, **अरु**= और, **जिणवरहँ**= जिन भगवान में, **किं पि**= कुछ भी, **भेउ ण वियाणि**= भेद न समझो, **एउ**= यह, **णिच्छइं विजाणि**= निश्चय जानो।

अर्थ - हे योगिन्! मोक्ष प्राप्त करने में शुद्धात्मा और जिन भगवान में कुछ भी भेद न समझो यह निश्चय मानो और शुद्धात्मा का ध्यान करो।

सिद्धांत का सार

जो जिणु सो अप्पा मुणहु, इहु सिद्धांतहँ सारु।
इउ जाणेविणु जोइ यहो, छंडहु मायाचारु॥ 21॥
जो जिनेन्द्र हैं वही आत्मा, है सिद्धान्त का ये ही सार ।
इसे समझ कर हे योगीजन!, मन से छोड़ो मायाचार ॥21॥

अन्वयार्थ- **जो जिणु**= जो जिन भगवान हैं, **सो अप्पा**= वही आत्मा है- **इहु**= यही, **सिद्धांतहँ सारु**= सिद्धांत का सार, **मुणहु**= समझो, **इउ जाणेविणु**= इसे समझकर, **जोइयहो**= हे योगीजनों!, **मायाचारु छंडहु**= मायाचार को छोड़ो।

अर्थ - जो जिन भगवान हैं वही आत्मा है- यही सिद्धांत का सार समझो। इसे समझकर, हे योगीजनों! मायाचार को छोड़ो।

मैं ही परमात्मा हूँ

जो परमप्पा सो जि हउँ, जो हउँ सो परमप्पु।
इउ जाणेविणु जोइया, अण्णु ण करहु वियप्पु॥ 22॥
जो परमातम है वह मैं हूँ , जो मैं हूँ वह है परमात्म ।
अन्य विकल्प करो मत कोई , समझो हे योगी! यह जान ॥22॥

अन्वयार्थ- **जो परमप्पा**= जो परमात्मा है, **सो जि हउँ**= वही मैं हूँ तथा, **जो हउँ**= जो मैं हूँ, **सो परमप्पु**= वही परमात्मा है, **जोइया**= हे योगिन्!, **इउ जाणेविणु**= यह जानकर, **अण्णु**= अन्य कुछ भी, **वियप्पु**= विकल्प, **ण करहु**= मत करो। यही आगम का सार है।

अर्थ - जो परमात्मा हैं वही मैं हूँ, तथा जो मैं हूँ वही परमात्मा है-यह समझकर हे योगिन् ! अन्य कुछ भी विकल्प मत करो।

आत्मा असंख्यात प्रदेशी है

सुद्ध-पएसहँ पूरियउ, लोयायास-पमाणु।
सो अप्पा अणुदिणु मुणहु, पावहु लहु णिव्वाणु॥ 23॥
लोकाकाश प्रमाण रहा जो, शुद्ध प्रदेशों से परिपूर्ण ।
सदा आत्मा समझो उसको, पाओ मोक्ष कर्म कर चूर्ण ॥23॥

अन्वयार्थ- **सुद्ध-पएसहँ पूरियउ**= जो सुद्ध प्रदेशों से पूर्ण, **लोयायास-पमाणु**=लोकाकाश-प्रमाण हैं, **सो**= उसे, **अणुदिणु**= सदा, **अप्पा मुणहु**= आत्मा समझो और, **लहु**= शीघ्र ही, **णिव्वाणु पावहु**= निर्वाण प्राप्त करो।

अर्थ - जो शुद्ध प्रदेशों से पूर्ण लोकाकाश-प्रमाण है, उसे सदा आत्मा समझो और शीघ्र ही निर्वाण प्राप्त करो। अन्य कोई उपाय नहीं है।

आत्मा लोकाकाश या शरीर प्रमाण है

णिच्छइँ लोय-पमाणु मुणि, ववहारे सुसरीरु।
एहउ अप्प-सहाउ मुणि, लहु पावहि भव-तीरु॥ 24॥
निश्चय से आतम स्वभाव जो , मान रहा है लोक प्रमाण ।
है व्यवहार से देह बराबर, शीघ्र पाए वह पद निर्वाण ॥24॥

अन्वयार्थ- **एहउ अप्प-सहाउ**= जो आत्मस्वभाव को, **णिच्छइँ**= निश्चय नय से, **लोय-पमाणु**= लोक प्रमाण और, **ववहारे** = व्यवहार नय से, **सुसरीरु**= स्वशरीर प्रमाण, **मुणि**= समझता है, **लहु**= वह शीघ्र ही, **भव-तीरु**= संसार से पार, **पावहि**= हो जाता है।

अर्थ - जो आत्म स्वभाव को निश्चय नय से लोक प्रमाण और व्यवहार नय से स्व शरीर प्रमाण समझता है, वह शीघ्र ही संसार से पार हो जाता है।

संसार का कारण मिथ्यात्व

चउरासी-लक्खहिँ फिरिउ, कालु अणाइ अणंतु।
पर सम्मत्तु ण लद्धु जिय, एहउ जाणि णिभंतु॥ 25॥

लाख चुरासी योनी में यह ,काल अनादी भ्रम के जीव ।
पाया ना सम्क्यत्व कभी भी , पाप कमाया अतः अतीव ॥25॥

अन्वयार्थ- ..... यह जीव, **अणाइ अणंतु कालु**= अनादि अनन्त काल तक, **चउरासी-लक्खहिँ**= चौरासी लाख योनियों में, **फिरिउ**= भटकता फिरा है, **पर**= परन्तु, **सम्मत्तु**= सम्यक्त्व, **ण लद्धु**= नहीं पाया, **जिय**= हे जीव!, **एहउ**= यह, **णिभंतु जाणि**= निस्सन्देह समझो।

अर्थ - यह जीव अनादि अनंत काल तक चौरासी लाख योनियों में भटका फिरता है, परंतु इसने सम्यक्त्व नहीं पाया है। हे जीव-यह निःसंदेह समझ और सम्यक्त्व प्राप्त कर।

आत्मा स्वभाव समझो

सुद्ध सचेयणु बुद्ध जिणु, केवल-णाण-सहाउ।
सो अप्पा अणुदिणु मुणहु, जइ चाहहु सिव-लाहु॥ 26॥

मोक्ष की इच्छा होवे यदि तो, निज आतम को करना शुद्ध ।
केवल ज्ञान शुद्ध चेतनमय, जिन स्वभावमय रहे विशुद्ध ॥26॥

अन्वयार्थ- **जइ**= यदि, **सिव-लाहु**= मोक्ष पाने की, **चाहहु**= इच्छा करते हो, तो **अणुदिणु**= निरन्तर ही, **सो अप्पा**= आत्मा को, **सुद्ध**= शुद्ध, **सचेयणु**= सचेतन, **बुद्ध**= बुद्ध, **जिणु**= जिन और, **केवल-णाण**= केवल ज्ञान, **सहाउ**= स्वभावमय, **मुणहु**= समझो।

अर्थ - यदि मोक्ष पाने की इच्छा करते हो, तो निरंतर ही आत्मा को शुद्ध, सचेतन, बुद्ध,जिन और केवलज्ञान को स्वभावमय समझो।

मोक्ष हेतु आत्मस्वभाव भावो

जाम ण भावहि जीव तुहुँ, णिम्मल अप्प-सहाउ।
ताम ण लब्भइ सिव- गमणु, जहिँ भावइ तहि जाउ॥ 27॥

निर्मल आत्म स्वभाव की जब तक, करे भावना ना हे जीव! ।
तब तक मोक्ष नहीं पा सकता, इच्छा हो जहाँ भ्रमे अतीव ॥27॥

अन्वयार्थ- **जीव**= हे जीव!, **जाम तुहुँ**= जब तक तू, **णिम्मल अप्प-सहाउ**= निर्मल आत्मस्वभाव की, **ण भावहि**= भावना नहीं करता, **ताम**= तब तक, **सिव-गमणु**= मोक्ष-मार्ग, **ण लब्भइ**= नहीं पा सकता, **जहिं भावइ**= अब जहाँ तेरी इच्छा हो, **तहि जाउ**= वहाँ जा।

अर्थ - हे जीव ! जब तक तू निर्मल आत्मस्वभाव की भावना नहीं करता, तब तक मोक्ष नहीं पा सकता। अब जहाँ तेरी इच्छा हो वहाँ जा।

जीव के ध्येय जिनेन्द्र देव

जो तइलोयहँ झेउ जिणु, सो अप्पा णिरु वुत्तु।
णिच्छय-णहँ एमइ भणिउ, एहउ जाणि णिभंतु॥ 28॥

ध्येय तीन लोकों के हैं जिन, निश्चय से वे आत्म कहे।
निश्चय नय से रहा कथन यह , नहीं भ्रान्ति यह सत्य रहे॥28॥

अन्वयार्थ- **जो तइलोयहँ**= जो तीनों लोकों के, **झेउ**= ध्येय, **जिणु**= जिन भगवान हैं, **णिरु**= निश्चय से, **सो**= उन्हें ही, **अप्पा वुत्तु**= आत्मा कहा है, **एमइ भणिउ**= यह कथन, **णिच्छय-णइँ**= निश्चयनय से है, **एहउ**= इसमें, **णिभंतु जाणि**= भ्रांति न करनी चाहिए।

अर्थ - जो तीनों लोकों के ध्येय जिन भगवान हैं, निश्चय से उन्हें ही आत्मा कहा है-यह कथन निश्चय नय से है। इसमें भ्रांति नहीं करना चाहिये।

अज्ञानी का तप मोक्ष का उपाय नहीं

वय-तव-संजम मूल-गुण, मूढहँ मोक्ख ण वुत्तु।
जाव ण जाणइ इक्क परु, सुद्धउ भाउ पवित्तु॥ 29॥

शुद्ध भाव का ज्ञान ना जब जक, होवे तब तक प्राणी मूढ़।
तप व्रत संयम और मूलगुण , धर भी मोक्ष न पाए विमूढ़॥ 29॥

अन्वयार्थ- **जाव**= जब तक, **इक्क परु सुद्धउ**= एक परम शुद्ध, **पवित्तु भाउ**= पवित्र भाव को, **ण जाणइ**= नहीं जानता, **मूढहँ**= तब तक मूढ़ लोगों के जो, **वय-तव**= व्रत, तप, **संजम**= संयम और, **मूल-गुण**= मूलगुण हैं, उन्हें, **मोक्ख**= मोक्ष (का कारण), **ण वत्तु**= नहीं कहा जाता।

अर्थ - जब तक परम शुद्ध भाव का ज्ञान नहीं होता, तब तक मूढ लोगों के जो व्रत, तप, संयम और मूलगुण हैं, उन्हें मोक्ष [का कारण] नहीं कहा जाता है।

सिद्धि हेतु संयम युक्त होइये

जइ णिम्मल अप्पा मुणइ, वय-संजम-संजुत्तु।
तो लहु पावइ सिद्धि-सुह, इउ जिण णाहहँ उत्तु॥ 30॥

श्री जिनेन्द्र का कथन रहा यह, व्रत अरु संयम से संयुक्त ।
निर्मल आतम को पहिचाने, शीघ्र होय इस भव से मुक्त ॥30॥

अन्वयार्थ- **जइ**= यदि, **वय-संजम**= व्रत और संयम से, **संजुत्तु**= युक्त होकर जीव, **णिम्मल अप्पा**= निर्मल आत्मा को, **मुणइ**= पहिचानता है, **तो लहु**= तो वह शीघ्र ही, **सिद्धि-सुह**= सिद्धि-सुख को, **पावइ**= पाता है, **इउ**= ऐसा, **जिणणाहहँ**= जिनेन्द्र देव का, **उत्तु**= कथन है।

अर्थ - जिनेन्द्र देव का कथन है कि यदि व्रत और संयम से युक्त होकर जीव निर्मल आत्मा को पहिचानता है, तो वह शीघ्र ही सिद्धि सुख को पाता है।

शुद्ध भावों वाले के व्रत, तप मुक्तिदायी हैं

वय तव संजमु सील जिय, ए सव्वइँ अकयत्थु।
जाव ण जाणइ इक्क परु, सुद्धउ भाउ पवित्तु॥ 31॥

परम शुद्ध भावों का जब तक , जीवों को ना होवे ज्ञान ।
तप व्रत संयम और शील सब, कार्यकारी ना तब तक जान ॥31॥

अन्वयार्थ- **जाव**= जब तक, **जिय**= जीव को, **इक्क परु सुद्धउ**= एक परम शुद्ध, **पवित्तु**= पवित्र भाव का, **ण जाणइ**= ज्ञान नहीं होता, (तब तक) **वउ तव**= व्रत, तप, **संजमु, सील**= संयम और शील, **ए सव्वइ** = ये सब, **अकयत्थु**= कार्यकारी नहीं होते।

अर्थ - जब तक जीव को एक परम शुद्ध पवित्र भाव का ज्ञान नहीं होता, तब तक व्रत, तप, संयम और शील ये सब कुछ भी कार्यकारी नहीं होते।

मोक्षार्थ पुण्य-पाप छोड़ो

पुण्णि पावइ सग्ग जिउ, पावएँ णरय-णिवासु।
वे छंडिवि अप्पा मुणइ, तो लब्भइ सिववासु॥ 32॥

पाप के फल से जीव नरक यह, पुण्य के फल से पाए स्वर्ग ।
पुण्य पाप दोनों को छोड़े, आतम वह पाए अपवर्ग ॥32॥

अन्वयार्थ- **जिउ**= जीव, **पुण्णिं**= पुण्य से, **सग्ग पावइ**= स्वर्ग पाता है और, **पावएँ**= पाप से, **णरय-णिवासु**= नरक निवास, **वे**= इन दोनों को (पुण्य और पाप को) **छंडिवि**= छोड़कर, **अप्पा मुणइ**= आत्मा को जानता है, **तो**= वह, **सिववासु लब्भइ**= मोक्ष को प्राप्त करता है।

अर्थ - पुण्य से जीव स्वर्ग पाता है, और पाप से नरक में जाता है। जो इन दोनों को [पुण्य और पाप] छोड़कर आत्मा को जानता है, वह मोक्ष प्राप्त करता है।

व्रत, तप, संयम, व्यवहार चरित्र है

वउ तउ संजमु सील जिय, इउ सव्वइँ ववहारु।
मोक्खहँ कारणु एक्क मुणि, जो तइलोयहँ सारु॥ 33॥

व्रत तप संयम और शील ये, माने जाते हैं व्यवहार ।
मोक्ष का कारण रहा एक ही, तीनों लोकों का यह सार ॥33॥

अन्वयार्थ- **वउ**= व्रत, **तउ**= तप, **संजमु**= संयम और, **सील**= शील, **इउ सव्वइँ**= ये सब, **जिय**= जीव के, **ववहारु**= व्यवहार से ही माने जाते हैं, **मोक्खहँ कारणु**= मोक्ष का कारण तो, **एक्कु**= एक आत्मा ही, **मुणि**= समझना चाहिए और, **जो**= वही, **तइलोयहँ**= तीन लोक का, **सारु**= सार है।
अर्थ - व्रत, तप, संयम और शील ये सब व्यवहार से ही माने जाते हैं। मोक्ष का कारण तो एक आत्मा ही समझना चाहिये, और वही तीनों लोकों का सार है।

आत्मभाव ही निजभाव

अप्पा अप्पइँ जो मुणइ, जो परभाउ चएह।
सो पावइ सिवपुरि-गमणु, जिणवरु एम भणेइ॥ 34॥
जो आतम को आत्म भाव से , जाने छोड़े जो परभाव ।
शिवपुर जावे जिनवर कहते, रहा जीव का यही स्वभाव ॥34॥

अन्वयार्थ- **जो**= जो, **अप्पा**= आत्मा को, **अप्पइँ**= आत्मभाव से, **मुणइ**= जानता है और, **जो**= जो, **परभाउ**= परभाव को, **चएह**= छोड़ देता है, **सो**= वह, **सिवपुरि-गमणु पावइ**= मोक्षमार्ग प्राप्त करता है, **एम**= ऐसा, **जिणवरु**= जिनवर ने, **भणेइ**= कहा है।
अर्थ - जो आत्मा को आत्मभाव से जानता है और परभाव को छोड़ देता है, वह शिवपुरी को (मोक्ष) जाता है- ऐसा जिनवर ने कहा है।

द्रव्य, पदार्थ, तत्त्व को व्यवहार से जानो

छह दव्वहँ जे जिण-कहिय, णव पयत्थ जे तत्त।
विवहारेण य उत्तिया, ते जाणियहि पयत्त॥ 35॥
कहे द्रव्य छह नव पदार्थ अरु, सप्त तत्त्व जिनदेव महान ।
व्यवहार नय से कहे गये यह, हो प्रयत्न करना तुम ज्ञान ॥35॥

अन्वयार्थ- **जिण**= जिनभगवान् ने, **जे**= जो, **छह दव्वहँ**= छह द्रव्य, **णव पयत्थ**= नौ पदार्थ और, **जे तत्त**= (सात) तत्त्व, **कहिय**= कहे हैं, **विवहारेण य**= वे व्यवहारनय से, **उत्तिया**= कहे हैं, **ते पयत्त**= उनका प्रयत्नशील होकर, **जाणियहि**= ज्ञान प्राप्त करो।
अर्थ - जिन भगवान ने जो छह द्रव्य, नौ पदार्थ और [सात] तत्त्व कहे हैं, वे व्यवहार नय से कहे हैं, उनका प्रयत्नशील होकर ज्ञान प्राप्त करो।

सचेतन जीव ही, सारभूत

सव्व अचेयण जाणि जिय, एक्क सचेयणु सारु।
जो जाणेविणु परम-मुणि, लहु पावइ भवपारु॥ 36॥
जो पदार्थ हैं सभी अचेतन, जीव रहा इक चेतन वान ।
सारभूत वह ऐसा जानो, मुनी शीघ्र पावें निर्वाण ॥36॥

अन्वयार्थ- लोक में (जितने भी पदार्थ हैं), **सव्व**= वे सब, **अचेयण जाणि**= अचेतन हैं, **सचेयणु**= सचेतन तो, **एक्क**= केवल एक, **जिय**= जीव ही है और वही, **सारु**= सारभूत है, **जो जाणविणु**= उसको जानकर, **परम-मुणि**= परम-मुनि, **लहु**= शीघ्र ही, **भवपारु पावइ**= संसार से पार होता है।
अर्थ - जितने भी पदार्थ हैं वे सब अचेतन हैं, चेतन तो केवल जीव ही है, और वही सारभूत है। जिसको जानकर परम मुनि शीघ्र ही संसार से पार होता है।

व्यवहार त्यागकर, आत्मा जानो

जइ णिम्मलु अप्पा मुणहि, छंडिवि सहु ववहारु।
जिण-सामिउ एमइ भणइ, लहु पावइ भवपारु॥ 37॥
सब व्यवहार त्याग कर यदि, तू निर्मल आतम को जाने ।
श्री जिनेन्द्र कहते हैं तो तू, शीघ्र पार हो यह माने ॥37॥

अन्वयार्थ- **सहु ववहारु**= सर्व व्यवहार को, **छंडिवि**= त्यागकर, **जइ**= यदि तू, **णिम्मुल अप्पा**= निर्मल आत्मा को, **मुणहि**= जानेगा (तो तू), **लहु**= शीघ्र ही, **भवपारु पावइ**= संसार से पार होगा, **एमइ**= ऐसा, **जिण-सामिउ**= जिनेन्द्रदेव, **भणइ**= कहते हैं।
अर्थ - सर्व व्यवहार को त्याग कर यदि तू निर्मल आत्मा को जानेगा, तो तू संसार से शीघ्र ही पार होगा- ऐसा जिनेन्द्र देव कहते हैं।

मोक्षार्थी जीव व अजीव को जानें

जीवाजीवहँ भेउ जो, जाणइ तिं जाणियउ।
मोक्खहँ कारण एउ भणइ, जोइ जोइहिं भणिउँ॥ 38॥
जीवाजीव भेद जो जाने, सब कुछ वही जाने वह संत ।
हे योगी! इसको योगीजन, मोक्ष का कारण कहे अनन्त ॥38॥

अन्वयार्थ- **जो**= जो, **जीवाजीवहँ भेउ**= जीवाजीव के भेद को, **जाणइ**= जानता है, **तिं जाणियउ**= वही (सब कुछ) जानता है, **एउ जोइहिं**= इसी को योगीजनों ने, **मोक्खहँ कारण**= मोक्ष का कारण, **भणिउँ**= कहा है। **जोइ भणइ**= ऐसा योगीन्द्र कहते हैं।
अर्थ - जो जीवाजीव के भेद को जानता है, वही [सब कुछ] जानता है, तथा हे योगिन ! इसी को योगीजनों ने मोक्ष का कारण कहा है।

मोक्षार्थी ज्ञान-स्वभावी-आत्मा को जानें

केवल-णाण-सहाउ सो, अप्पा मुणि जीव तुहुँ।
जइ चाहहि सिव-लाहु भणइ, जोइ जोइहिं भणिउं॥ 39॥
यदि मोक्ष की इच्छा है तो ,केवल ज्ञान स्वभावी आत्म ।
उसको ही पहचानों योगी, कहते हैं ऐसा परमात्म ॥39॥

अन्वयार्थ- जीव= हे जीव!, **जइ तुहुँ**= यदि तूँ, **सिव-लाहु**= मोक्ष पाने की, **चाहहि**= इच्छा करता है (तो तू), **केवल-णाण-सहाउ**= केवलज्ञान-स्वभावी, **सो अप्पा**= आत्मा को, **मुणि**= पहिचान, **भणइ जोइ जोइहिँ**= योगीन्द्र कहते हैं, ऐसा योगियों ने, **भणिहँ**= कहा है।

अर्थ - हे जीव ! यदि तू मोक्ष पाने की इच्छा करता है, तो तू केवलज्ञान-स्वभावमय आत्मा को पहिचान, ऐसा योगियों ने कहा है।

सर्वत्र आत्मा-ही-आत्मा (चौपाई)

को (?) सुसमाहि करउ को अंचउ, छोपु-अछोपु करिवि को बंचउ।।
हलसहिकलहु केण समाणउ, जहिं कहिं जोवउ तहिं अप्पाणउ॥ 40॥

कौन समाधी कौन अर्चना , करे वंचना स्पर्शास्पर्श ।
मैत्री किस के साथ कलह हो, हर स्थान हो आतम दर्श ॥40॥

अन्वयार्थ- को सुसमाहि= कौन तो समाधि करे, **को अंचउ**= कौन अर्चन-पूजन करे, **को छोपु-अछोपु करिवि**= कौन स्पर्शास्पर्श करे, **को बंचउ**= कौन वंचना करे, **केण सहि**= कौन किसके साथ, **हल कलहु**= मैत्री करे या कलह करे, **जहिं कहिं जोवउ**= जहाँ कहीं देखो, **तहिं**= वहाँ, **अप्पाणउ**= आत्मा ही आत्मा, **समाणउ**= दृष्टिगोचर होती है।

अर्थ - कौन तो समाधि करे? कौन अर्चन पूजन करे? कौन स्पर्शास्पर्श करके कौन वंचना करे? कौन किसके साथ मैत्री करे? और कौन किसके साथ कलह करे? जहाँ देखो वहाँ आत्मा ही आत्मा दृष्टिगोचर होती है।

कुतीर्थ-भ्रमण आत्मदेव की भूल

ताम कुतित्थइँ परिभमइ, धुत्तिम ताम करेइ।
गुरुहु पसाएँ जाम णवि, अप्पा-देउ मुणेइ॥ 41॥

गुरु प्रसाद से आत्म देव को, जब तक नहीं जानता जीव ।
करे धूर्तता तब तक भटके, वह कुतीर्थ में नित्य अतीव ॥41॥

अन्वयार्थ- जाम= जब तक, **गुरुहु पसाएँ**= गुरु-प्रसाद से, **अप्पा-देउ**= आत्मदेव को, **णवि मुणेइ**= नहीं जानता, **ताम**= तभी तक (वह), **कुतित्थइँ**= कुतीर्थों में, **परिभमइ**= भ्रमण करता है और, **ताम**= तभी तक (वह), **धुत्तिम करेइ**= धूर्तता करता है।

अर्थ - जब तक जीव गुरु प्रसाद से आत्मदेव को नहीं जानता, तभी तक वह कुतीर्थों में भ्रमण करता है, और तभी तक वह धूर्तता करता है।

तीर्थ या देवालय में जिनदेव नहीं

तित्थहिं देवलि देउ णवि, इम सुइकेवलि-वुत्तु।
देहा-देवलि देउ जिणु, एहउ जाणि णिरुत्तु॥ 42॥

नहीं तीर्थ देवालय में ना, देह देवालय में जिनदेव ।
स्थित है निश्चय से समझो, श्रुत केवली कहें सदैव ॥42॥

अन्वयार्थ- **इम सुइकेवलि-वुत्तु**= ऐसा श्रुतकेवली ने कहा है कि, **तित्थहिं**= तीर्थों में, **देवलि**= देवालयों में, **देउ णवि**= देव नहीं हैं, **जिणु देउ**= जिनदेव तो, **देहा-देवलि**= देह-देवालय में विराजमान हैं, **एहउ**= इसे, **णिरुत्तु जाणि**= निश्चित समझो।

अर्थ - श्रुत केवली ने कहा है कि तीर्थों में, देवालयों में, देव नहीं है, जिनदेव तो देह देवालय में विराजमान हैं-इसे निश्चित समझो।

जिनदेव हैं देह-देवालय में

देहादेवलि देउ जिणु, जणुदेवलिहिँ णिएइ।
हासउ महु पडिहाइ इहु, सिद्धे भिक्ख भमेइ॥43॥

देह के देवालय में हैं जिन, करते देवालय में दर्श ।
हास्यास्पद लगता है ऐसा, जैसे भिक्षा मांगे सिद्ध ॥43॥

अन्वयार्थ- **जिणु देउ**= जिनदेव, **देहादेवलि**= देह-देवालय में विराजमान हैं, **जणु**= परन्तु जीव **देवलिहिँ**= (ईंट पत्थरों के) देवालयों में, **णिएइ**= उनके दर्शन करता है, **महु**= मुझे, **अहु**= यह, **हासउ पडिहाई**= हास्यास्पद, मालूम होता है, **सिद्धे**= जैसे सिद्ध हो जाने पर, **भिक्ख भमेइ**= भिक्षा के लिये भ्रमण करें।

अर्थ - जिनदेव देह देवालय में विराजमान हैं, परंतु जीव [ईंट-पत्थरों के] देवालयों में उनके दर्शन करता है- यह मुझे कितना हास्यास्पद मालूम होता है। ऐसी बात ऐसी ही है, जैसे कोई मनुष्य सिद्ध हो जाने पर भिक्षा के लिये भ्रमण करे।

मूर्ति या चित्र में जिनदेव नहीं

मूढा देवलि देउ णवि, णवि सिलि लिप्पइ चित्त।
देहा-देवलि देउ जिणु, सो बुज्झहि समचित्ति॥ 44॥

देव नहीं देवालय में हैं , लेप चित्र पत्थर में नाहिं।
देह देवालय में रहते हैं, यही सत्य समझो जग माहिं ॥44॥

अन्वयार्थ- **मूढा**= हे मूढ़, **देउ**= देव, **देवलि**= देवालय में, **णवि**= (विराजमान) नहीं हैं, (इसी तरह) **सिलि**= किसी पत्थर, **लिप्पई**= लेप अथवा, **चित्ति**= चित्र में भी, **णवि**= (देव विराजमान) नहीं हैं, **जिणु देउ**= जिनदेव तो, **देहा-देवलि**= देह-देवालय में (रहते) हैं, **सो**= इस को (तू) **समचित्ति बुज्झहि**= समचित्त से समझ।

अर्थ - हे मूढ! देव किसी देवालय में विराजमान नहीं हैं, इसी तरह किसी पत्थर, लेप अथवा चित्र में भी देव विराजमान नहीं। जिनदेव तो देह देवालय में रहते है- इस बात को तू समुचित समझ।

Aakriti

विरला ज्ञानी स्व शरीर में देव को जानता है

तित्थइ देउलि देउ जिणु, सव्वु वि कोई भणेइ।
देहा-देउलि जो मुणइ, सो बुहु को वि हवेइ॥ 45॥

लोग कहें जिन तीर्थ जिनालय , में रहते हैं श्री जिनदेव ।
देह देवालय में जिनेन्द्र हैं, पण्डित मानें यही सदैव ॥45॥

अन्वयार्थ- **सव्वु वि कोई**= सब कोई, **भणेइ**= कहते हैं कि, **जिणु देउ**= जिनदेव, **तित्थइ**= तीर्थ में और, **देउलि**= देवालय में विद्यमान हैं, परन्तु **जो**= जो जिन भगवान को, **देहा-देउलि**= देह-देवालय में, **मुणइ**= विराजमान समझता है- **सो बुहु**= ऐसा पंडित, **को वि**= कोई विरला ही, **हवेइ**= होता है।
अर्थ - सब कोई कहते हैं कि जिनदेव तीर्थ में और देवालय में विद्यमान हैं। परंतु जो जिनदेव को देह देवालय में विराजमान समझता है ऐसा पंडित कोई बिरला ही होता है।

अजर-अमर होने का उपाय

जइ जर-मरण करालियउ, तो जिय धम्म करेहि।
धम्म-रसायणु पियहि तुहुँ, जिम अजरामर होहि॥ 46॥

जरा मरण से है यदि भय तो , करो जीव तुम उत्तम धर्म ।
धर्म रसायन करो पान तुम, अजर अमर हो पाओ शर्म ॥46॥

अन्वयार्थ- **जिय**= हे जीव, **जइ**= यदि तू, **जर-मरण**= जरा-मरण से, **करालियउ**= भयभीत है, **तो**= तो, **धम्म करेहि**= धर्म कर, **धम्म-रसायणु**= धर्म रसायन का, **पियहि**= पान कर, **जिम तुहुँ**= जिससे तू, **अजरामर होहि**= अजर अमर हो सके।
अर्थ - हे जीव ! यदि तू जन्म मरण से भयभीत है तो धर्म कर, धर्म रसायन का पान कर, जिससे तू अजर अमर हो सके।

क्रिया काण्ड में धर्म नहीं

धम्मु ण पढियइँ होइ, धम्मु ण पोत्था-पिच्छियइँ।
धम्मु ण मढिय-पएसि, धम्मु ण मत्था-लुंचियइँ॥ 47॥

धर्म नहीं होता पढ़ने से, पुस्तक पिच्छी में ना धर्म।
केशलुंच या मठ में भी ना, निज आतम में रहा सुधर्म॥47॥

अन्वयार्थ- **पढियइँ**= पढ़ लेने से, **धम्मु ण होइ**= धर्म नहीं होता, **पोत्था-पिच्छियइँ**= पुस्तक और पिच्छी से भी, **धम्मु ण**= धर्म नहीं होता, **मढिय-पएसि**= किसी मठ में रहने से भी, **धम्मु ण**= धर्म नहीं होता, **मत्था-लुंचियइँ**= केशलोंच करने से भी, **धम्मु ण**= धर्म नहीं होता।
अर्थ - पढ़ लेने से धर्म नहीं होता, पुस्तक और पिच्छी से भी धर्म नहीं होता, किसी मठ में रहने से भी धर्म नहीं है, तथा केशलोंच करने से भी धर्म नहीं कहा जाता है।

धर्म क्या है?

राय-रोस वे परिहरिवि, जो अप्पाणि बसेइ।
सो धम्मु वि जिण-उत्तियउ, जो पंचम-गइ णेइ॥ 48॥

रागद्वेष दोनों को तजकर, निज आतम में करता वास ।
यही धर्म कहते जिनेन्द्र प्रभु, धर्म कराए मोक्ष निवास ॥48॥

अन्वयार्थ- **जो**= जो, **राय-रोस**= राग और द्वेष, **वे परिहरिवि**= दोनों को छोड़कर, **अप्पाणि**= निज आत्मा में, **वसेइ**= वास करता है, **सो वि**= उसे ही, **जिण**= जिनेन्द्र देव ने, **धम्मु उत्तियउ**= धर्म कहा है, **जो**= वह धर्म, **पंचम-गइ**= पंचमगति (मोक्ष) को, **णेइ**= प्राप्त कराता है।

अर्थ - जो राग और द्वेष दोनों को छोड़कर निज आत्मा में वास करता है, उसे ही जिनेन्द्रदेव ने धर्म कहा है। वह धर्म पंचमगति [मोक्ष] को प्राप्त कराता है।

संसार भ्रमण का कारण

आउ गलइ णवि मणु गलइ, णवि आसा हु गलेइ।
मोहु फुरइ णवि अप्प-हिउ, इम संसार भमेइ॥ 49॥

आयु गले मन आस ना गलती, मोह स्फुरण होय सदैव ।
आत्म स्फुरण होय नहीं तो ,भव में भ्रमण करे तू एव ॥49॥

अन्वयार्थ- **आउ गलइ**= आयु गल जाती है, **मणु णवि गलइ**= पर मन नहीं गलता और, **णवि आसा हु गलेइ**= न आशा ही गलती है, **मोहु फुरइ**= मोह स्फुरित होता है, **अपि अप्प-हिउ**= परन्तु आत्म हित का स्फुरण नहीं होता, **इम**= इस तरह जीव, **संसार भमेइ**= संसार में भ्रमण किया करता है।

अर्थ - आयु गल जाती है, पर मन नहीं गलता और न ही आशा ही गलती है। मोह स्फुरित होता है, परंतु आत्महित का स्फुरण नहीं होता है। इस तरह जीव संसार में भ्रमण किया करता है।

निर्वाण हेतु आत्म-रमण करो

जोहउ मणु विसयहँ रमइ, तिमु जइ अप्प मुणेइ।
जोइउ भणइ हो जोइ यहु, लहु णिव्वाणु लभेइ॥ 50॥

मन विषयों में रमण करे ज्यों, आत्म रमण में करे महान ।
हे योगी! ऐसा करने से, शीघ्र प्राप्त होवे निर्वाण ॥50॥

अन्वयार्थ- **जोहउ मणु**= जिस तरह मन, **विसयहँ रमइ**= विषयों में रमण करता है, **तिमु**= उस तरह, **जइ**= यदि वह, **अप्पमुणेइ**= आत्मा को जानने में रमण करे, **हो जोइयहु**= तो हे योगिजनो!, **जोइउ भणइ**= योगी कहते हैं कि जीव, **लहु**= शीघ्र ही, **णिव्वाणु लभेइ**= निर्वाण पा जाय।

अर्थ - जिस तरह मन विषयों में रमण करता है, उस तरह यदि वह आत्मा को जानने में रमण करे,

तो हे योगिजनों ! (योगी कहते हैं कि) जीव शीघ्र ही निर्वाण पा जाये।

शरीर नरक सदृश्य छिद्रों सहित है

जेहउ जज्जरु णरय-घरु, तेहउ बुज्झि सरीरु।
अप्पा भावहि णिम्मलउ, लहु पावहि भवतीरु ॥51॥

नरक वास जर्जरित रहा ज्यों, त्यों रहता हे जीव शरीर ।
अतः आप निर्मल भावों से, शीघ्र मिटाओ भव की पीर ॥51॥

अन्वयार्थ- हे जीव!, **जेहउ**= जैसे, **णरय-घरु**= नरकवास, **जज्जरु**= सैकड़ों छिद्रों से जर्जरित है, **तेहउ**= उसी तरह, **सरीरु**= शरीर को भी (मल मूत्रादि से), **बुज्झि**= जर्जरित समझ, अत एव **णिम्मलउ अप्पा**= निर्मल आत्मा की, **भावहि**= भावना कर, **लहु**= तो शीघ्र ही, **भवतीरु पावहि**= संसार से पार होगा।

अर्थ - हे जीव! जैसे नरकवास सैकड़ों छिद्रों से जर्जरित है, उसी तरह शरीर को भी [मल मूत्र आदि से] जर्जरित समझना चाहिए। अत एव निर्मल आत्मा की भावना कर, तो शीघ्र ही संसार से पार जायेगा।

सांसारिक धंधों में फंसा, निर्वाण नहीं पाता

धंधइ पडियउ सयल जगि, णवि अप्पा हु मुणंति।
तहिँ कारिण ए जीव फुडु, ण हु णिव्वाणु लहंति॥ 52॥

फँसे हुए अपने धंधे में, इस जग के संसारी जीव ।
निज आतम को ना पहचाने, अतः मोक्ष ना पाए सजीव ॥52॥

अन्वयार्थ- **सयल**= सब लोग, **जगि**= संसार में, **धंधइ**= अपने-अपने धंधे में, **पडियउ**= फँसे हुए हैं और, **अप्पा हु**= अपनी आत्मा को, **णवि मुणंति**= नहीं पहिचानते, **हु**= निश्चय से, **तहिँ कारणि**= इसी कारण, **ए जीव**= ये जीव, **णिव्वाणु ण लहंति**= निर्वाण को नहीं पाते, **फुडु**= यह स्पष्ट है।

अर्थ - सब लोग संसार में अपने अपने धंधे में फंसे हुये हैं, और अपनी आत्मा को नहीं पहिचानते। निश्चय से इसी कारण ये जीव निर्वाण को नहीं पाते, यह स्पष्ट है।

आत्म ज्ञान शून्य विद्वान जड़ ही है

सत्थ पढंतह ते वि जड़, अप्पा जे ण मुणंति।
तहिँ कारणि ए जीव फुडु, ण हु णिव्वाणु लहंति॥ 53॥

शास्त्रों को पढ़ लेते लेकिन, नहीं आत्मा का है ज्ञान ।
निश्चय से वे लोग रहे जड़, प्राप्त करें ना पद निर्वाण ॥53॥

अन्वयार्थ- **जे सत्थ**= जो शास्त्र को तो, **पढंतह**= पढ़ लेते हैं, **अप्पा**= परन्तु आत्मा को, **ण मुणंति**= नहीं जानते, **ते वि जड़**= वे लोग भी जड़ ही हैं तथा, **हु**= निश्चय से, **तहिं कारणि**= इसी कारण, **ए जीव**= ये जीव, **णिव्वाणु ण लहंति**= निर्वाण को नहीं पाते, **फुडु**= यह स्पष्ट है।

अर्थ – जो शास्त्रों को तो पढ़ लेते हैं, परंतु आत्मा को नहीं जानते, वे लोग भी जड़ ही हैं तथा निश्चय से इसी कारण ये जीव निर्वाण को नहीं पाते यह स्पष्ट है।

ज्ञानी, इन्द्रिय राग छोड़े

मणु-इंदिहि वि छोडियइ, बुहु पुच्छियह ण कोइ।
रायहँ पसरु णिवारियइ, सहज उपज्जइ सोइ॥ 54॥

मन इन्द्रिय से छुटकारा यदि, पण्डित पा जाएँ निज रूप।
नहीं जरूरत रही पूँछने, की पा जाए आत्म स्वरूप ।54॥

अन्वयार्थ- **बुहु**= यदि पण्डित, **मणु-इंदिहि वि**= मन और इन्द्रियों से, **छोडियइ**= छुटकारा पा जाय, तो उसे **कोई पुच्छियह**= किसी से कुछ पूँछने की, **ण**= जरूरत नहीं, **रायहँ पसरु**= यदि राग का प्रवाह, **णिवारियइ**= रुक जाय, **सोइ**= तो वह (आत्मभाव) **सहज**= सहज ही, **उपज्जइ**= उत्पन्न हो जाता है।

अर्थ – यदि पंडित, मन और इन्द्रियों से छुटकारा पा जाये, तो उसे किसी से कुछ पूछने की जरूरत नहीं। यदि राग का प्रवाह रुक जाये तो वह [आत्मभाव] सहज ही उत्पन्न हो जाता है।

पुद्गल जीव का सम्बन्ध

पुग्गलु अण्णु जि अण्णु जिउ, अण्णु वि सहु ववहारु।
चयहि वि पुग्गल गहहि जिउ, लहु पावहि भवपारु॥ 55॥

पुद्गल जीव मित्र हैं दोनों, अन्य भिन्न होवे व्यवहार ।
पुद्गल छोड़ जीव को ध्याओ , शीघ्र पार पाओ संसार ॥55॥

अन्वयार्थ- **पुग्गलु अण्णु**= पुद्गल भिन्न है, **जि अण्णु जिउ**= और जीव भिन्न है, **अण्णु वि सहु**= तथा अन्य सब, **ववहारु**= व्यवहार भिन्न है, **चयहि वि पुग्गलु**= अतएव पुद्गल को छोड़, **जिउ गहहि**= और जीव को ग्रहण कर, **लव भवपारु पावहि**= इससे तू शीघ्र ही संसार से पार होगा।

अर्थ – पुद्गल भिन्न है और जीव भिन्न है तथा अन्य सब व्यवहार भिन्न है। अतएव पुद्गल को छोड़ो और जीव को ग्रहण करो – इससे तू शीघ्र ही संसार से पार हो जायेगा।

आत्मानुभाव बिना मुक्ति नहीं

जे णवि मण्णहिँ जीव फुडु, जे णवि जीउ मुणंति।
ते जिण-णाहहं उत्तिया, णउ संसार मुचंति॥ 56॥

ना समझें स्पष्ट जीव जो, नहीं जीव की है पहचान ।
कभी नहीं संसार से छूटें, ऐसा कहते जिन भगवान ॥56॥

अन्वयार्थ- **जे**= जो, **जीव**= जीव को, **फुडु**= स्पष्ट रूप से, **णवि मण्णहिँ**= नहीं समझते हैं और, **जे जीउ**= जो जीव को, **णवि मुणंति**= नहीं पहिचानते हैं, **ते**= वे, **संसार**= संसार से कभी, **णउ**

मुचंति= छुटकारा नहीं पाते हैं, **जिण-णाहहं**= ऐसा जिनेन्द्र देव ने, **उत्तिया**= कहा है।
अर्थ - जो जीव को स्पष्ट रूप से न समझते हैं, और जो उसे न पहिचानते हैं, वे संसार से कभी छुटकारा नहीं पाते, ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है।

जीव को जानने के नौ उदाहरण

रयण दीउ दिणयर दहिउ, दुद्धु घीव पाहाणु।
सुण्णउ रूउ फलिहउ अगिणि, णव दिट्ठंता जाणु॥ 57॥
दही दूध घी सोना चाँदी, दीप रत्न स्फटिक पाषाण ।
सूर्य अग्नि दृष्टान्त रहे नौ, ऐसा कहते हैं भगवान ॥57॥

अन्वयार्थ- **रयण**= रत्न, **दीउ**= दीप, **दिणयर**= सूर्य, **दहिउ दुद्धु घीव**= दही, दूध, घी, **पाहाणु**= पाषाण, **सुण्णउ**= सोना, **रूउ**= चाँदी, **फलिहउ**= स्फटिकमणि और, **अगिणि**= अग्नि, **णव**= ये (जीव के) नौ, **दिट्ठंता जाणु**= दृष्टान्त जानने चाहिये।
अर्थ - रत्न, दीप, सूर्य, दही, दूध, घी, पाषाण, सोना, चाँदी, स्फटिक, और अग्नि ये [जीव के स्वरूप को जानने हेतु] नौ दृष्टांत जानने चाहिये।

देहादि पर द्रव्य हैं

देहादिउ जो परु मुणइ, जेहउ सुण्णु आयासु।
सो लहु पावइ (?) बंभु परु, केवलु करइ पयासु॥ 58॥
देह आदिक को अन्य समझता, जैसे होता शून्याकाश ।
परम ब्रह्म को पाए शीघ्र वह, पाए केवलज्ञान प्रकाश ॥58॥

अन्वयार्थ- **जो**= जो, **सुण्णु आयसु**= शून्य आकाश, **जेहउ**= की तरह, **देहादिउ**= देह आदि को, **परुमुणइ**= पर समझता है, **सो लहु**= वह शीघ्र ही, **परु बंभु**= परंब्रह्म को, **पावइ**= प्राप्त कर लेता है और वह, **केवलु पयासु**= केवलज्ञान का प्रकाश, **करइ**= करता है।
अर्थ - जो शून्य आकाश की तरह देह आदि को पर समझता है, वह शीघ्र ही परम ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है, और वह केवल ज्ञान का प्रकाश करता है।

आकाश और आत्मा में अन्तर

जेहउ सुद्ध अयासु जिय, तेहउ अप्पा वुत्तु।
आयासु वि जडु जाणि, जिय अप्पा चेयणुवंतु॥ 59॥
ज्यों आकाश शुद्ध है वैसे, शुद्ध आत्मा रही महान ।
अन्तर है आकाश रहा जड़, आतम देखे चेतनवान ॥59॥

अन्वयार्थ- **जिय**= हे जीव!, **जेहउ**= जैसे, **आयासु सुद्ध**= आकाश शुद्ध है, **तेहउ**= वैसे ही, **अप्पा वि वुत्तु जाणि**= आत्मा भी शुद्ध कही गई है, (दोनों में अन्तर केवल इतना ही है कि) **आयासु जडु**=

आकाश जड़ है और, **अप्पा जिय**= आत्मा, **चेयणुवंतु**= चैतन्यलक्षण से युक्त है।

अर्थ - हे जीव ! जैसे आकाश शुद्ध है वैसे ही आत्मा भी शुद्ध कही गयी है। दोनों में अंतर केवल इतना ही है कि आकाश जड़ है और आत्मा चैतन्य लक्षण से युक्त है।

अंतर्दृष्टि से मोक्षार्थी आत्मा अवलोकते हैं

णासग्गिँ अब्भिंतरहँ, जे जोवहिँ असरीरु।
बाहुडि जम्मि ण संभवहिँ, पिवहिँ ण जणणी-खीरु ॥ 60 ॥

हो नाशग्र दृष्टि अभ्यन्तर, आतम जो देखे अशरीर ।
लज्जा जनक जन्म ना धारे, मां का दूध ना दिए अधीर ॥60॥

अन्वयार्थ- **जे**= जो, **णासग्गिँ**= नासिका के अग्र भाग पर दृष्टि रखकर, **अब्भिंतरहँ**= अभ्यंतर में, **असरीरु**= अशरीर को (आत्मा को) **जोवहिं**= देखते हैं, **बाहुडि जम्मि**= वे इस लज्जाजनक जन्म को, **ण संभवहि**= फिर से धारण नहीं करते अर्थात् जन्म मरण से मुक्त हो जाते और वे, **जणणी-खीरु**= माता के दूध का, **ण पिवहिँ**= पान नहीं करते।

अर्थ - जो नासिका पर दृष्टि रखकर अभ्यंतर में अशरीर को [आत्मा को] देखते हैं, वे इस लज्जाजनक जन्म को फिर से धारण नहीं करते, और वे माता के दूध का पान नहीं करते। वह विशद संसार को छोड़ देते हैं।

अशरीर ही सुन्दर शरीर

असरीरु वि सुसरीरु मुणि, इहु सरीरु जडु जाणि।
मिच्छा-मोहु परिच्चयहि, मुत्ति णियं वि ण माणि ॥ 61 ॥

आतम को आतम से जाने, कौन सा फल ना पाए अतीव ।
और तो क्या केवल ज्ञानी हो, शास्वत सुख पाए हे जीव! ॥61॥

अन्वयार्थ- **असरीरु वि**= अशरीर (आत्मा) को ही, **सुसरीरु मुणि**= सुन्दर शरीर समझो और, **इहु सरीरु**= इस शरीर को, **जडु जाणि**= जड़ मानों, **मिच्छा-मोहु**= मिथ्या-मोह का, **परिच्चयहि**= त्याग करो और, **मुत्ति णियं वि**= अपने मूर्तीक पुद्गलमय शरीर को भी, **ण माणि**= अपना मत मानो।

अर्थ - अशरीर [आत्मा] को ही सुन्दर शरीर समझो और इस शरीर को जड़ मानो, मिथ्या मोह का त्याग करो और अपने शरीर को भी अपना मत मानो। यह सब्र तो संसार को बढ़ाने वाले हैं ऐसा आचार्य भगवन्! ने कहा है।

केवलि आत्मानुभव करते हैं

अप्पइँ अप्पु मुणंतयहँ, किं णेहा फलु होइ।
केवल-णाणु वि परिणवइ, सासय-सुक्खु लहेइ ॥62 ॥

जो पर भाव को तज के मुनिवर , आतम से आतम को जान ।
होते हैं संसार मुक्त वे, पाकर पावन केवल ज्ञान ॥62॥

अन्वयार्थ- **अप्पइँ अप्पु**= आत्मा को आत्मा, **मुणंतयहँ**= जानने में, **इहा**= यहाँ, **किं ण फलु होइ**= कौन सा फल नहीं मिलता? (और तो क्या इससे), **केवल-णाणु वि**= केवल ज्ञान भी, **परिणवइ**= हो जाता है और जीव, **सासय-सुक्ख**= शाश्वत सुख को, **लहेइ**= प्राप्त करता है।

अर्थ - आत्मा को आत्मा से जानने में यहाँ कौन सा फल नहीं मिलता ? और तो क्या इससे केवल ज्ञान भी हो जाता है, और जीव को शाश्वत सुख की प्राप्ति होती है।

आत्मा से अपनत्व, मुक्ति का कारण है

जे परभाव चएवि मुणि, अप्पा अप्प मुणंति।
केवल-णाण-सरूवलइ (लहि?), ते संसारु मुचंति॥ 63॥
वे पण्डित भगवान धन्य हैं, जो परभाव का करते त्याग।
लोकालोक प्रकाशक निर्मल, आतम को जानें बड़भाग ॥63॥

अन्वयार्थ- **जे मुणि**= जो मुनि, **परभाव चएवि**= परभाव का त्याग कर, **अप्पा**= अपनी आत्मा से, **अप्प मुणंति**= अपनी आत्मा को पहिचानते हैं, **ते**= वे, **केवल-णाण-सरूवलइ**= केवल ज्ञान प्राप्त कर, **संसारु**= संसार से, **मुचंति**= मुक्त हो जाते हैं।

अर्थ - जो मुनि परभाव का त्याग कर अपनी आत्मा से अपनी आत्मा को पहचानते हैं, वे केवल ज्ञान प्राप्त कर संसार से मुक्त हो जाते हैं।

परभावों को छोड़, आत्मध्यानी धन्य है

धण्णा ते भयवंत बुह, जे परभाव चयंति ।
लोयालोय-पयासयरु, अप्पा विमल मुणंति॥64॥
हो सागार अनगार कोई भी, निज आतम में करता वास ।
शीघ्र शुद्ध सुख पाए कहे जिन, करता सिद्ध शिला पर वास॥ 64॥

अन्वयार्थ- **ते**= उन, **भयवंत बुह**= भगवान पंडितों को, **धण्णा**= धन्य हैं, **जे**= जो, **परभाव**= परभाव का, **चयंति**= त्याग करते हैं और जो, **लोयालोय-पयासयरु**= लोकालोक-प्रकाशक, **विमल अप्पा**= निर्मल आत्मा को, **मुणंति**= जानते हैं।

अर्थ - उन भगवान पण्डितों को धन्य हैं जो परभाव का त्याग करते हैं और लोकालोक प्रकाशक निर्मल आत्मा को जानते हैं।

Akriti

आत्मवास से सिद्धि सुख

सागारु विज्णागारु कु वि, जो अप्पाणि वसेइ।
सो लहु पावइ सिद्धि-सुहु, जिणवरु एम भणेइ॥ 65॥

तत्त्वों के ज्ञाता हैं विरले , सुनें तत्त्व विरले ही जीव ।
तत्त्व ध्यान करते हैं विरले, तत्त्व धारते विरले जीव ॥65॥

अन्वयार्थ- **सागारु वि**= गृहस्थ हो या, **णागारु**= मुनि हो, **कु वि जो**= जो कोई भी, **अप्पाणि**= निज आत्मा में, **वसेइ**= वास करता है, **सो लहु**= वह शीघ्र ही, **सिद्धि-सुहु**= सिद्धि सुख को, **पावइ**= पाता है, **एम**= ऐसा, **जिणवरु भणेइ**= जिन भगवान ने कहा है।

अर्थ - गृहस्थ हो या मुनि हो, जो कोई भी निज आत्मा में वास करता है वह शीघ्र ही सिद्धिसुख को प्राप्त करता है, ऐसा जिन भगवान ने कहा।

तत्त्वों को समझने, सुनने, ध्याने वाले विरले हैं

विरला जाणहिँ तत्तु बुह, विरला णिसुणहि तत्तु।
विरला झायहिँ तत्तु जिय, विरला धारहिँ तत्तु॥ 66॥

तत्त्वों के ज्ञाता हैं विरले , सुनें तत्त्व विरले ही जीव ।
तत्त्व ध्यान करते हैं विरले, तत्त्व धारते विरले जीव ॥66॥

अन्वयार्थ- **विरला बुह**= विरला पण्डित लोग ही, **तत्तु जाणहिँ**= तत्त्वों को समझते हैं, **विरला**= बिरले ही, **तत्तु सुणहिँ**= तत्त्वों को श्रवण करते हैं, **विरला**= बिरले ही, **तत्तु झायहिँ**= तत्त्वों का ध्यान करते हैं और, **विरला जिय**= बिरले जीव ही, **तत्तु धारहिँ**= तत्त्वों को धारण करते हैं।

अर्थ - विरले (पंडित) लोग ही तत्त्वों को समझते हैं, विरले ही तत्त्वों को श्रवण करते हैं, विरले ही तत्त्वों का ध्यान करते हैं, और विरले जीव ही तत्त्वों को धारण करते हैं।

संसार नाश का उपाय

इहु परियण ण हु महुतणउ, इहु सुहु-दुक्खहँ हेउ।
इम चिंततहँ किं करइ, लहु संसारहँ छेउ॥ 67॥

यह परिवार नहीं मेरा है, सुख दुख के यह हेतु विशेष ।
इस प्रकार चिन्तन करने से, नशे शीघ्र संसार अशेष ॥67॥

अन्वयार्थ- **इहु परियण**= यह कुटुम्ब परिवार, **हु**= निश्चय से, **ण महुतणउ**= मेरा नहीं है, **इहु**= यह मात्र, **सुह-दुक्खहँ**= सुख-दुख का ही, **हेउ**= हेतु है- **इम चिंतंतहँ किं**= इस प्रकार विचार करने से, **लहु**= शीघ्र ही, **संसारहँ**= संसार का, **छेउ करइ**= नाश किया जा सकता है।

अर्थ - यह कुटुम्ब परिवार निश्चय से मेरा नहीं है, यह मात्र सुख-दुख का ही कारण है-इस प्रकार विचार करने से शीघ्र ही संसार का नाश किया जा सकता है।

अशरण भावना

इंद्र-फणिंद-णरिंदय वि, जीवहँ सरणु ण होंति।
असरणु जाणिवि मुणि-धवल, अप्पा अप्प मुणंति॥ 68॥

इन्द्र नरेन्द्र फणेन्द्र जीव को, शरण भूत हैं नहीं प्रधान ।
शरण रहित निज को जाने जो, वे मुनि करते हैं निज ध्यान ॥68॥

अन्वयार्थ- इंद-फणिंद-णरिंदय वि= इन्द्र, फणीन्द्र और नरेन्द्र भी, **जीवहँ**= जीवों को, **सरणु**= शरणभूत, **ण होंति**= नहीं हो सकते, **असरणु**= इस तरह अपने को शरण रहित, **जाणिवि**= जानकर, **धवल मुणि**= उत्तम मुनि, **अप्पा**= निज आत्मा से, **अप्प**= निज आत्मा को, **मुणंति**= जानते हैं।

अर्थ - इन्द्र, फणीन्द्र और नरेन्द्र भी जीवों को शरणभूत नहीं हो सकते हैं। इस तरह अपने को शरणरहित जानकर उत्तम मुनि निज आत्मा से निज आत्मा को जानते हैं।

एकत्व भावना

इक्क उपज्जइ मरइ कु वि, दुहु सुहु भुंजइ इक्कु।
णरयहँ जाइ वि इक्क जिउ, लह णिव्वाणहँ इक्कु॥ 69॥

जन्मे मरे अकेला चेतन , करता सुख दुख का उपभोग ।
नरक गति में जाए अकेला, एक मोक्ष सुख पावे भोग॥69॥

अन्वयार्थ- जिउ= जीव, **इक्क उपज्जइ**= अकेला ही पैदा होता है, **कु वि मरइ**= अकेला ही मरता है, **इक्कु**= अकेला ही, **दुहु सुहु भुंजइ**= सुख दुःख का उपभोग करता है, **णरयहँ वि**= नरक भी, **इक्क जाइ**= अकेला ही जाता है और, **णिव्वाणहँ**= निर्वाण को भी, **इक्कु लह** = अकेला ही प्राप्त करता है। अर्थात् न कोई साथ आता है और न ही कोई साथ जाता है।

अर्थ - जीव अकेला ही पैदा होता है और अकेला ही मरता है और अकेला ही सुख-दुख का उपभोग करता है। वह नरक में भी अकेला ही जाता है और निर्वाण को भी अकेला ही प्राप्त करता है।

आत्मा का ध्यान आवश्यक

एक्कुलउ जइ जाइसिहि, तो परभाव चएहि।
अप्पा झायहि णाणमउ, लहु सिव-सुक्ख लहेहि॥ 70॥

पर भावों को त्याग अकेला, जिन आतम का करता ध्यान ।
जिससे शीघ्र ज्ञान मय होकर, करे मोक्ष सुख कर रसपान ॥70॥

अन्वयार्थ- जइ= यदि तू, **एक्कुलउ जाइसिहि**= अकेला ही है, **तो परभाव**= तो परभाव का, **चएहि**= त्याग कर और, **अप्पा झायहि**= आत्मा का ध्यान कर, जिससे तू, **लहु**= शीघ्र ही, **णाणमउ सिव-सुक्ख**= ज्ञानमय मोक्ष सुख को, **लहेहि**= प्राप्त कर सके।

अर्थ - हे जीव !यदि तू अकेला ही है तो परभाव का त्याग कर और आत्मा का ध्यान कर, जिससे

तू शीघ्र ही ज्ञानमय मोक्षसुख को प्राप्त कर सके।

पुण्य भी पाप समझो

जो पाउ वि सो पाउ मुणि, सव्वु इ को वि मुणेइ।
जो पुण्णु वि पाउ वि भणइ,सो बुह (?) को वि हवेइ ॥ 71 ॥

रहा पाप जो पाप जानते, ऐसे जग में हैं सब जीव ।
किन्तु पुण्य को पाप जानते, विरले पंडित रहे सजीव ॥ 70 ॥

अन्वयार्थ- **जो पाउ वि**= जो पाप है, **सो**= उसको, **पाउ मुणि**= पाप जानता है, **इ को वि सव्वु**= यह तो सब कोई, **मुणेइ**= जानता है, **जो**= परन्तु जो, **पुण्ण वि पाउ वि**= पुण्य को भी पाप, **भणइ**= कहता है, **सो बुह**= ऐसा पंडित, **को वि हवेइ**= कोई विरला ही होता है।

अर्थ - जो पाप है उसको जो पाप जानता है, सब कोई पाप को पाप जानता है परन्तु यह तो सब कोई जानता है। परंतु जो पुण्य को भी पाप कहता है, ऐसा कोई विरला पंडित ही होता है।

ज्ञानी कौन

जह लोहम्मिय णियड बुह, तह सुण्णम्मिय जाणि।
जे सुहु असुह परिच्चयहिँ, ते वि हवंति हु णाणि ॥ 72 ॥

लोहे की सांकल सम जाने, सोने की भी उसी समान ।
भाव शुभाशुभ तजते दोनों, निश्चय से ज्ञानी विद्वान ॥71 ॥

अन्वयार्थ- **बुह**= हे पण्डित!, **जह**= जैसे, **लोहम्मिय**= लोहे की सांकल को, **णियड**= तू सांकल समझता है, **तह**= उसी तरह तू, **सुण्णम्मिय**= सोने की सांकल को भी, **जाणि**= सांकल ही जानों, **जे**= जो, **सुह असुह**= शुभ अशुभ दोनों भावों का, **परिच्चयहिं**= परित्याग कर देते हैं, **हु**= निश्चय से, **ते वि**= वे ही, **णाणि**= ज्ञानी, **हवंति**= होते हैं।

अर्थ - हे पंडित, हे ज्ञानी! जैसे लोहे की सांकल को तू सांकल समझता है उसी तरह तू सोने की सांकल को भी सांकल ही समझ। जो शुभ अशुभ दोनों भावों का परित्याग कर देते हैं, निश्चय से वे ही ज्ञानी कहलाते हैं।

निर्ग्रन्थ ही मोक्षमार्ग

जइया मणु णिग्गंथु जिय, तइया तुहुँ णिग्गंथु।
जइया तुहुँ णिग्गंथु जिय, तो लब्भइ सिवपंथु ॥ 173 ॥

मन तेरा निर्ग्रंथ हुआ तो, जीव हुआ तू भी निर्ग्रंथ ।
तू निर्ग्रन्थ हुआ तो उससे, मोक्ष मार्ग मिल जाए संत ॥72 ॥

अन्वयार्थ- **जिय**= हे जीव!, **जइया मणु**= जब तेरा मन, **णिग्गंथु**= निर्ग्रंथ हो गया, **तइया तुहुँ**= तो तू भी, **णिग्गंथु**= निर्ग्रंथ हो गया, **जइया तुहुँ जिय**= और हे जीव! जब तू, **णिग्गंथु**= निर्ग्रंथ हो गया,

तो सिवपंथु-लब्भइ= तो मोक्षमार्ग मिल जाता है।

अर्थ - हे जीव ! जब तेरा मन निर्ग्रंथ हो गया, तो तू भी निर्ग्रंथ हो गया, और जब तू निर्ग्रन्थ हो गया, तो अवश्य ही मोक्षमार्ग मिल जाता है।

त्रिलोक प्रधान देव, देह में है

जं बडमज्झहँ बीउ फुडु, बीयहं बडु वि हु जाणु।
तं देहहँ देउ वि मुणहि, जो तइलोय-पहाणु॥ 74॥

ज्यों वटवृक्ष में बीज दिखे त्यों, बीज में है वट वृक्ष महान।
उसी तरह से देव देह में, समझो लोक में श्रेष्ठ महान ॥73॥

अन्वयार्थ- **जं**= जैसे, **वइमज्झहँ**= वड़ के वृक्ष में, **बीउ**= बीज, **फुडु**= स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है, वैसे ही, **बीयहं वि हु**= बीज में भी, **वडु जाणु**= वड़ वृक्ष रहता है, **तं देहहँ वि**= इसी तरह देह में भी, **देउ मुणहि**= उस देव को विराजमान समझो, **जो तइलोय**= जो तीनों लोकों में, **पहाणु**= मुख्य है।

अर्थ - जैसे बड़ के वृक्ष में बीज स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है, वैसे ही बीज में भी बड़ वृक्ष रहता है। इसी तरह देह में भी तीनों लोकों में मुख्य है उस देव को विराजमान समझना चाहिए।

मोक्ष का कारण- तंत्र मंत्र नहीं

जो जिण सो हउँ सो जि हउँ, एहउ भाउ णिभंतु।
मोक्खहँ कारण जोइया, अण्णु ण तंतु ण मंतु॥ 75॥

जो जिनेन्द्र हैं वह मैं भी हूँ , भ्रांन्ति रहित हो करना भाव ।
रहा मोक्ष का कारण ये ही, तन्त्र मंत्र ना और उपाव ॥74॥

अन्वयार्थ- **जो जिण**= जो जिनदेव हैं, **सो हउँ**= वह मैं हूँ, **सो जि हउँ**= वही मैं हूँ, **एहउ**= इसकी, **णिभंतु**= भ्रान्तिरहित होकर, **भाउ**= भावना कर, **जोइया**= हे योगिन्!, **मोक्खहँ कारण**= मोक्ष का कारण, **अण्णु**= कोई अन्य, **ण तंतु ण मंतु**= मंत्र तंत्र नहीं है।

अर्थ - जो जिनदेव हैं वह मैं हूँ, (वही मैं हूँ)-इसकी भ्रांतिरहित होकर भावना कर। हे योगिन् ! मोक्ष का कारण कोई अन्य मंत्र तंत्र नहीं है।

आत्मा के लक्षण

वे ते चउ पंच वि णवह, सत्तहँ छह पंचाहँ।
चउगुण-सहियउ सो मुणह, एयइँ लक्खण जाहँ॥ 76॥

दो तीन चार पाँच नौ भाई, सात और छह पाँच हैं चार ।
गुण ये परम आत्म के लक्षण, समझो हे भाई! शुभकार ॥75॥

अन्वयार्थ- **बे ते चउ पंचवि**= दो, तीन, चार, पाँच, **णवह सत्तहँ**= नौ, सात, **छह पंचाहँ**= छह, पाँच और, **चउगुण**= चार गुण, **सहियउ**= सहित, **एयइँ**= ये, **लक्खण जाहँ**= (आत्मा के) लक्षण, **सो**

मुणह= समझने चाहिये।

अर्थ - दो, तीन, चार, पांच, नौ, सात, छह, पांच और चार ये गुण [परमात्मा के] लक्षण समझना चाहिये। जो आगे कहे जा रहे हैं।

दो का महत्व

वे छंडिवि वे-गुण-सहिउ, जो अप्पाणि वसेइ।
जिणु सामिउ एमइँ भणइ, लहु णिव्वाणु लहेइ॥ 77॥

राग-द्वेष दो त्याग करें दो ,गुण पायें सद्दर्शन ज्ञान ।
निज आतम में करे वास वह, शीघ्र प्राप्त करता निर्वाण ॥76॥

अन्वयार्थ- **जो**= जो, **बे**= दो का (राग द्वेष) **छंडिवि**= परित्याग कर, **बे-गुण-सहिउ**= दो गुणों से (ज्ञान दर्शन) युक्त होकर, **अप्पाणि**= आत्मा में, **वसेइ**= निवास करता है, **लहु**= वह शीघ्र ही, **णिव्वाणु लहेह**= निर्वाण पाता है, **एमइँ**= ऐसा, **जिणु सामिउ**= जिनेन्द्र भगवान् ने, **भणइ**= कहा है।

अर्थ - जो दो [राग-द्वेष] का परित्याग करता है और दो गुणों से [सम्यग्ज्ञान, सम्यक्दर्शन] युक्त होता है तथा आत्मा में निवास करता है, वह शीघ्र ही निर्वाण पाता है, ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है।

तीन का महत्व

तिहिँ रहियउ तिहिँ गुण-सहिउ, जो अप्पाणि वसेइ।
सो सासय-सुह-भायणु वि, जिणवरु एम भणेइ॥ 78॥

राग द्वेष अरु मोह तीन तज, दर्श ज्ञान चारित संयुक्त ।
वास करे आतम में शास्वत, सुख पाए हो भव से मुक्त ॥77॥

अन्वयार्थ- **जो**= जो, **तिहिँ रहियउ**= तीन से (राग, द्वेष, मोह) रहित होकर,**तिहिँ गुण**= तीन गुणों से (सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र) **सहिउ**= युक्त होता हुआ, **अप्पाणि बसेइ**= आत्मा में निवास करता है, **सो**= वह, **सासय-सुह**= शाश्वत सुख का,**भायणु वि**= पात्र होता है, **एम**= ऐसा, **जिणवरु भणेइ**= जिनदेव ने कहा है।

अर्थ - जो तीन [राग, द्वेष, मोह] से रहित होकर, तीन गुणों [सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र] से युक्त होता हुआ आत्मा में निवास करता है, वह शाश्वत सुख का पात्र होता है, ऐसा जिनदेव ने कहा है।

चार का महत्व

चउ-कसाय-सण्णा-रहिउ, चउ-गुण-सहियउ बुत्तु।
सो अप्पा मुणिजीव तुहुँ, जिम परु होहि पवित्तु॥ 79॥

संज्ञा चार कषाए रहित गुण, दर्श अनन्त ज्ञान सुख वीर्य ।
आतम को समझो गुण संयुत, परम पवित्र पाओ पद धीर ॥78॥

अन्वयार्थ- **जीव**= हे जीव! **चउ-कसाय**= जो चार कषायों और, **सण्णा**= चार संज्ञा से, **रहिउ**=

रहित होकर, **चउ-गुण**= चार गुणों से (अनन्त दर्शन, ज्ञान, सुख और वीर्य) **सहियउ वुत्तु**= सहित होता है, **सो अप्पा मुणि**= उसे तू आत्मा समझ, **जिम तुहुँ**= जिससे तू, **परु पवित्तु होहि**= परम पवित्र हो सके। और शीघ्र ही निर्वाण को प्राप्त कर सके।

अर्थ - हे जीव ! जो चार कषायों और चार संज्ञा से रहित होकर चार गुणों से [अनंत दर्शन, ज्ञान, सुख, वीर्य] सहित होता है, उसे तू आत्मा समझ, जिससे तू परम पवित्र हो सके।.

दस का महत्व

बे-पंचहँ रहियउ मुणहि, बे-पंचहँ संजुत्तु।
बे-पंचहँ जो गुणसहिउ, सो अप्पा णिरु वुत्तु॥ 80॥

दश से रहित और दश संयुत, होते हैं जो दश गुणवान ।
वे निज आतम के स्वरूप को, निश्चय से पावें विद्वान ॥79॥

अन्वयार्थ- **जो**= जो, **बे-पंचहँ रहियउ**= दो पाँच (दस) से रहित, **बे-पंचहँ संजुत्तु**= दो पाँच (दस) से सहित और, **बे-पंचहँ गुणसहिउ**= दो पाँच (दस) गुणों से सहित हैं, **सो**= उसे, **णिरु**= निश्यच से, **अप्पा**= आत्मा, **वुत्तु**= कहा है- **मुणहि**= ऐसा जानों।

अर्थ - जो दस से रहित, दस से सहित और दस गुणों से सहित है, उसे निश्चय से आत्मा कहा है।

आत्मा के लक्षण

अप्पा दंसण णाणु मुणि, अप्पा चरणु वियाणि।
अप्पा संजमु सील तउ, अप्पा पच्चक्खाणि॥ 81॥

दर्श ज्ञान आतम को समझो, आतम ही सम्यक् चरित्र ।
संयम शील सुतप आतम है, प्रत्याख्यान है आतम मित्र! ॥80॥

अन्वयार्थ- **अप्पा दंसण**= आत्मा को ही दर्शन, **णाणु मुणि**= और ज्ञान समझो, **अप्पा चरणु**= आत्मा ही चारित्र है, **संजमु**= और संयम, **सील**= शील, **तउ**= तप भी, **अप्पा वियाणि**= आत्मा को मानों एवं **अप्पा पच्चक्खाणि**= प्रत्याख्यान भी आत्मा को ही मानो।

अर्थ - आत्मा को ही दर्शन और ज्ञान समझो, आत्मा ही चारित्र है, और संयम, शील, तप और प्रत्याख्यान भी आत्मा को ही मानो।

सन्यास क्या है?

जो परियाणइ अप्प परु, सो परु चयइ णिभंतु।
सो सण्णासु मुणेहि तुहुँ, केवल-णाणिं उत्तु॥ 82॥

निज पर को जो जाने आतम , भ्रान्ति रहित करता परित्याग ।
है सन्यास जीव हे! सम्यक , केवल ज्ञानी कहे विराग ॥81॥

अन्वयार्थ- **जो**= जो, **अप्प परु**= निज को और पर को, **परियाणइ**= जान लेता है, **सो**= वह, **णिभंतु**= भ्रान्ति रहित होकर, **परु चयइ**= पर का त्याग कर देता है, हे जीव! **तुहुँ**= तू, **सो**= उसे ही, **सण्णासु मुणेहि**= सन्यास समझ, **केवल-णाणिं**= ऐसा केवलज्ञानी ने, **बुत्तु**= कहा है।

अर्थ - जो निज को और पर को जान लेता है वह भ्रांति रहित होकर पर का त्याग कर देता है। हे जीव ! तू उसे ही सन्यास समझ- ऐसा केवलज्ञानी ने कहा है।

रत्नत्रय का महत्व

रयणत्तय-संजुत्त जिउ, उत्तिमु तित्थु पवित्तु।
मोक्खहँ कारण जोइया, अण्णु ण तंतु ण मंतु॥ 83॥

हे योगी! रत्नत्रय धारी , जीव तीर्थ उत्तम पावन ।
मोक्ष का कारण अन्य कोई ना, मंत्र तन्त्र है मन भावन ॥82॥

अन्वयार्थ- **जोइया**= हे योगिन्! **रयणत्तय-संजुत्तजिउ**= रत्नत्रययुक्त जीव ही, **उत्तिमु पवित्तु**= उत्तम पवित्र, **तित्थु**= तीर्थ है और, **मोक्खहँ कारइ**= वही मोक्ष का कारण है, **अण्णु**= अन्य, **ण तंतु ण मंतु**= तंत्र मंत्र (मोक्ष का कारण) नहीं।

अर्थ - हे योगिन् ! रत्नत्रय युक्त जीव ही उत्तम पवित्र तीर्थ है और मोक्ष का कारण है। अन्य कुछ भी (मंत्र तंत्र) मोक्ष का कारण नहीं।

आत्मा ही-दर्शन, ज्ञान, चारित्र

दंसणु जं पिच्छियइ बुह, अप्पा विमल महंतु।
पुणु पुणु अप्पा भावियए, सो चारित्त पवित्तु॥ 84॥

जिससे देखा जाए दर्शन, निर्मल आतम है वह ज्ञान ।
पुनः पुनः हो आत्म भावना, है पवित्र चारित्र महान ॥83॥

अन्वयार्थ- **जं पिच्छियइ**= जिसके द्वारा देखा जाता है, **दंसणु**= वह दर्शन है, **विमल महंतु अप्पा**= जो निर्मल महान आत्मा है, **बुह**= वह ज्ञान है, तथा **अप्पा**= आत्मा की, **पुणु पुणु**= जो पुनः पुनः, **भावियए**= भावना की जाती है, **सो**= वह, **पवित्तु चारित्त**= पवित्र चारित्र है।

अर्थ - जिसके द्वारा देखा जाता है वह दर्शन है, जो निर्मल महान आत्मा है वह ज्ञान है तथा आत्मा की जो पुनः पुनः भावना की जाती है, वह पवित्र चारित्र है। अर्थात् आत्मा ही दर्शन, ज्ञान व चारित्र है।

आत्मा में समस्त गुण हैं

जहिं अप्पा तहिँ सयल-गुण, केवलि एम भणंति।
तिहिँ कारणएँ जोइ फुडु, अप्पा विमलु मुणंति॥ 85॥

जहाँ आत्मा वहीं सर्व गुण , कथन केवली का यह जान ।

Aakriti

इसीलिए योगी निश्चय से, निर्मल आतम को पहिचान ॥84॥

अन्वयार्थ- **जहिँ अप्पा**= जहाँ आत्मा है, **तहिँ सयल-गुण**= वहाँ समस्त गुण हैं, **एम**= ऐसा, **केवलि भणंति**= केवलियों ने कहा है, **फुडु**= निश्चय से, **तिहिँ कारणएँ जोइ**= इसलिये योगी लोग, **विमल अप्पा**= निर्मल आत्मा को, **मुणंति**= पहिचानते हैं।

अर्थ - जहां आत्मा है वहाँ समस्त गुण हैं - ऐसा केवलियों ने कहा है। इसलिये योगी योग निश्चय से निर्मल आत्मा को पहचानते हैं।

मोक्ष सिद्धि का उपाय

एक्कलउ इंदिय-रहियउ, मण-वय-काय-ति-सुद्धि।
अप्पा अप्पु मुणेहि तुहुँ, लहु पावहि सिव-सिद्धि॥ 86॥

एकाकी इन्द्रिय विरहित तू, मन वच तन की शुद्धी वान ।
हे आत्मन्! तू जान शीघ्र ही, पाएगा पावन निर्वाण ॥85॥

अन्वयार्थ- **अप्पा**= हे आत्मन्! **एक्कलउ**= तू एकाकी, **इंदिय-रहियउ**= इन्द्रिय रहित और, **मण-वय-काय**= मन वचन काय की, **ति-सुद्धि**= शुद्धि से, **अप्पु मुणेहि**= आत्मा को जान, **तुहुँ**= उससे तू, **लहु**= शीध्र ही, **सिव-सिद्धि**= मोक्ष सिद्धि को, **पावहि**= प्राप्त होगा।

अर्थ - हे आत्मन् ! तू एकाकी, इन्द्रिय रहित और मन वचन काय की शुद्धि से आत्मा को जान ले, उससे तू शीघ्र ही मोक्ष सिद्धि को प्राप्त करेगा।

सहज-स्वरूप ही उपादेय

जइ बद्धउ मुक्कउ मुणहि, तो बंधियहि णिभंतु।
सहज-सरूबइ जइ रमहि, तो पावहि सिव संतु।। 87।।

वद्ध को मुक्त कोई यदि समझे, तो निश्चय से ही हो बंध ।
सहज स्वरूप में रमण करे, तो कर्मों से होय अबन्ध॥86॥

अन्वयार्थ- **जइ**= यदि तू, **बद्धउ**= बद्ध को, **मुक्कउ मुणहि**= मुक्त समझेगा, **तो**= तो, **णिभंतु**= निश्चय से, **बंधियहि**= तू बँधेगा तथा, **जइ**= यदि तू, **सहज-सरूवइ**= सहज-स्वरूप में, **रमहि**= रमण करेगा, **तो**= तो, **सिव संतु**= शान्त निर्वाण, **पावहि**= को पावेगा।

अर्थ - यदि तू बद्ध को मुक्त समझेगा तो निश्चय से तू बंधेगा तथा यदि तू सहज स्वरूप में रमण करेगा तो शांत निर्वाण को पायेगा।

सम्यग्दृष्टि को कुगति नहीं

सम्माइट्ठी-जीवडहँ, दुग्गइ-गमणु ण होइ।
जइ जाइ वि तो दोसु णवि, पुव्व-क्किउ खवणेइ॥ 88॥

नहीं कुगति में जाए सुदृष्टी , जाता है यदि कोई जीव ।
नहीं दोष सम्यक् का है यह, पूर्व कर्म क्षय करे अतीव ॥87॥

अन्वयार्थ- सम्माइट्ठी जीवडहँ= सम्यग्दृष्टि जीव, **दुग्गइ**= कुगतियों में, **ण गमणु होइ**= नहीं जाता है, **जइ जाइ वि**= यदि कहाचित् वह जाता भी है, **तो**= तो, **दोसु णवि**= इसमें सम्यक्त्व का दोष नहीं, **पुव्व-क्किउ**= इससे वह पूर्वकृत कर्म का ही, **खवणेइ**= क्षय करता है।

अर्थ - सम्यग्दृष्टि जीव कुगतियों में नहीं जाता है। यदि कदाचित् वह जाता भी है तो इसमें सम्यक्त्व का दोष नहीं होगा तो भी वह पूर्वकृत कर्म का ही क्षय करता है।

सम्यग्दृष्टी कौन?

अप्प-सरुवहँ-(सरुवइ?)जो रमइ, छंडिवि सहु ववहारु।
सो सम्माइट्ठी हवइ, लहु पावइ भवपारु॥ 89॥
सब व्यवहार छोड़ करके जो ,निज स्वभाव में करे रमण ।
वह सद्दृष्टी जीव कहाए, शिव पथ में वह करे गमन ॥88॥

अन्वयार्थ- जो= जो, **सहु ववहारु**= सर्व व्यवहार को, **छंडिवि**= छोड़कर, **अप्प-सरुवहँ**= आत्मस्वरूप में, **रमइ**= रमण करता है, **सो सम्माइट्ठी हवइ**= वह सम्यग्दृष्टि जीव है, और वह, **लहु**= शीघ्र ही, **भवपारु पावइ**= संसार से पार हो जाता है।

अर्थ - जो सर्व व्यवहार को छोड़कर आत्मस्वरूप में रमण करता है, वह सम्यग्दृष्टि जीव है, और वह शीघ्र ही संसार से पार हो जाता है।

सम्यक्त्व का महात्म्य

जो सम्मत्त-पहाण बुहु, सो तइलोय-पहाणु ।
केवल-णाण वि लहु लहइ, सासय-सुक्ख-णिहाणु॥ 90॥
है सम्यक्त्व प्रधान जीव जो, पण्डित वही त्रिलोक प्रधान ।
वही जीव सुख का निधान है, वही पाए निज केवल ज्ञान ॥89॥।

अन्वयार्थ- जो= जो, **सम्मत्त**= सम्यक्त्व का, **पहाण**= प्राधान्य है, **बुहु**= वही पण्डित है और **सो**= वही, **तइलोय**= त्रिलोक में, **पहाणु**=प्रधान है (वह जीव) **सासय-सुक्ख-णिहाणु**= शाश्वत सुख के निधान, **केवल-णाण वि**= केवलज्ञान को भी, **लहु**= शीघ्र ही, **लहइ**= प्राप्त कर लेता है।

अर्थ - जिसके सम्यक्त्व का प्राधान्य है वही पंडित है और त्रिलोक में प्रधान है। वह जीव शाश्वत् सुख के निधान केवलज्ञान को भी प्राप्त कर लेता है।

कर्मों से अबद्ध कब?

अजरु अमरु गुण-गण-णिलउ, जहिँ अप्पा थिरु ठाइ।
सो कम्मेहिँ ण बंधियउ, संचिय-पुव्व विलाइ॥ 91॥

अजर अमर गुणभूत आत्मा, स्थिर होवे जहाँ प्रधान ।
कर्म बद्ध न होय वहाँ पर , कर्म नाश जो करे प्रधान ॥91॥

अन्वयार्थ- **जहिँ**= जहाँ, **अजरु अमरु**= अजर अमर तथा, **गुण-गण-णिलउ**= गुणों का आगारभूत, **अप्पा**= आत्मा, **थिरु ठाइ**= स्थिर हो जाता है, **सो**= वहाँ जीव, **कम्मेहिँ ण बंधियउ**= कर्मों से बद्ध नहीं होता और वहाँ, **संचिय-पुव्व**= पूर्व में संचित किये हुए कर्मों का ही, **विलाइ**= नाश होता है।

अर्थ - जहाँ अजर अमर तथा गुणों की आगारभूत आत्मा स्थिर हो जाती है, वहाँ जीव कर्मों से बद्ध नहीं होता, वहाँ पूर्व में संचित किये हुये कर्मों का ही नाश होता है।

जल से भिन्न कमलवत्

जह सलिलेण ण लिप्पियइ, कमलणि-पत्त कया वि।
तह कम्मेहिं ण लिप्पियइ, जइ रइ अप्प-सहावि॥ 92॥

श्रेष्ठ कमलिनी का पत्ता ज्यों, जल से होता नहीं है लिप्त ।
उसी तरह आतम स्वभाव में ,रत हो कर्म से रहे अलिप्त ॥92॥

अन्वयार्थ- **जह**= जिस तरह, **कमलणि**= कमलिनी का पत्र, **कया वि**= कभी भी, **सलिलेण**= जल से, **ण लिप्पियइ**= लिप्त नहीं होता, **तह**= उसी तरह, **जइ**= यदि, **अप्प-सहावि**= आत्म-स्वभाव में, **रइ**= रति हो, तो जीव, **कम्मेहिं**= कर्मों से, **ण लिप्पियइ**= लिप्त नहीं होता।

अर्थ - जिस तरह कमलिनी का पत्र कभी भी जल से लिप्त नहीं होता, उसी तरह यदि जीव आत्म स्वभाव में रति हो, तो कर्मों से लिप्त नहीं होता।

आत्मज्ञानी कर्म क्षय करता है

जो सम-सुक्ख-णिलीणु बुहु, पुण पुण अप्पु मुणेइ।।
कम्मक्खउ करि सो वि फुडु, लहु णिव्वाणु लहेइ॥ 93॥

शम अरु सुख में लीन हुआ जो, पण्डित जाने बारम्बार ।
वह निश्चय से कर्मों का क्षय, करके पावे मुक्ती द्वार ॥93॥

अन्वयार्थ- **जो**= जो, **सम-सुक्ख-णिलीणु**= समता सुख में लीन हुआ, **बुहु**= वह पण्डित, **पुण पुण**= बार-बार, **अप्पु मुणेइ**= आत्मा को जानता है, **सो वि फुडु**= वह निश्चय ही, **कम्मक्खउ करि**= कर्मों का क्षय कर, **लहु**= शीघ्र ही, **णिव्वाणु लहेइ**= निर्वाण को पाता है।

अर्थ - जो शम और सुख में लीन हुआ पंडित बार बार आत्मा को जानता है, वह निश्चय ही कर्मों का क्षयकर शीघ्र ही निर्वाण प्राप्त करता है।

पवित्र, गुणी पुरुषाकार आत्मा

पुरिसायार-पमाणु जिय, अप्पा एहु पवित्तु।
जोइज्जइ गुण-गण-णिलउ, णिम्मल-तेय-फुरंतु॥ 94॥

पुरुषाकार आत्मा है यह, जीव ! पवित्र गुणों का कोष ।
निर्मल तेज स्फुरायमान कर, सदा दिलाए जो संतोष ॥94॥

अन्वयार्थ- **जिय**= हे जीव! **पुरिसायार-पमाणु**= पुरुषाकार प्रमाण, **एहु अप्पा**= यह आत्मा, **पवित्तु**= पवित्र है, **गुण-गण-णिलउ**= यह गुणों की राशि है और यह, **णिम्मल-तेय-फुरंतु**= निर्मल तेज को स्फुरित करता हुआ, **जोइज्जइ**= दिखाई देता है।

अर्थ - हे जीव ! पुरुषाकार यह आत्मा पवित्र है, यह गुणों की राशि है और यह निर्मल तेज को स्फुरित करती हुयी दिखायी देती है।

शुद्धात्मा अशुचि शरीर से भिन्न है

जो अप्पा सुद्ध वि मुणइ, असुइ-सरीर-विभिण्णु।
सो जाणइ सत्थइँ सयल, सासय-सुक्खहँ लीणु॥ 95॥

न जाने परमातम को जो , परभावों का करे ना त्याग ।
सर्व शास्त्र का ज्ञाता होवे, मुक्ति ना पावे धार विराग ॥95॥

अन्वयार्थ- **जो**= जो, **अप्पा सुद्ध वि**= शुद्ध आत्मा को, **असुइ-सरीर**= अशुचि शरीर से, **विभिण्णु मुणइ**= भिन्न समझता है, **सो**= वह, **सासय-सुक्खहँ**= शाश्वत सुख में, **लीणु**= लीन होकर, **सयल सत्थइँ**= समस्त शास्त्रों को, **जाणइ**= जानता है।

अर्थ - जो जीव शुद्ध आत्मा को अशुचि शरीर से भिन्न समझता है, वह शाश्वत सुख में लीन होकर समस्त शास्त्रों को जान जाता है।

शास्त्रों के जानने से मोक्ष नहीं

जो णवि जाणइ अप्पु परु, णवि परभाउ चएइ।
सो जाणउ सत्थइँ सयल, ण हु सिवसुक्खु लहेइ।।96।।

ना जाने परमातम को जो , परभावों का करे ना त्याग ।
सर्व शास्त्र का ज्ञाता होवे, मुक्ति ना पाए धार विराग ॥96॥

अन्वयार्थ- **जो**= जो, **णवि**= न तो, **अप्पु परु**= स्व-पर को, **जाणइ**= जानता है और, **णवि परभाउ**= न परभाव को, **चएइ**= त्याग ही करता है, **सो**= वह भले ही, **सयल सत्थइँ**= समस्त शास्त्रों को, **जाणउ**= जान जाय, परन्तु वह, **सिवसुक्खु**= मोक्ष सुख को, **ण हु लहेइ**= प्राप्त नहीं करता।

अर्थ - जो न तो (स्व-पर) परमात्मा को जानता है, और न परभाव का त्याग ही करता है, वह भले ही समस्त शास्त्रों को जान जाये, परंतु वह मोक्ष सुख को प्राप्त नहीं कर सकता।

मोक्ष सुख कैसा है?

वज्जिय सयल-वियप्पइँ, परम-समाहि लहंति।
जं विंदहिँ साणंदु क वि, सो सिव-सुक्ख भणंति॥ 97॥

सर्व विकल्पों से विरहित जो, परम समाधी करता प्राप्त ।
करते हैं आनन्द का अनुभव , वही मोक्ष सुख पाए आप्त ॥96॥

अन्वयार्थ- **सयल-वियप्पइँ**= जो समस्त विकल्पों से, **वज्जिय**= रहत होकर, **परम-समाहि**= परम समाधि को, **लहंति**= प्राप्त करते हैं, **जं**= वे, **साणंदु**= आनन्द का, **विंदहिँ**= अनुभव **क वि**= करते हैं, **सो**= वह, **सिव-सुक्ख**= मोख सुख, **भणंति**= कहा जाता है।

अर्थ - जो समस्त विकल्पों से रहित होकर परम समाधि को प्राप्त करते हैं, वे आनंद का अनुभव करते हैं, उसी को मोक्ष सुख कहा जाता है।

ध्यान के भेद

जो पिंडत्थु पयत्थु बुह, रूवत्थु वि जिण-उत्तु।
रूवातीतु मुणेहि लहु, जिम परु होहि पवित्तु॥ 98॥
हे बुध! जिन भगवान के द्वारा, कहे गये पिण्ड स्व पदस्थ ।
रूपस्थ और ध्यान रूपातीत , समझ शीघ्र तू हो सिद्धस्थ ॥97॥

अन्वयार्थ- **बुह**= हे बुध! **जिण-उत्तु**= जिन भगवान् के कहे हुए, **पिंडत्थु**= पिण्डस्थ, **पयत्थु**= पदस्थ, **रूवत्थु वि**= रूपस्थ और, **रूवातीतु**= रूपातीत ध्यान को, **मुणेहि**= समझ, **जिम**= जिससे तू, **लहु**= शीघ्र ही, **परु पवित्तु**= परम पवित्र **होहि**= हो सके।

अर्थ - हे बुध ! जिन भगवान् के कहे हुये पिण्डस्थ, पदस्थ, रूपस्थ और रूपातीत ध्यान को समझ, जिससे तू शीघ्र ही परम पवित्र हो सके।

पहला चारित्र-सामायिक चारित्र

सव्वे जीवा णाणमया, जो सम-भाव मुणेइ।
सो सामाइउ जाणि फुडु, जिणवर एम भणेइ॥ 99॥
सभी जीव हैं ज्ञान नहीं शुभ, इस प्रकार धारे समभाव।
निश्चय से सामायिक समझो ,कहे जिनेन्द्र जीव स्वभाव ॥98॥

अन्वयार्थ- **सव्वे जीवा**= समस्त जीव, **णाणमया**= ज्ञानमय हैं, **जो**= ऐसा जो, **सम-भाव मुणेइ**= समभाव है, **सो**= उसे, **फुडु**= निश्चय से, **सामाइउ जाणि**= सामायिक समझो, **एम**= ऐसा, **जिणवर भणेइ**= जिन भगवान ने कहा है।

अर्थ - समस्त जीव ज्ञानमय हैं, इस प्रकार जो समभाव है, उसे निश्चय से सामयिक समझना चाहिए, ऐसा जिन भगवान ने कहा है।

सामायिक

राय-रोस बे परिहरिवि, जो समभाउ मुणेइ।
सो सामाइउ जाणि फुडु, केवलि एम भणेइ॥ 100॥

राग द्वेष दोनों को तजकर, अन्तर में आये समभाव ।
निश्चय से सामायिक जानो, कहे जिनेन्द्र जीव स्वभाव ॥99॥

अन्वयार्थ- **राय-रोस**= राग और द्वेष, **बे**= इन दोनों को, **परिहरिवि**= छोड़कर, **जो समभाउ**= जो समभाव, **मुणेइ**= होता है, **सो**= उसे, **फुडु**= निश्चय से, **सामाइउ जाणि**= सामायिक समझो, **एम**= ऐसा, **केवलि**= जिन भगवान् ने, **भणेइ**= कहा है।

अर्थ - राग और द्वेष इन दोनों को छोड़कर जो समभाव होता है, उसे निश्चय सामयिक समझो ऐसा जिन भगवान ने कहा है।

दूसरा चारित्र-छेदोपस्थापना

हिंसादिउ-परिहारु करि, जो अप्पा हु ठवेइ ।
सो वियऊ चारित्तु मुणि, जो पंचम-गइ णेइ ॥ 101॥
हिंसादिक को तजकर के जो, आतम में हो स्थिरवान ।
उसे दूसरा चारित समझो, दिलवाए जो पद निर्वाण ॥100॥

अन्वयार्थ- **हिंसादिउ**= हिंसादिक का, **परिहारु करि**= त्याग कर, **जो**= जो, **हु**= निश्चय से, **अप्पा**= आत्मा को, **ठवेइ**= स्थिर करता है, **सो**= उसे, **बियउ चारित्तु**= दूसरा चारित्र (छेदोपस्थापना) **मुणि**= समझो, **जो**= यह, **पंचम-गइ**= पंचमगति को, **णेइ**= प्राप्त कराता है।

अर्थ - हे गुणी! हिंसादि का त्याग कर जो आत्मा को स्थिर करता है, उसे दूसरा चारित्र [छेदोस्थापना] समझना चाहिए-यह पंचमगति को ले जाने वाला है।

तृतीय चारित्र-परिहार विशुद्धि

मिच्छादिउ जो परिहरणु, सम्मद्दंसण-सुद्धि ।
सो परिहार-विसुद्धि मुणि, लहु पावहि सिव-सिद्धि ॥ 102॥
करने से मिथ्यात्वादि के, परिहार होवे दर्श विशुद्ध ।
वह परिहार विशुद्धी जानो, उससे जीव बनें सब सिद्ध ॥101॥

अन्वयार्थ- **मिच्छादिउ**= मिथ्यात्व आदि के, **परिहरणु**= परिहार से, **जो**= जो, **सम्मद्दंसण-सुद्धि**= सम्यग्दर्शन की शुद्धि होती है, **सो**= उसे, **परिहार-विसुद्धि**= परिहार विशुद्धि, **मुणि**= समझो, उससे जीव, **लहु**= शीघ्र ही, **सिव-सिद्धि**= मोक्ष सिद्धि को, **पावहि**= प्राप्त करता है।

अर्थ - मिथ्यात्व आदि के परिहार से जो सम्यग्दर्शन की विशुद्धि होती है, उसे परिहार विशुद्धि जानना चाहिए, उससे जीव शीघ्र ही मोक्ष सिद्धि को प्राप्त करता है।

चतुर्थ चारित्र-सूक्ष्म साम्पराय चारित्र

सुहुमहँ लोहहँ जो विलउ, जो सुहुमु वि परिणामु।
सो सुहुमु वि चारित मुणि, सो सासय-सुह-धामु॥ 103॥

सूक्ष्म लोभ का नाश होय तो, विशद सूक्ष्म होवें विशद परिणाम ।
यही सूक्ष्म चारित्र कहाए, शास्वत सुख का रहा निधान ॥102॥

अन्वयार्थ- **सुहुमहँ लोहहँ**= सूक्ष्म लोभ का, **जो विलउ**= नाश होने से, **जो**= जो, **सुहुमु**= सूक्ष्म, **वि परिणामु**= परिणामों का अवशेष रह जाता है, **सो**= वह, **सुहुमु वि चारित्र**= सूक्ष्म-चारित्र, **मुणि**= समझो, **सो**= वह, **सासय-सुह**= शाश्वत सुख का, **धामु**= स्थान है।

अर्थ - सूक्ष्म लोभ का नाश होने से जो सूक्ष्म परिणामों का अवशेष रह जाता है, वह सूक्ष्म चारित्र है, वह शाश्वत् सुख का स्थान है।

आत्मा ही पंच परमेष्ठी

अरहंतु वि सो सिद्धु फुडु, सो आयरिउ वियाणि।
सो उवझायउ सो वि मुणि, णिच्छइँ अप्पा जाणि॥ 104॥
निश्चय से आतम अर्हन्त है, निश्चय से वह ही है सिद्ध ।
आचार्योपाध्याय सर्व साधु वह, ऐसा जानो जगत प्रसिद्ध ॥103॥

अन्वयार्थ- **णिच्छइँ**= निश्चय से, **अप्पा**= आत्मा ही, **अरहंतु वि**= अर्हत् है, **सो**= वही, **फुडु**= निश्चय से, **सिद्धु**= सिद्ध है और, **सो**= वही, **आयरिउ वियाणि**=आचार्य है, **सो उवझायउ**= उसे ही उपाध्याय, **वि मुणि**= तथा उसे ही मुनि, **जाणि**= समझना चाहिए।

अर्थ - निश्चयनय से आत्मा ही अर्हंत है, वही निश्चय से सिद्ध है और वही आचार्य है, और उसे ही उपाध्याय तथा मुनि समझना चाहिये।

आत्मा के अनेकों नाम

सो सिउ संकरु विण्हु सो, सो रुद्द वि सो बुद्धु।
सो जिणु ईसरु बंभु सो, सो अणंतु सो सिद्धु॥ 105॥
शिव शंकर है विष्णु वहीं है , रुद्र बुद्ध जिन वह ईश्वर ।
ब्रह्मा वही हैं वही अनन्त हैं , सिद्ध वही है परमेश्वर ॥104॥

अन्वयार्थ- **सो सिउ**= वही शिव है, **संकरु**= वहीं शंकर है, **सो विण्हु**= वही विष्णु है, **सो रुद्दवि**= वही रुद्र है, **सो बुद्धु**= वही बुद्ध है, **सो जिणु**= वही जिन है, **ईसरु**= वही ईश्वर है, **सो बंभु**= वही ब्रह्म है, **सो अणंतु**= वही अनन्त है और, **सो सिद्धु**= सिद्ध भी उसे ही कहना चाहिए।

अर्थ - वही शिव है, वही शंकर है, वही विष्णु है, वही रुद्र है, वही बुद्ध है, वही जिन है, वही ईश्वर है, वही ब्रह्मा है, वही अनंत है और सिद्ध भी उसे ही कहना चाहिये। (आत्मा को अनेक नामों से जाना जाता है।)

Aakriti

आत्मा ही देव है

एव हि लक्खण-लक्खियउ, जो परु णिक्कलु देउ।
देहहँ मज्जहिँ सो वसइ, तासु ण विज्जइ भेउ॥ 106॥

इन्हीं लक्षणों युक्त परम जो , देव देह में करे निवास ।
उसमें और आत्मा में कोई ,नहीं भेद धारो विश्वास ॥105॥

अन्वयार्थ- **एव हि**= इन, **लक्खण-लक्खियउ**= लक्षणों से युक्त, **परु**= परम, **णिक्कलु**= निष्कल, **देउ**= देव है और, **जो**= जो, **देहहँ मज्झहिँ**= देह में, **सो वसइ**= आत्मा निवास करता है, **तासु**= उन दोनों में, **भेउ**= कोई भी भेद, **ण विज्जइ**= नहीं है।

अर्थ - इन लक्षणों से युक्त परम निष्कल देव जो देह में निवास करता है, उसमें और आत्मा में कोई भी भेद नहीं है।

आत्म दर्शन ही कार्यकारी

जे सिद्धा जे सिज्झिहिहिँ, जे सिज्झहिँ जिण-उत्तु।
अप्पा-दंसणि ते वि फुडु, एहउ जाणि णिभंतु॥ 107॥

सिद्ध हुए होंगे भविष्य में, वर्तमान में होते सिद्ध ।
निश्चय से आतम दर्शन कर,' विशद' लोक में हुए प्रसिद्ध ॥106॥

अन्वयार्थ- **जे सिद्धा**= जो सिद्ध हो चुके, **जे सिज्झिहिहिँ**= जो भविष्य में होंगे और, **जे सिज्झहिँ**= जो वर्तमान में सिद्ध हो रहे हैं, **ते वि फुडु**= वे सब निश्चय से, **अप्पा-दंसणि**= आत्मदर्शन से ही सिद्ध हुए हैं, **एहउ**= यह, **णिभंतु**= भ्रान्तिरहित, **जाणि**= समझो।

अर्थ - जो सिद्ध हो चुके हैं, भविष्य में होंगे और वर्तमान में होते हैं, वे सब निश्चय से आत्मदर्शन से ही सिद्ध हुये हैं-यह भ्रांति रहित समझना चाहिए। ऐसा आचार्य भगवन् योगीन्द्र देव जी ने कहा है।

ग्रंथकार का उद्देश्य

संसारह भय-भीयएण, जोगिचंद-मुणिएण।
अप्पा-संबोहण कया, दोहा इक्क-मणेण॥ 108॥

श्री योगीन्द्र देव मुनिवर ने, भव दुख से होके भयभीत ।
मन एकाग्र कर आत्म सम्बोधन, हेतु लिखे दोहे धर प्रीत ॥107॥

अन्वयार्थ- **संसारह भय-भीयएण**= संसार के दुःखों से भयभीत ऐसे, **जोगिचंद-मुणिएण**= योगीन्दुदेव मुनि ने, **अप्पा-संबोहण कया**= आत्म संबोधन के लिए, **इक्क-मणेण**= विशद एकाग्र मन से, **दोहा**= इन दोहों की रचना की है।

अर्थ - संसार के दुखों से भयभीत ऐसे योगीन्दु देव मुनि ने आत्म संबोधन के लिये विशद एकाग्र मन से इन दोहों की रचना की है।

।। योगसार समाप्तं।।

श्री कुन्दकुन्दाचार्य विरचित

।। रयणसार ।।

पद्यानुवाद आचार्य विशद सागर जी महाराज

णमिदूण वड्ढमाणं, परमप्पाणं जिणं तिसुद्धेण।
वोच्छामि रयणसारं, साया रणयार धम्मीण॥ 1॥

वर्धमान पद नमन हमारा,तीन योग से होकर शुद्ध।
रयणसार सागार अनगारी, की रचना मैं करुँ विशुद्ध ॥1॥

अन्वयार्थ- (परमप्पाणं) परमात्मा (वड्ढमाणं) वर्द्धमान (जिणं) जिन को (तिसुद्धेण) मन-वचन, काय की शुद्धि से (णमिऊण) नमस्कार कर (सायारणयार) गृहस्थ और मुनि के (धम्मीणं) धर्मयुक्त (रयणसारं) रत्नसार (रयण सार) (ग्रन्थ) को (वोच्छामि) कहूँगा।

भावार्थ - मैं परमात्मा [तीर्थंकर] वर्द्धमान जिन को मन वचन काय की त्रिशुद्धि पूर्वक नमस्कार करके सागार [गृहस्थ] और अनागार [साधु] धर्म का व्याख्यान करने वाला विशद रयणसार ग्रन्थ कहता हूँ / की रचना करता हूँ।

सम्यक्दृष्टि की पहिचान

पुव्वं जिणेहि भणियं, जहट्ठियं गणहरेहि वित्थरियं।
पुव्वाइरियक्क मजं, तं बोल्लइ जो हु सद्दिट्ठी॥ 2॥

पूर्व काल में कहे जिनेश्वर, विस्तारे गणधर गुणवान ।
प्राप्त है पूर्वाचार्यों द्वारा, जो बोले सद्दृष्टीवान ॥2॥

अन्वयार्थ- (जो) जो (पुव्वं) पूर्वकाल में (जिणेहि) जिनदेव के द्वारा (भणियं) कहे हुए (गणहरेहि) गणधरों के द्वारा (वित्थरियं) विस्तृत किये गए विस्तार रूप से बताये-और जो (पुव्वाइरियवकमजं) पूर्वाचार्यों के क्रम से परम्परा से प्राप्त (जहट्ठियं) ज्यों का त्यों (तं) उसी (सत्य) को (बोल्लइ) बोलता है- कहता है (हु) निश्चय से (वह) (सद्दिट्ठी) सम्यग्दृष्टि है।

भावार्थ - जो निश्चय से सम्यग्दृष्टि है, [वह] पूर्व काल में जिनेन्द्रों ने जो कहा है, गणधरों ने उसी सत्य को विस्तार रूप से बताया है और पूर्वाचार्यों की परंपरा से जो प्राप्त हुआ, उसी को बोलता है।

मिथ्यादृष्टि की पहिचान

मदि सुद णाण बलेण दु, सच्छंदं बोल्लइ जिणुद्दिट्ठं।
जो सो होई कुदिट्ठी, ण होइ जिण मग्ग लग्गरओ॥ 3॥

मति श्रुत ज्ञान से हो स्वच्छन्द जो ,बोले वह मिथ्यात्वी जान ।
श्री जिन मार्गी नहीं होय वह , ऐसा कहते हैं भगवान ॥3॥

अन्वयार्थ- (जो) जो (इदि) इसी प्रकार (जिणुद्दिट्ठिं) जिनेन्द्र कथित (तत्त्व) को (मदिसुदणाणबलेण दु) मतिज्ञान और श्रुतज्ञान के बल से (सच्छंदं) स्वच्छन्द, स्वेच्छानुसार (बोल्लई) बोलता है (सो) वह (कुदिट्ठी) मिथ्यादृष्टि (होइ) होता है (जिणमग्गलग्गरओ) जिन मार्ग में संलग्न (प्रवचनकार) (ण) नहीं (होइ) होता है।

भावार्थ - जो व्यक्ति मतिज्ञान और श्रुतज्ञान के बल से स्वच्छंद [मनः कल्पित] बोलता है, वह व्यक्ति मिथ्यादृष्टि है। वह जिनेन्द्रदेव के मार्ग में आरूढ़ व्यक्ति नहीं है।

सम्यक्दर्शन के भेद

सम्मत्त रयण सारं, मोक्ख महारुक्ख मूलमिदि भणियं।
तं जाणिज्जइ णिच्छय ववहारसरूवदो भेयं॥ 4॥
सारभूत है रत्न सुसम्यक, मोक्ष वृक्ष का है जो मूल ।
निश्चय अरु व्यवहार भेद दो, मानो जिसके पावन फूल ॥4॥

अन्वयार्थ- (मोक्खमहारूक्खमूलं) मोक्षरूपी महान् वृक्ष का मूल (सम्मत्तरयणसारं) सम्यक्त्व रत्न ही सारभूत है। (इदि) ऐसा (भणियं) कहा गया है (तं) वह (णिच्छयववहारसरूवदो) निश्चय और व्यवहार स्वरूप से (भेदं) दो भेद वाला (जाणिज्जइ) जाना जाता है।

भावार्थ - सम्यक्त्व [सम्यग्दर्शन] रत्न ही सारभूत है। वह मोक्षरूपी महान वृक्ष का मूल है, ऐसा कहा गया है। वह निश्चय और व्यवहार रूप से दो भेद वाला जाना जाता है। [उसके निश्चय सम्यग्दर्शन और व्यवहार सम्यग्दर्शन ये दो भेद हैं।

सम्यक्दृष्टि का स्वरूप

भय विसण मल विवज्जिय, संसार सरीर भोग णिव्विणो।
अट्ठ गुणंग समग्गो, दंसणसुद्धो हु पंचगुरुभत्तो॥ 5॥
सम्यक दर्शन से विशुद्ध जो, व्यसन भयों मल से निर्मुक्त ।
पंच गुरु का भक्त अष्ट गुण, युत भव भोग शरीर विमुक्त ॥5॥

अन्वयार्थ- (भय) भय (विसण) व्यसन, (मल) मल दोष (विवज्जिय) रहित (संसार) संसार (सरीर) शरीर (भोग) भोग से (णिव्विणो) विरक्त (अट्ठगुणंग) आठ गुणों से (समग्गो) युक्त (पंचगुरूभत्तो) पञ्च परमेष्ठी का भक्त (हु) निश्चय ही (दंसणसुद्धो) निर्दोष सम्यग्दर्शन का धारक (सम्यग्दृष्टि) होता है।

भावार्थ - निर्दोष सम्यग्दर्शन का धारक निश्चय ही [सप्त] भय, [सप्त] व्यसन और [पच्चीस] मलों [दोषों] से रहित, संसार, शरीर और भोगों से विरक्त, अष्टांग [निःशंकितादि] गुणों से युक्त और पंच गुरू [परमेष्ठी] का भक्त होता है।

सम्यग्दृष्टि दुखी नहीं होता है

णिय सुद्धप्पणुरत्तो, बहिरप्पावत्थ वज्जिओ णाणी।
जिण मुणि धम्मं मण्णइ, गयदुक्खो होई सद्दिट्ठी॥ 6॥

बहिरातम वर्जित शुद्धातम, में अनुरक्त हो ज्ञानी जीव ।
जिन मुनि धर्म मानने वाला , सद्दृष्टी दुख रहित अतीव ॥6॥

अन्वयार्थ- (णियसुद्दप्पणुरत्तो) निज शुद्धात्मा में अनुरक्त (वहिरप्पावत्थ) बहिरात्मा की अवस्था से (वज्जिओ) रहित (णाणी) आत्मज्ञानी (जिण) जिनेन्द्र देव (मुणि) मुनि और (धम्मं) धर्म को (मण्णइ) मानता है- ऐसा (सद्दिट्ठी) सम्यग्दृष्टि (गयदुक्खो) दुखों से रहित (होइ) होता है।

भावार्थ - [जो] निज शुद्ध आत्मा में अनुरक्त [रहता] है, बहिरात्मा की दशा से रहित [पराङ्मुख] होता है, आत्मज्ञानी [होता है और] जिनेन्द्रदेव, मुनि और धर्म को मानता है, ऐसा सम्यग्दृष्टि दुखों से रहित होता है।

सम्यग्दृष्टि 44 दोषों से रहित होता है

मय मूढ मणायदणं, संकाइवसण भयमईयारं।
जेसिं चउदालेदो, ण संति ते होंति सद्दिट्ठी॥ 7॥

शंकादिक मद व्यसन मूढ़ता, भय अनायतन औ अतिचार ।
सम्यकदृष्टी दोष चवालिस ,रहित कहे श्री जिन अविकार ॥7॥

अन्वयार्थ- (जेसिं) जिनके (मय) मद (मूढ़ं) मूढ़ता (अणायदणं) अनायतन (संकादि) शंकादि दोष (वसण) व्यसन (भयं) भय (अईयार) अतिचार (चउदालेदो) चवालीस (दोष) (ण) नहीं (संति) होते हैं (ते) वे (सद्दिट्ठी) सम्यग्दृष्टि (होंति) होते हैं।

भावार्थ - जिनके [आठ] मद, [तीन] मूढ़ता, [छह] अनायतन, शंकादि [आठ] दोष, [सात] व्यसन, [सात] भय, और [पाँच] अतिचार - ये चवालीस दोष नहीं होते हैं, वे सम्यग्दृष्टि होते हैं।

श्रावक के 77 गुण

उहय गुण वसण भय, मल वेरग्गाइचार भत्ति विग्घं वा।
एदे सत्तत्तरिया, दंसण सावय गुणा भणिया॥ 8॥

मूलोत्तर गुण सप्त व्यसन भय, भावनाएँ बारह अतिचार ।
सद्दृष्टी मल दोषों विरहित, सुगुण सतत्तर युत शुभकार॥ 8॥

अन्वयार्थ- (उहयगुण) मूलगुण और उत्तर गुण आठ मूल गुण और बारह उत्तर गुण (वसण) व्यसन (भय) भय (मल)मलदोष(इनका त्याग) (वेरग्ग) बारह भावना का चिन्तन (अइचार) सम्यग्दर्शन के पाँच अतिचार (का परित्याग) (वा) और (भत्तविग्घं) (देव शास्त्र गुरू में) निर्विघ्न भक्ति (एदे) ये (सत्तत्तरिया) सतत्तर (दंसणसावयगुणा) सम्यग्दृष्टि श्रावक के गुण (भणिया) कहे गये हैं।

भावार्थ - दोनों गुण [आठ मूलगुण, बारह उत्तर गुण], सात व्यसन, सात भय, पच्चीस मल [दोषों से रहित], वैराग्य युक्त 12 भावनायें, [पाँच] अतिचार रहित और निर्विघ्न भक्ति भावना से सम्यग्दृष्टि श्रावक के सतत्तर गुण कहे गये हैं।

सम्यग्दृष्टि को मोक्ष-सुख मिलता है

देवगुरू समयभत्ता, संसार सरीर भोग परिचत्ता।
रयणत्तय संजुत्ता, ते मणुवा सिवसुहं पत्ता॥ 9॥

देव शास्त्र गुरु भक्त रहे जो , करें भोग तन का परिहार ।
रत्नत्रय संयुक्त जीव हों, मोक्ष सौख्य पावें शुभकार ॥9॥

अन्वयार्थ- जो (देव) देव(जिनेन्द्र) (गुरू) निर्ग्रन्थ (समय) शास्त्र (भत्ता) के भक्त होते हैं (संसार) संसार (सरीर) शरीर (भोग) भोग के (परिचित्ता) परित्यागी होते हैं (रयणत्तय) रत्नत्रय से (संजुत्ता) संयुक्त होते हैं (ते) वे (मणुवा) मनुष्य (सिवसुहं) मोक्ष सुख को (पत्ता) प्राप्त होते हैं।

भावार्थ - [जो मनुष्य] देव, गुरू और शास्त्र के भक्त होते हैं, संसार, शरीर और भोगों के परित्यागी होते हैं, और [सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र] रत्नत्रय से संयुक्त होते हैं, वे मोक्ष सुख को प्राप्त करते हैं।

सम्यग्दर्शन सहित बाह्यचारित्र मोक्ष का कारण है

दाणं पूया सीलं, उववासं बहुविहं पि खवणं पि।
सम्मजुदं मोक्खसुहं, सम्मविणा दीहसंसारं ॥ 10॥

सम्यक् युक्त दान पूजादिक , शील अनेक करें उपवास ।
मोक्ष सुखों के कारण सम्यक् , रहित होय संसारावास ॥10॥

अन्वयार्थ- (सम्मजुदं) सम्यग्दर्शन सहित (दाणं) दान (पूजा) पूजा (सीलं) शील (बहुविहं पि) अनेक प्रकार के (उववासं) उपवास (खवणं पि) कर्मक्षय के कारण भूत व्रत आदि (मोक्खसुहं) मोक्ष सुख के कारण हैं (और) (सम्मविणा) सम्यग्दर्शन के बिना (ये ही) (दीह संसार) दीर्घ संसार के कारण हैं।

भावार्थ - सम्यग्दर्शन से युक्त दान, पूजा, शील, अनेक प्रकार के उपवास तथा कर्म-क्षय के कारण भूत व्रत आदि मोक्ष सुख के कारण हैं और सम्यग्दर्शन के बिना ये ही दीर्घ संसार के कारण हैं।

श्रावक और मुनि के कर्त्तव्य

दाणं पूया मुक्खं सावयधम्मे, ण सावया तेण विणा।
झाणज्झयणं मुक्खं जइधम्मं तं विणा तहा सो वि॥ 11॥

पूजा दान मुख्य होते हैं , श्रावक इनसे रहित ना होय।
ध्यानाध्यान हैं मुख्य साधु के, मुनी धर्म इन बिना ना सोय ॥11॥

अन्वयार्थ- (सावयधम्मे) श्रावक धर्म में (दाणं) दान (पूजा) पूजा (मुक्खं) श्रावक का मुख्य कर्तव्य है। (तेण) उसके (विणा) बिना (सावया) श्रावक (ण) नहीं होता है (झाणाज्झयणं) ध्यान और अध्ययन (जइधम्मं) यतियों का धर्म (मुक्खं) मुख्य है (तं) उसके (विणा) बिना (सो वि) वह भी (तहा) वैसा ही (व्यर्थ) है।

भावार्थ - श्रावक-धर्म में दान और पूजा मुख्य [कर्त्तव्य] हैं। उसके [दान और पूजा] के बिना श्रावक नहीं होता [कहलाता]। मुनि-धर्म में ध्यान और अध्ययन मुख्य [कर्त्तव्य] हैं। उस [ध्यान,अध्ययन] के बिना वह मुनिधर्म भी वैसा ही व्यर्थ है।

बहिरात्मा पतंगे के समान है

दाण ण धम्म ण चाग ण, भोग बहिरप्प जो पयंगो सो।
लोहकसायग्गिमुहे, पडियो मरियो ण संदेहो॥ 12॥
दान त्याग ना धर्म करे जो, न्याय पूर्वक भोग विहीन।
बहिरातम वह रहा पतंगा , लोभाग्नि में मरे हो दीन ॥12॥

अन्वयार्थ- (जो) जो (दाणु) दान (ण) नहीं देता (धम्मु) धर्म (ण) नहीं पालता है(चागु ण) त्याग नहीं करता (भोगु) नीति पूर्वक भोग (ण) नहीं करता (बहिरप्प) बहिरात्मा है (सो) वह (पयंगो) पतंगे के समान (लोहकसायग्गिमुहे) लोभ कषाय रूपी अग्नि के मुख में (पडिदो) पड़कर (मरिदो) मरता है (इसमें) (संदेहो) संदेह (ण) नहीं है।

भावार्थ - जो श्रावक दान नहीं देता, धर्म का पालन नहीं करता, त्याग नहीं करता, न्यायपूर्वक भोग नहीं करता, वह बहिरात्मा है। वह ऐसा पतंगा है जो लोभ कषाय रूपी अग्नि के मुख में पड़ा हुआ मर जाता है, इसमें संदेह नहीं है।

पूजा, दान करने वाला सम्यग्दृष्टि है

जिणपूया मुणिदाणं, करेइ जो देइ सत्तिरूवेण।
सम्मादिट्ठी सावय, धम्मी सो होई मोक्ख मग्गरओ ॥ 13॥
श्री जिन की पूजा जो करता, यथा शक्ति देता मुनि दान ।
सम्यग्दृष्टी श्रावक धर्मी , मुक्तीपथ गामी है मान॥13॥

अन्वयार्थ- (जो) जो (सत्तिरूवेण) शक्ति अनुसार (जिणपूजां) जिनवर (देव शास्त्र गुरू) की पूजा (करेइ) करता है (सत्तिरूवेण) शक्ति के अनुसार (मुणिदाणं) मुनियों को दान (देइ) देता है। (सो) वह (समाइट्टी) सम्यग्दृष्टि (धम्मी) धर्मात्मा (सावय) श्रावक (मोक्खमग्गरओ) मोक्षमार्गरत है।

भावार्थ - जो जिनदेव की पूजा करता है और शक्ति के अनुसार मुनियों को दान देता है, वह सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा श्रावक है। वह मोक्ष मार्ग में रत है।

Aakriti

पूजा और दान का फल

पूयफलेण तिलोए, सुरपुज्जो हवइ सुद्धमणो।
दाण फलेण तिलोए, सारसुहं भुंजदे णियदं॥ 14॥

तीन लोक में देवपूज्य हो ,पूजा के फल से यह जीव ।
दान के फल से सारभूत सुख,निश्चय से जो पाय अतीव ॥14॥

अन्वयार्थ- (सुद्धमणो) शुद्ध मन वाला (श्रावक) (पूयफलेण) पूजा के फल से (तिलोए) तीनों लोको में (सुरपुज्जो) देवों से पूज्य (हवइ) होता है। (और) (दाणफलेण) दान के फल से (तिलोएणियदं) तीनों लोकों में निश्चित रूप से (सारसुहं) सारभूत सुख को (भुंजदे) भोगता है।

भावार्थ - शुद्ध मन वाला श्रावक पूजा के फल से तीनों लोकों में देवों से पूज्य होता है और दान के फल से तीनों लोकों में निश्चय से सारभूत सुख को भोगता है।

जिनमुद्रा देखकर आहारदान का उपदेश

दाणं भोयणमेत्तं, दिण्णइ धण्णो हवेइ सायारो।
पत्तापत्त विसेसं, सदंसणे किं वियारेण॥15॥

धन्य होय श्रावक जिन मुनि को ,भाव सहित देवे आहार ।
पात्रापात्र का करता है क्यों ,हे श्रावक! तू देख विचार ॥15॥

अन्वयार्थ- (सायारो) श्रावक (भोयणमेत्तं) भोजन मात्र (दाणं) दान (दिण्णइ) देता है (तो वह) (धण्णो) धन्य (हवेइ) हो जाता है (सदंसणे) दर्शन होने पर (जिनलिंग को देखकर) (पत्तापत्तविसेसं) पात्र अपात्र विशेष के (वियारेण) विचार या विकल्प करने से (किं) क्या लाभ है?

भावार्थ - [यदि] श्रावक [मुनि को] भोजन मात्र देता है वह धन्य हो जाता है। [एक जिन लिंग को] देखकर पात्र विशेष या अपात्र विशेष का विचार [विकल्प] करने से क्या [लाभ] है ?

सुपात्र-दान से स्वर्ग, मोक्ष की प्राप्ति होती है

दिण्णेइ सुपत्तदाणं, विसेसदो होइ भोगसग्गमही।
णिव्वाणसुहं कमसो, णिद्दिट्ठं जिणवरिंदेहिं॥16॥

भोग भूमि होवे सुपात्र के , दान से स्वर्ग और निर्वाण ।
क्रमशः पावेंभव्य जीव यह, ऐसा कहते जिन भगवान ॥16॥

अन्वयार्थ- (सुपत्तदाणं) सुपात्र को दान (दिण्णेइ) देने से (विसेसतो) विशेष रूप से (भोगमही) भोगभूमि (सग्गमही) स्वर्ग को (होइ) प्राप्त होता है (कमसो) क्रम से (णिव्वाण) निर्वाण (सुहं) सुख को (होइ) प्राप्त होता है (जिणवरिंदेहिं) जिनेन्द्र देव ने ऐसा (णिद्दिट्ठं) कहा है।

भावार्थ - [यदि] सुपात्र को दान दिया जाता है [तो उसके फलस्वरूप] विशेष रूप से भोगभूमि और स्वर्ग प्राप्त होता है और क्रमशः निर्वाण सुख मिलता है, ऐसा जिनेन्द्र देवों ने कहा है।

सुपात्र-दान का उत्तम फल

खेत्त विसेसकाले, ववियं सुवीयं फलं जहा विउलं।
होइ तहा तं जाणइ, पत्तविसेसेसु दाणफलं॥ 17॥

उत्तम काल खेत उत्तम में ,उत्तम बीज विपुल फलवान।
होता त्यों उत्तम पात्रों में, दान का फल भी रहा महान ॥17॥

अन्वयार्थ- (जहा) जैसे (खेत्त) उत्तम क्षेत्र में (विसेसकाले) योग्य काल में (ववियं) बोया हुआ (सुवीयं) उत्तम बीज (विउलं) विपुल (फलं) फलवाला (होइ) होता है (तहा) उसी प्रकार (पत्तविसेसेसु) पात्र विशेषों में यानि उत्तम पात्रों में दिये (तं) उस (दाणफलं) दान के फल को (जाणइ) जानो।

भावार्थ - जैसे उत्तम क्षेत्र में, उपयुक्त काल में बोये हुये उत्तम बीज का विपुल फल मिलता है, उसी प्रकार उत्तम पात्रों को दिये उस दान के फल को जानो।

सप्त क्षेत्रों में दिये दान का फल

इह णिय सुवित्तवीयं, जो ववदि जिणुत्त सत्त खेत्तेसु।
सो तिहुवण रज्ज फलं, भुंजदि कल्लाणपंचफलं॥ 18॥

जिनवर कथित सप्त क्षेत्रों में, बीज रूपधन जो भी बोय ।
वह त्रिभुवन के राज्य रूप फल, पंचकल्याणक पाए सोय॥18॥

अन्वयार्थ- (इह) इस लोक में (जो) जो पुरुष (जिणुत्त) जिनेन्द्र द्वारा कथित (सत्तखेत्तेसु) सात क्षेत्रों में (णिय) अपने (सुवित्त) नीतिपूर्वक उपार्जित श्रेष्ठ धन (वीयं) (धनरूपी) बीज को (ववइ) बोता है (सो) वह (तिहुवणरज्जफलं) त्रिभुवन के राज्य रूपी फल को (और) (कल्लाणपंचफल) पंचकल्याणक रूप फल को (भुंजदि) भोगता है।

भावार्थ - इस लोक में जो पुरुष जिनेन्द्र देव द्वारा कथित सप्त क्षेत्रों में अपने [नीतिपूर्वक] श्रेष्ठ धनरूपी बीज को बोता है, वह त्रिभुवन के राज्य रूपी फल को और पंच कल्याणक रूप फल को भोगता है।

दान के सात स्थान -

जिन बिम्बं जिनागारं, जिन यात्रा महोत्सवं।
जिन तीर्थ जिनागमं, जिनायतनानि सप्तधा॥

1. जिनबिम्ब 2. जिनगृह 3. जिनयात्रा 4. महोत्सव 5. जिनतीर्थ 6. जिनशास्त्र 7. जिनायतन

Akriti

सुपात्र दान का फल

मादु पिदु-पुत्त-मित्तं, कलत्त-धण-धण्ण-वत्थु-वाहण-विहवं।
संसार सारसोक्खं, सव्वं जाणह सुपत्तदाणफलं॥ 19॥

मात पिता ! सुत मित्र सुभार्या, गौ आदिक पशु धान्य मकान ।
उत्तम वैभव सुख इस जग के, पात्र दान से पाए महान ॥19॥

अन्वयार्थ- (मादु) माता (पिदु) पिता (पुत्र) पुत्र (मित्र) मित्र (कलत्त) स्त्री (धण) गाय आदि पशु (धण्ण) अनाज (वत्थु) मकान (वाहण) रथ- हाथी आदि (विसयं) वस्त्र अलंकार आदि वैभव (संसार) संसार के (सार सोक्खं) उत्तम सुख (सव्वं) सब (सुपत्तदाण) सुपात्र दान का (फलं) फल (जाणह) जानना चाहिए।

भावार्थ - माता, पिता, पुत्र, मित्र, स्त्री, गाय, आदि पशु, अनाज, मकान, वाहन, वैभव और संसार के उत्तम सुख यह सब सुपात्र दान का फल जानो।

सुपात्र दान का फल

सत्तंग रज्ज णवणिहि, भंडार सडंग बल चउद्दह रयणं।
छण्णवदि सहस्सित्थी, विहवं जाणह सुपत्त दाण फलं॥ 20॥

सप्तांग राज्यकोष नव निधियाँ, सहस छियानवे स्त्रीवान ।
बल भण्डार चौदह रत्नों का, वैभव पाए करके दान ॥20॥

अन्वयार्थ- (सत्तंगरज्ज) सप्ताङ्ग राज्य (णवणिहि) नवनिधि (भंडार) कोष (सडंगबल) छह प्रकार की सेना (चउद्दहरयणं) चौदह रत्न (छण्णवदि) छियानवे (सहसिच्छि) हजार रानियाँ (विहउ) (ये सब) वैभव (सुपत्तदाण) सुपात्रदान का (फलं) फल (जाणउ) जानो।

भावार्थ - सप्तांग राज्य, नवनिधि, कोष, छह प्रकार की सेना, चौदह रत्न, छियानवे हजार स्त्रियाँ और वैभव यह सब सुपात्र दान का फल जानो।

सुपात्र दान का फल

सुकुल सुरूव सुलक्खण, सुमदि सुसिक्खा सुसील सुगुणसुचरित्तं।
सयलं सुहाणु भवणं, विहवं जाणह सुपत्तदाणफलं॥ 21॥

उत्तम रूप सुकुल लक्षण शुभ, उत्तम शिक्षा बुद्धीवान ।
सुगुण चरित्र सकल सुख अनुभव, वैभव पावे करके दान ॥21॥

अन्वयार्थ- (सुकुल) उत्तम कुल (सरूव) सुन्दर रूप (सुहलक्खण) शुभ लक्षण (सुमइ) श्रेष्ठ बुद्धि (सुसिक्खा) निर्दोष शिक्षा (सुसील) उत्तमशील (सुगुण) उत्कृष्ट गुण (सुचारित्तं) सम्यक् चारित्र (सुहलेसं) शुभ लेश्या (सुहणामं) शुभ नाम (कर्म) (और) (सुहसादं) शुभ सुख (सब) (सुपत्तदाणफलं) सुपात्र दान के फल हैं।

भावार्थ - उत्तम कुल, उत्तम रूप, उत्तम लक्षण, उत्तम बुद्धि, उत्तम शिक्षा, उत्तम स्वभाव, उत्तम गुण, उत्तम चारित्र, सकल सुखों का अनुभव और वैभव [यह सब] सुपात्र दान का फल जानो।

आहारदान के बाद शेषान्न का सेवन करने वाला मोक्ष प्राप्त करता है

जो मुणि भुत्त वसेसं, भुंजइ सो भुंजए जिणुद्दिट्ठं।
संसारसार सोक्खं, कमसो णिव्वाणवर सोक्खं॥ 22॥

मुनि आहार के बाद भुक्त जो, खाए सार भूत सुख पाए।
क्रमशः मोक्ष सौख्य पावे वह, ऐसा कहते श्री जिनराय॥ 22॥

अन्वयार्थ- (जो) जो (गृहस्थ) (मुनिभुत्तवसेसं) मुनि के आहार के पश्चात् अवशिष्ट अन्न को (प्रसाद मानकर) (भुज्जइ) खाता है (सो) वह (संसार सार सोक्खं) संसार के सारभूत सुखों को और (कमसो) क्रमशः (णिव्वाण) मोक्ष के (वरसोक्खं) उत्तम सुख को (भुज्जए) भोगता है- ऐसा (जिणुवद्दिट्ठं) जिनेन्द्र देव ने कहा है।

भावार्थ - जो [भव्य जीव] मुनि के आहार के पश्चात् अवशिष्ट अन्न को [प्रसाद मानकर] खाता है, वह संसार के सारभूत सुखों को और क्रमशः मोक्ष के उत्तम सुख को भोगता है, ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है।

मुनियों के आहारदान में विवेक

सीदुण्ह वाउपिउलं सिलेसिमं तह परीसमंवाहिं।
कायक्लेसुववासं जाणिज्जे दिण्णए दाणं॥ 23॥

बात पित्त कफ शीत उष्ण या, रोग परिश्रम या उपवास ।
काय क्लेश तप आदि जानकर,दान देय हो पूरी आस ॥23॥

अन्वयार्थ- (मुनि की) (सीदुण्ह) शीत या उष्ण (वाउ) वात (पिउलं) पित्त (या) (सिलसिमं) कफ प्रधान प्रकृति (तह) तथा (परीसमव्वाहिं) परिश्रम, व्याधि (कायकिलसुव्वासं) कायक्लेश (तप) और उपवास (जाणिज्जे) जानकर (दाणं) दान (दिण्णए) देना चाहिए ।

भावार्थ - शीत या उष्ण [काल ऋतु], [मुनि की प्रकृति], वात, पित्त, या कफ [प्रधान हैं], [गमनागमन या ध्यानासनों में होने वाले] परिश्रम, रोग, कायक्लेश तप और उपवास [आदि सारी बातों को] जानकर दान दिया जाता है।

मुनि के लिए देय वस्तु में विवेक

हियमियमण्णं पाणं, णिरवज्जोसहिं णिराउलं ठाणं।
सयणासण मुवयरणं, जाणिज्जा देदि मोक्ख मग्गरदो॥ 24॥

मोक्ष मार्ग अनुरक्त मुनि को , हित मित अन्न पान निर्दोष ।
आसन शयनोपकरण निराकुल, स्थान दे पावें सन्तोष ॥24॥

अन्वयार्थ- (मोक्ख मग्गरदो) मोक्षमार्ग में अनुरक्त व्यक्ति (हियमियं) हित और मित (अण्णं) अन्न (पाणं) पान (णिरवज्जोसहि) निर्दोष औषधि (णिराउलं) निराकुल (ठाणं) स्थान (सयणासणुवयरणं) शयनोपकरण और आसनोपकरण (जाणिज्जा) आवश्यकतानुसार जानकर (देइ) देता है।

भावार्थ - मोक्षमार्ग में अनुरक्त व्यक्ति [मुनि को] हितकारी और परिमित अन्न, पान, निर्दोष, निराकुल स्थान, शयनोपकरण और आसनोपकरण [आवश्यकता जानकर] देता है।

गर्भस्थ बालक के समान मुनियों की वैयावृत्त्य करें

अणयाराणं वेज्जावच्चं, कुज्जा जहेह जाणिच्चा ।
गब्भब्बमेव मादा, पिदुच्च णिच्चं तहा णिरालसया॥ 25॥
मात पिता निज शिशु का जैसे , पालन करते उसी प्रकार ।
प्रकृति आदि जान मुनियों की, वैयावृत्ति करो उपकार ॥25॥

अन्वयार्थ- (जहेह) जैसे इस लोक में (मादा पिदुच्च) माता और पिता (गब्भब्भमेव) गर्भ स्थिति या गर्भ से उत्पन्न शिशु का सावधनी से पालन करते हैं (तहा) उसी प्रकार (णिच्चं) सदा (णिलासया) आलस्य रहित होकर (अणयाराणं) मुनियों की (जाणिज्जा) प्रकृति आदि जानकर (वेज्जावच्चं) वैय्यावृत्य (कुज्जा) करनी चाहिये।

भावार्थ - जैसे इस लोक में माता और पिता गर्भस्थ शिशु का सावधानी पूर्वक पालन करते हैं, उसी प्रकार मुनियों की प्रकृति आदि जानकर सदा आलस्य रहित होकर वैयावृत्त्य करनी चाहिये।

सम्यग्दृष्टि और लोभी पुरुष के दान में अन्तर

सप्पुरिसाणं दाणं, कप्पतरूणं फलाणं सोहा वा।
लोहीणं दाणं जह, विमाण सोहा सवं, जाणे॥ 26॥
कल्पवृक्ष के फल सम शोभित ,होता सत्पुरुषों का दान ।
अर्थी के शव की शोभा सम, दान लोभियों का पहचान ॥26॥

अन्वयार्थ- (सप्पुरिसाणं) सत्पुरुषों - सम्यग्दृष्टि जीवों का (दाणं) दान (कल्पतरूणं) कल्पवृक्ष के (फलाणं) फलों की (सोहवहं) शोभा को प्राप्त होता है (लोहीणं) लोभी पुरुषों का (जदि) जो (दाणं) दान है वह (विमाण सवं) अर्थी के शव की (सो हावा) शोभा के समान है (जाणे) ऐसा जानो।

भावार्थ - सत्पुरुषों [सम्यग्दृष्टि] का दान कल्पवृक्ष के फलों की शोभा के समान है और लोभी पुरुषों का जो दान है, वह अर्थी के शव की शोभा के समान है, ऐसा जानो।

लोभी का दान

जसकित्तिपुण्णलाहे, देदि सुबहुगंपि जत्थ तत्थेव।
सम्मादि सुगुण भायण, पत्तविसेसं ण जाणंति॥ 27॥

पुण्य लाभ यश कीर्ति हेतु जो, लोभी देता है बहु दान ।
उत्तम गुण सम्यक्त्व आदि युत, ना सुपात्र को जाने मान ॥27॥

अन्वयार्थ- लोभी पुरुष (जस) यश (कित्ति) कीर्ति (और)(पुण्णलाहे) पुण्य लाभ के लिए (जत्थ तत्थेव) यत्र तत्र कुपात्र अपात्र आदि अयोग्य को (सुबहुगंपि) अनेक प्रकार भी (देइ) दान देता है वह (सम्मइ सुगुण भायण) सम्यक्त्वादि उत्तम गुणों के आधार (पत्तविसेसं) सुपात्र को (ण) नहीं (जाणंति) जानता ।

भावार्थ - लोभी पुरुष यश, कीर्ति और पुण्य लाभ के लिए यत्र तत्र (कुपात्र आदि को) बहुत दान देता है, यह सम्यक्त्वादि उत्तम गुणों के आधार सुपात्र को नहीं जानता।

ऐहिक कामना से दिया दान निरर्थक है

जंतं मंतं तंतं, परिचरियं पक्खवाय पियवयणं।
पडुच्च पंचमयाले, भरहे दाणं ण किं पि मोक्खस्स॥ 28॥
भरत क्षेत्र पंचम युग में जो ,सेवा यंत्र मंत्र संयुक्त ।
पक्षपात प्रिय वचन प्रतीति, हेतु दान से ना हो युक्त ॥28॥

अन्वयार्थ- (भरहे) भरत क्षेत्र में (पंचमयाले) पंचमकाल में (जंतं) यंत्र (मंतं) मंत्र (तंतं) तंत्र (परिचरियं) सेवा परिचर्या (पक्खवायं) पक्षपात (पियवयणं) प्रियवचन (पडुच्च) प्रतीति के लिये दिया हुआ (किं पि) कोई भी (दाणं) दान (मोक्खस्स) मोक्ष का (कारण) (ण) नहीं है।

भावार्थ - इस पंचम काल में भरत क्षेत्र में यंत्र-तंत्र-मंत्र [की प्राप्ति के लिये], सेवा [परिचर्या के लिये], पक्षपात से, प्रियवचन, और प्रतीति [मान-प्रतिष्ठा] के लिये दिया हुआ कोई भी दान मोक्ष का कारण नहीं है।

पूर्वोपार्जित कर्म का फल

दाणीणं दारिद्दं, लोहीणं किं हवेइ महइसरियं।
उहयाणं पुव्वज्जिय, कम्मफलं जाव होइ थिरं॥ 29॥
दानी के होवे दरिद्रता, लोभी के ऐश्वर्य महान ।
पूर्वोपार्जित कर्म के फल से , होय भिन्नता यह पहचान ॥29॥

अन्वयार्थ- (दाणीणं) दानी पुरुषों के (दालिद्धं) दरिद्रता (लोहीणं) लोभी पुरुषों के (महाइसरियं) महान ऐश्वर्य (किं) क्यों (हवेइ) होता है (जाव) जब तक (उहयाणं) दोनों के (पुवज्जिय) पूर्वोपार्जित (कम्मफलं) कर्मफल (थिरा) स्थिर उदय में (होइ) रहता है।

भावार्थ - दानी पुरुषों के दरिद्रता और लोभी पुरुषों के महान ऐश्वर्य क्यों होता है ?[देखा जाता है], जब तक दोनों का पूर्वोपार्जित कर्मफल स्थिर [उदय में] रहता है तब तक ऐसा होता है।

मुनि दान से सुख होता है

धणधण्णादि समिद्धे, सुहं जहा होइ सव्वजीवाणं।
मुणिदाणाइ समिद्धे, सुहं तहा तं विणा दुक्खं॥ 30॥

धन धान्यादिक समृद्धी पावें, जीवों को सुख होय प्रधान।
त्यों मुनि दान आदि समृद्धी , से सुख इस बिन दुःख निधान ॥30॥

अन्वयार्थ- (जहा) जैसे (धणधण्णाइ) धन-धान्यादि की (समिद्धे) समृद्धि से (सव्वजीवाणं) समस्त जीवों को (सुहं) सुख (होइ) होता है (तहा) उसी प्रकार (मुणिदाणाइ) मुनिदान आदि की (समिद्धे) समृद्धि से (सुहं) सुख (होता है तथा) (तं) उसके (विणा) बिना (दुक्खं) दुःख होता है।

भावार्थ - जैसे धन धान्यादि की समृद्धि से समस्त जीवों को सुख होता है, उसी प्रकार मुनि-दान आदि की समृद्धि से सुख होता है और उसके बिना दुःख होता है।

सुपात्र के बिना दान निष्फल

पत्त विणा दाणं च, सुपुत्त विणा बहुधणं महाखेत्तं।
चित्त विणा (बहु) वय गुण, चारित्तं णिक्कारणं जाणे॥ 31॥

महा क्षेत्र धन बिन सुपुत्र के, बिन सुपात्र के करना दान ।
भावों बिन गुण चारित्रादिक, व्रत आदिक निष्फल पहचान ॥31॥

अन्वयार्थ- (पत्त विणा) सुपात्र के बिना (दाणं) दान (च) और (सुपुत्त विणा) सुपुत्र के बिना (बहु धणं) बहुत सा धन (महाखेत्तं) महाक्षेत्र जमीन जायदाद (चित्त विणा) भावों के बिना (बहु वय) व्रत (गुण) गुण (चारित्तं) चारित्र (णिक्कारणं) निष्प्रयोजन (जाणे) जानो।

भावार्थ - सुपात्र के बिना दान, सुशील पुत्र के बिना बहुत धन और महाक्षेत्र [जमीन-जायदाद], भावों के बिना, व्रत, गुण और चारित्र निष्फल जानो।

धर्म-द्रव्य के भाग का दुष्परिणाम

जिण्णुद्धार पदिट्ठा, जिणपूया तित्थवंदण वसेस धणं।
जो भुंजइ सो भुंजइ, जिणदिट्ठं णरयगइ दुक्खं॥ 32॥

जीर्णोद्धार प्रतिष्ठा पूजा, तीर्थयात्रा का धन अवशिष्ट ।
भोगे तो दुखः नरक गति का, पाए कहे जिनराज विशिष्ट ॥32॥

अन्वयार्थ- (जो) जो (जिण्णुद्धार) जीर्णोद्धार (पदिट्ठा) प्रतिष्ठा (जिणपूजा) जिनपूजा (तित्थवंदण) तीर्थ यात्रा (विसयं) संबंधी प्राप्त धन को (भुंजइ) भोगता है (सो) वह (णरयगइदुक्खं) नरक गति के दुख को (भुंजइ) भोगता है (जिणदिट्ठं) ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है।

भावार्थ - जो व्यक्ति जीर्णोद्धार, प्रतिष्ठा, जिनपूजा और तीर्थयात्रा के अवशिष्ट धन को भोगता है, वह नरक गति के दुःख को भोगता है, ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है।

पूजा-दानादि के द्रव्य का सेवन कुफल

पुत्तकलत्त विदूरो, दारिद्वो पंगु मूक बहिरंधो।
चाण्डालादि कुजादो, पूजादाणादि दव्वहरो॥ 33॥

पूजा दान आदि के द्रव्य का ,हरने वाला बहरा अंध ।
लगड़ा गूंगा बहरा कुजाति, स्त्री पुत्र हीन धी मंद ॥33॥

अन्वयार्थ- (पूजादाणाइ) पूजा दान आदि के (दव्वहरो) द्रव्य को अपहरण करने वाला (पुत्तकलत्तविदूरो) पुत्र स्त्री रहित (दारिद्धो) दरिद्री (पंगु मूकबहिरंधो) लंगड़ा, गूंगा, बहरा, अंधा और (चाण्डालाइकुजादो) चाण्डाल आदि कुजाति में उत्पन्न होता है।

अर्थ - पूजा, दान, आदि के द्रव्य का अपहरण करने वाला पुत्र-स्त्री से रहित, दरिद्री, लंगड़ा, गूंगा, बहरा, अंधा और चाण्डाल आदि कुजाति में उत्पन्न होता है।

धार्मिक द्रव्य के भोग का दुष्परिणाम

इच्छिद फलं ण लब्भदि, जदि लब्भदि सो ण भुंजदे णियदं।
वाहीणमायरो सो, पूयादाणाइ दव्वहरो॥ 34॥

पूजा दानादिक द्रव्य हर्त्ता , इच्छित फल ना करता प्राप्त ।
भोग नहीं पाता वह द्रव्य को, व्याधि निश्चित हो सम्प्राप्त ॥34॥

अन्वयार्थ- (पूजादाणाइ) पूजादान आदि के (दव्वहरो) द्रव्य का अपहरण करने वाला (इच्छीयफलं) इच्छित फल को (ण) नहीं (लब्भय) प्राप्त करता है (जइ) यदि (लब्भसु) प्राप्त करता है तो (सो) वह (णभुंजदे) भोग नहीं पाता है (णियदं) यह निश्चित है (सो) वह (वाहीणमायरो) व्याधियों की खान होता है।

भावार्थ - पूजा, दान, आदि के द्रव्य का अपहरण करने वाला इच्छित फल को प्राप्त नहीं करता है। यदि प्राप्त करता है तो वह उसे भोग नहीं पाता, यह निश्चित है, वह व्याधियों का घर बन जाता है।

धार्मिक द्रव्य के भोग का दुष्परिणाम

गदहत्थ पायणासिय, कण्णउरंगुल विहीणदिट्ठीए।
जा तिव्व दुक्खमूलो, पूजादाणाइ दव्वहरो॥ 35॥

पूजा दान आदि द्रव्य हर्त्ता , नाक कान कर पैर विहीन ।
छाती अंगुली दृष्टि हीन हो , तीव्र दुखी होता है दीन ॥35॥

अन्वयार्थ- (जो) जो (पूजादाणाइ दव्वहरो) पूजा, दान आदि के द्रव्य का अपहरण करने वाला है वह (गय) रहित (हत्थ) हाथ (पाद) पांव (णासिय) नासिका (कणउरंगुल) कान, अँगुलि (विहीणदिट्ठीए) दृष्टि रहित अर्थात् अंधा और (तिव्वदुक्खमूलो) तीव्र दुःख को प्राप्त होता है।

भावार्थ - जो पूजा, दान आदि के द्रव्य का अपहरण करने वाला है, वह हाथ-पैर-कान-नाक-छाती

और अंगुली से हीन [विकलांग] दृष्टिहीन और तीव्र दुःख का भागी होता है।

धर्मकार्यों में विघ्न डालने का फल

खय कुट्ठ मूल सूला, लूय भयंदर जलोयरक्खिसिरो।
सीदुण्हवाहिरादी, पूया दाणंतराय कम्मफलं॥ 36॥
कुष्ट मूल क्षय लता शूल सिर, नेत्र जलोदर के सब रोग ।
शीत भगंदर सन्निपात कई, दान में बाधा का है योग ॥36॥

अन्वयार्थ- (खय) क्षय रोग (कुट्ठ) कुष्ट रोग (मूल) मूल व्याधि (सूला) शूल (लूय) लूता (एक वातिक रोग अथवा मकड़ी का फेरना) (भयंदर) भगंदर (जलोदर) जलोदर (खिसिरो) नेत्र रोग और शिर का रोग (सीदुण्ह वाहिराइ) शीत और उष्ण व्याधि आदि (सन्निपात आदि) ये सब (पूजा) पूजा (दाणंतराय कम्मफलं) दानादि में अंतराय डालने के कर्म फल हैं।

भावार्थ - क्षय, कुष्ठ, मूल, शूल, लता [एक वातिक रोग अथवा मकड़ी का फेरना], भगंदर, जलोदर, नेत्ररोग, सिर के रोग, शीतोष्ण से होने वाला सन्निपात आदि व्याधियाँ ये सब पूजा, दान आदि में अंतराय डालने के कर्मफल हैं।

धर्मकार्यों में विघ्न डालने का और भी फल

णरय तिरियाइ दुग्गदि, दरिद्द वियलंगहाणि दुक्खाणि।
देव गुरुसत्थवन्दण, सुदभेदसज्झाय विघणफलं॥ 37॥
नरक पशु दुर्गति दरिद्रता, विकल अंग हानी दुख कार ।
देव गुरु वन्दन स्वाध्याय में , विघ्न से होते बारम्बार ॥37॥

अन्वयार्थ- (णरय) नरक गति (तिरियाइ) तिर्यञ्चगति (ग्गदि) दुर्गति (दरिद्द) दरिद्रता (वियलंग) विकलांग (हाणि) द्रव्य हानि (दुक्खाणि) दुख ये सब (देव वन्दण) देव वन्दना (गुरू वन्दण) गुरू वंदना (सत्थ वन्दण) शास्त्र वंदना (सुयभेय) श्रुतभेद (सज्झाय) स्वाध्याय में (विघन फलं) विघ्न डालने का फल है।

भावार्थ - नरक गति, तिर्यंच गति, दुर्गति, दरिद्रता, विकलांग, हानि और दुःख यह सब देव-वंदना, गुरू-वंदना, शास्त्र-वंदना, श्रुतभेद और स्वाध्याय में विघ्न डालने के फल हैं।

पंचमकाल का दुष्प्रभाव

सम्मविसोही तव गुण, चरित्त सण्णाण दाण परिहीणं।।
भरहे दुस्समयाले, मणुयाणं जायदे णियदं॥ 38॥
भरत क्षेत्र के दुखम काल में ,नर सम्यक दर्शन तप ज्ञान।
सम्यक् चारित्र दान मूलगुण, में पाता है निश्चित हान ॥38॥

अन्वयार्थ- इस (भरहे) भरत क्षेत्र में (दुस्समकाले) पंचम काल में (मणुयाणं) मनुष्यों के (णियदं)

नियम से (सम्मविसोही) सम्यग्दर्शन की विशुद्धि (तव) तप (गुण) मूल गुण (चारित्त) चारित्र (सण्णाण) सम्यग्ज्ञान और (दाण) सम्यग्दान (परिधाणं) धारक (मोक्षमार्गी मुनीश्वर व गृहस्थ) (जायदे) होते हैं।

भावार्थ - [इस] भरत क्षेत्र में दुखम काल पंचमकाल में मनुष्यों के निश्चय ही सम्यग्दर्शन की विशुद्धि, तप, मूलगुण, सम्यक् चारित्र, सम्यग्ज्ञान और दान में हीनता होती है [पायी जाती है]।

धर्माचरण के बिना दुर्गति

णहि दाणं णहि पूया, णहि सीलं णहि गुणं ण चारित्तं।
जे जइणा भणिया ते, णेरइया होंति कुमाणुसा तिरिया॥ 39॥

पूजा दान शील गुण विरहित , चारित्र हीन कुमानुष जान ।
पशू नारकी होते हैं वे, ऐसा कहते जिन भगवान ॥39॥

अन्वयार्थ- (जे) जो (णहि) न तो (दाणं) दान देते हैं (णहि) न (पूया) पूजा करते हैं (णहि) न ही (सीलं) शील पालते हैं (णहि) न ही (गुणं) मूलगुण धारण करते हैं (ण चारित्तं) न चारित्र पालते हैं (ते) वे (णरया) नारकी (कुमाणुसा) कुमानुष और (तिरिया) तिर्यंच (होंति) होते हैं। ऐसा (जइणा) तीर्थंकरों ने (भणिया) कहा है।

भावार्थ - जो मनुष्य न तो दान देते हैं, न ही पूजा करते हैं, न ही शील पालते हैं, न ही गुण धारण करते हैं, और न चारित्र पालते हैं, वे नारकी, कुमानुष और तिर्यंच होते हैं -ऐसा जिनदेव ने कहा है।

विवेक के बिना सम्यक्त्व नहीं होता

ण वि जाणइ कज्ज मकज्जं सेयमसेयं पुण्णपावं हि।
तच्चमतच्चं धम्म-मधम्मं सो सम्मउम्मुक्को॥ 40॥

कार्याकार्य हिताहित को जो, धर्माधर्म श्रेय अश्रेय ।
तत्वातत्व पुण्य पापादिक ,जाने ना श्रद्धान अश्रेय ॥40॥

अन्वयार्थ-(जो) (कज्जमकज्जं) कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य (सेयमसेयं) श्रेय-अश्रेय (पुण्णपावं) पुण्य और पाप (तच्चमतच्चं) तत्व और अतत्व (धम्ममधम्मं) धर्म और अधर्म (हि) निश्चय से (णवि) नहीं (जाणइ) जानता है (सो) वह (सम्मउम्मुक्को) सम्यक्त्व से रहित है।

भावार्थ - जो कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य, श्रेय-अश्रेय, हित-अहित, पुण्य-पाप, तत्त्व-अतत्त्व और धर्म-अधर्म को निश्चय से नहीं जानता है, वह सम्यक्त्व से रहित है।

अविवेकी को सम्यक्त्व नहीं होता

ण वि जाणइ जोग्गमजोग्गं णिच्चमणिच्चं हेयमुवादेयं।
सच्चमसच्चं भव्व-मभव्वं सो सम्मउम्मुक्को॥ 41॥

नित्यानित्य जो हेय उपादेय, सत्यासत्य अरु योग्यायोग्य।
भव्याभव्य को नहीं जानता ,वह सम्यक्त्व के नहीं है योग्य ॥41॥

अन्वयार्थ- (जो) (जोग्गमजोग्गं) योग्य- अयोग्य (णिच्चमणिच्चं) नित्य-अनित्य (हेयमुवादेयं) हेय उपादेय (सच्चमच्चं) सत्य-असत्य (भव्वमभव्वं) भव्य अभव्य (ण वि) नहीं (जाणइ) जानता है (सो) वह (सम्मउम्मुको) सम्यक्त्व से रहित है।

भावार्थ - जो योग्य-अयोग्य, नित्य-अनित्य, हेय-उपोदय, सत्य-असत्य, और भव्य-अभव्य को नहीं जानता है, वह सम्यक्त्व से रहित है।

लौकिकजनों की संगति त्याज्य है

लोइय जण संगादो, होइ मइ मुहरकुडिल दुब्भावो।
लोइय संगं तम्हा, जोइवि तिविहेण मुंचाहो॥ 42 ॥

लौकिक जन की संगति धारी, दुर्भावी हो कुटिल मुखर ।
लौकिक जन की संगति साधू , तीन योग से तजे सुगर ॥42॥

अन्वयार्थ- (लोइय जणसंगादो) लौकिक जनों की संगति से (मनुष्य) की (मइ) मति (बुद्धि) (मुहर) वाचाल (कुडिल) कुटिल (दुब्भावो) दुर्भावना युक्त (होइ) हो जाती है (तम्हा) इसलिए (जोइवि) देख-भाल कर (लोइय संगं) लौकिक जनों की संगति (तिविहेण) तीन प्रकार से मन, वचन, और काय से (मुंचाहो) छोड़ना चाहिए।

भावार्थ - मनुष्य लौकिक जनों या सामान्य जनों की संगति से अत्यंत वाचाल, कुटिल और दुर्भावना युक्त हो जाता है, इसलिये योगियों को देखभाल कर विचार पूर्वक लौकिक जनों की संगति को मन वचन काय से छोड़ देना चाहिये।

सम्यक्त्व रहित जीव की पहचान

उग्गो तिव्वो दुट्ठो, दुब्भावो दुस्सुदो दुरालावो।
दुम्मदरदो विरुद्धो, सो जीवो सम्मउम्मुक्को॥ 43॥

उग्र तीव्र दुःश्रुत दुर्भावी, दुष्ट प्रकृति मिथ्या मदवान।
दुराचार धर दुष्ट प्रलापी, सम्यक्त्वी ना हो इन्सान ॥43॥

अन्वयार्थ- जो (उग्गो) उग्र (तिव्वो) तीव्र (दुट्ठो) दुष्ट (दुब्भावो) दुर्भावना युक्त (दुस्सुदो) मिथ्या शास्त्रों का श्रवण करने वाला (दुरालावो) दुष्टभासी (दुमदरदो) मिथ्या अभिमान रत (विरुद्धो) आत्म धर्म के विरुद्ध है (सो जीवो) वह जीव (सम्मउम्मुक्को) सम्यक्त्व रहित है।

भावार्थ - जो उग्र प्रकृति वाला है, तीव्र स्वभाव वाला है, दुष्ट प्रकृति का है, दुर्भावी (दुःशील) है, मिथ्या शास्त्रों का श्रवण करने वाला है, दुष्टभाषी है, मिथ्यामद में अनुरक्त है और विरुद्ध या आत्मधर्म के विरुद्ध आचरण करने वाला है, वह जीव सम्यक्त्व रहित है।

दुष्ट-स्वभावी को सम्यक्त्व नहीं होता

खुद्धो रुद्धो रुट्ठो, अणिट्ठपिसुणो सगव्वियोसूयो।
गायण जायण भंडण, दुस्सण सीलो दु सम्मउम्मुको॥ 44॥

चुगल खोर ईर्ष्यालू गायक ,पर अनिष्ट कारी मद्वान ।
क्षौद्र रुष्ट असहिष्णु कलही,रौद्र कुशील को ना श्रद्धान ॥44॥

अन्वयार्थ- (खुद्धो) क्षुद्र प्रकृति वाले (रूद्धो) रुद्र प्रकृति वाले (रूट्ठो) रुष्ठ प्रकृति वाले (अणिट्ठपिसुणो) दूसरों का अनिष्ट चाहने वाला, चुगलखोर (सगव्वियो) गर्विष्ठ (सुइओ) ईर्ष्यालु (गायण) गायक (जायण) याचक (भंडण) लड़ाई झगड़े करने वाले (दुस्सण) दूसरों के दोषों को प्रकट करने वाले ये सब सम्यक्त्व से पराङ्मुख होते हैं।

भावार्थ - क्षुद्र-रौद्र स्वभाव वाले रुष्ट, दूसरों का अनिष्ट चाहने वाले या करने वाले, चुगलखोर, अभिमानी, असहिष्णु, ईर्ष्यालु, गायक, याचक, कलह करने वाले, गाली देने वाले और दूसरों को दोष लगाने वाले-ये सब सम्यक्त्व रहित होते हैं।

दुष्ट स्वभावी को सम्यक्त्व नहीं होता

वाणर गद्दह साण गय, बग्घ वराह कराह।
मक्खि जलूय सहाव णर, जिणवर धम्मविणासु॥ 45॥

गधा सुअर हाथी बन्दर या ,कच्छप जोंक बाघ स्वभाव।
मक्खी स्वभावी धर्म नशावें, श्री जिनेन्द्र का है ये भाव॥45॥

अन्वयार्थ- (वाणर) बंदर (गद्दह) गधा (साण) कुत्ता (गय) हाथी (वग्घ) बाघ (बराह) सुअर (कराह) कच्छप (मक्खि) मक्खी (जलूय) जौंक (सहावणर) स्वभाव वाले मनुष्य (जिणवर धम्म) जिनवर धर्म के (विणासु) विनाशक हैं।

भावार्थ - बंदर, गधा, कुत्ता, हाथी, बाघ, सुअर, कच्छप, मक्खी, और जोंक के स्वभाव वाले मनुष्य जिनेन्द्र देव के धर्म का विनाश करने वाले होते हैं।

सम्यग्दर्शन की उत्कृष्टा

सम्मविणा सण्णाणं सच्चारित्तं ण होइ णियमेण।
तो रयणत्तय मज्झे सम्मगुणुक्किट्ठमिदि जिणुदिट्ठं॥ 46॥

सम्य बिना सद्ज्ञान आचरण , नहीं नियम से हों ये जान ।
सम्यग्दर्शन का गुण सम्यक् ,दर्शन जिन ये कहे प्रधान॥46॥

अन्वयार्थ-(सम्म विणा) सम्यग्दर्शन के बिना (सण्णाण) सम्यग्ज्ञान और (सच्चारित्तं) सम्यक् चारित्र (णियमेण) नियम से (ण) नहीं (होइ) होते हैं (तो) इसलिए (रयणत्तय मज्झे) रत्नत्रय में (सम्मगुणुक्किट्ठं) सम्यग्दर्शन गुण उत्कृष्ट है (इदि) इस प्रकार (जिणुदिट्ठं) जिनेन्द्र देव ने कहा है।

भावार्थ - सम्यग्दर्शन के बिना सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र नियम से नहीं होते हैं, इसलिये रत्नत्रय में सम्यग्दर्शन गुण उत्कृष्ट है, यह जिनेन्द्र देव ने कहा है।

सम्यक्त्व हानि के कारण

कुतव कुलिंगि कुणाणी, कुवय कुसीले कुदंसण कुसत्थे।
कुणिमित्ते संथुय थुइ, पसंसणं सम्महाणि होदि णियमं ॥47॥
कुतप कुलिंगी मिथ्याज्ञानी , कुव्रत कुशीली कुदर्शन वान ।
कुनिमित्त कुश्रुत संस्तव धर, से सम्यक्त्व की होवे हान ॥47॥

अन्वयार्थ- (कुतव) मिथ्यातप (कुलिंग) मिथ्यावेश धारण करने वाले (कुणाणी) मिथ्याज्ञानी (कुवय) मिथ्याव्रत (कुसील) मिथ्याशील (कुदंसण) मिथ्यादर्शन (कुसत्थो) मिथ्या शास्त्र (कुणिमित्ते) झूठे निमित्तों की (संथुय) संस्तुति (थुइ) स्तुति और (पसंसण) प्रशंसा करने से (णियमं) नियम से (सम्महाणि) सम्यक्त्व की हानि (होइ) होती है।

भावार्थ - मिथ्यातप, कुलिंगी, मिथ्यादृष्टि साधु, मिथ्याज्ञानी, मिथ्याव्रत, मिथ्यादर्शन, मिथ्याशास्त्र और झूठे निमित्तों की संस्तुति, स्तुति और प्रशंसा करने से नियम से सम्यक्त्व की हानि होती है।

मिथ्यात्व ही दुखों का कारण है

तणुकुट्ठी कुलभंगं, कुणइ जहा मिच्छमप्पणो वि तहा।
दाणाइ सुगुण भंगं, गइभंगं मिच्छमेव हो कट्ठं॥ 48॥
ज्यों कोढ़ी जिन कुल का घाती, त्यों मिथ्यात्वी सद्गुण घात।
सद्गति नाशी रहा लोक में, कहा कष्ट प्रद यह मिथ्यात्व ॥48॥

अन्वयार्थ- (जहा) जिस प्रकार (तणुकुट्ठी) शरीर से कोढ़ी व्यक्ति (कुलभंगं) अपने कुल का विनाश (कुणइ) कर देता है (तहा) उसी प्रकार (मिच्छम् वि) मिथ्यात्व भी (अप्पणो) अपने (दाणाइ) दान आदि (सुगुणभंगं) सद्गुणों का विनाश (और) (गइभंगं) सद्गति का विनाश करता है (हो) अहो (मिच्छमेव) मिथ्यात्व ही (कट्ठं) कष्टप्रद है।

भावार्थ - जैसे शरीर का कोढ़ी (अपने रक्त संबंध से) अपने कुल का विनाश कर देता है, उसी प्रकार मिथ्यात्व भी अपनी आत्मा के दान आदि सद्गुणों और सद्गति का विनाश कर देता है। अहो ! संसार में मिथ्यात्व ही कष्टप्रद है।

सम्यग्दृष्टि ही धर्म को जानता है

देवगुरु धम्मगुण, चारित्त तवायार मोक्ख गदि भेयं।
जिणवयण सुदिट्ठविणा, दीसइ किं जाणए सम्मं॥ 49॥
धर्म देव गुरु तपाचार गुण , मोक्ष सुगति चारित जिनदेव ।
की वाणी बिन सद्दृष्टी के ,देय जान क्या सके सदैव ॥49॥

अन्वयार्थ- (देव) जिनेन्द्र देव (गुरू) निर्ग्रन्थ गुरू (धम्म) धर्म (गुण) गुण (चारित्तं) चारित्र (तवायार) तपाचार (मोक्खगइभेयं) मोक्ष गति का रहस्य (जिणवयण) जिनदेव के वचन (सुदिट्ठिविणा) सम्यग्दृष्टि के बिना (किह) क्या (दीसइ) दीखते हैं (या) (जाणए) जाने जा सकते हैं (सम्मं) सम्यग्दर्शन ही इन सबको देखता और जानता है।

भावार्थ - देव, गुरु, धर्म, गुण, चारित्र, तपाचार, मोक्षगति, का रहस्य और जिनदेव के वचन सम्यग्दृष्टि के बिना क्या देखे या जाने जा सकते हैं? सम्यग्दर्शन ही इन सबको देखता और जानता है।

मिथ्यादृष्टि की प्रवृत्ति

एक्क खणं ण वि चिंतइ, मोक्ख णिमित्तं णियप्प सहावं।
अणिसि विचिंतदि पावं, बहुलालावं मणे विचिंतेइ ॥ 50 ॥

मिथ्यात्वी मुक्ती के हेतू, आत्म भाव चिन्तन परिहार ।
अहो रात्रि पापों का चिन्तनकारी पर का करे विचार ॥50॥

अन्वयार्थ- (मिथ्यादृष्टि) (मोक्खणिमित्तं) मोक्ष प्राप्ति में निमित्त भूत (णियप्पसहावं) अपने आत्म स्वभाव का (एक्कु खणं वि) एक क्षण भी(चिंतइ) चिंतन (ण) नहीं करता है तथा (अणिसं) रात दिन (विचित्त) विचित्र (पावं) पाप का (विचिंतेइ) चिन्तन करता है (मणे) मन से (बहुलालावं) पर वस्तु की निरन्तर अभिलाषा करता है।

भावार्थ - मिथ्यादृष्टि जीव मोक्ष प्राप्ति के निमित्तभूत अपने आत्म स्वभाव का चिन्तवन एक क्षण भी नहीं करता। दिन-रात पाप का चिन्तन करता है और मन में दूसरों के बारे में अनेक बातें सोचता रहता है।

मिथ्यादृष्टि आत्मा को नहीं जानता

मिच्छामदि मद मोहासव मत्तो बोल्लदे जहा भुल्लो।
तेण ण जाणदि अप्पा, अप्पाणं सम्म भावाणं॥ 51॥

मिथ्यात्वी मद् मोह मद्य से, होय भुलक्कड़ करे प्रमाद ।
आतम एवं आत्मभाव को, नहीं जानता प्राणी आप ॥51।

अन्वयार्थ- (मिच्छामइ) मिथ्यादृष्टि (मयमोहासवमत्तो) मद और मोह रूपी मदिरा से मतवाला होकर (जहा भुल्लो) भुलक्कड़ के समान (बोलए) व्यर्थ बोलता है (तेण) इसलिए वह (अप्पा) अपनी आत्मा को और (अप्पाणं) आत्मा के (सम्म) साम्य (भावणं) भाव को (ण) नहीं (जाणइ) जानता है।

भावार्थ - मिथ्यादृष्टि जीव मद और मोह की मदिरा से मतवाला होकर भुलक्कड़ के समान प्रलाप करता है, इसलिये वह आत्मा को और आत्मा के साम्यभावों को नहीं जानता है।

उपशमभाव से संवर और निर्जरा होती है

पुव्वट्ठिद खवदि कम्म, पविसदु णो देइ अहिणवं कम्मं।
इहपरलोय महप्पं, देदि तहा उवसमो भावो॥ 52॥

उपशम भाव पूर्ण कर्मों का ,क्षय कर नये कर्मों का रोध ।
उभय लोक माहात्म्य प्रकट कर ,देता है प्राणी को बोध ॥52॥

अन्वयार्थ- (उवसमो) उपशम (भावो) भाव (पुव्वट्ठियं) पूर्वस्थित (कम्मं) कर्म का (खवइ) क्षय करता है (तथा) (अहिणयं) नवीन (कम्मं) कर्मों को (पविसदु) प्रविष्ट होने (णो) नहीं (देइ) देता है। (तहा) तथा (इह) इस लोक में (परलोय) परलोक में (महप्पं) माहात्म्य (देय) देता है (प्रकट करता है।)

भावार्थ - भव्य जीवों का उपशम भाव पूर्वबद्ध कर्मों का क्षय करता है, नये कर्मों को प्रवेश नहीं करने देता [नये कर्मों का संवर करता है] तथा इस लोक और परलोक में माहात्म्य प्रकट करता है।

सम्यग्दृष्टि ज्ञान-वैराग्य में काल बिताता है

सम्माइट्ठी कालं, बोल्लदि वेरग्ग णाण भावेण।
मिच्छाइट्ठी वांछा, दुब्भावालस्स कलहेहिं॥ 53॥

सम्यक्त्वी वैराग्य ज्ञान में ,समय बिताये यह है रीत ।
मिथ्यात्वीदुर्भावकांक्षा , आलस कलह में करे व्यतीत ॥53॥

अन्वयार्थ- (सम्माइट्ठी) सम्यग्दृष्टि (वेरग्ग) वैराग्य (और) (णाणभावेण) ज्ञान भाव से (कालं) समय (बोलइ) बिताता है और (मिच्छाइट्ठी) मिथ्यादृष्टि (वांछा) आकांछा (दुब्भाव) दुर्भावना (आलस्स) आलस्य और (कलहेहिं) कलह में अपना समय व्यतीत करता है।

भावार्थ - सम्यक्दृष्टि वैराग्य और ज्ञानभाव से समय को व्यतीत करता है, जबकि मिथ्यादृष्टि आकांक्षा, दुर्भाव, आलस्य और कलह से अपना समय बिताता है।

भरतक्षेत्र में पापी अधिक हैं

अज्जवसप्पिणी भरहे, पउरा रुद्दट्ठ झाणया दिट्ठा।
णट्ठा दुट्ठा कट्ठा, पापिट्ठा किण्ण णील काओदा॥54॥

भरत क्षेत्र अवसर्पिणी काल में , नष्ट दुष्ट पापी दुखवान ।
लेश्या अशुभ ध्यान के धारी, मानव अधिक होंय यह मान ॥54॥

अन्वयार्थ- (अज्जवसप्पिण्णी) आज/वर्तमान काल अवसर्पिणी काल में (भरहे) भरत (क्षेत्र) में (पउरा) अधिक मात्रा में (रुद्दट्ठ झाणया) रौद्र और आर्त्तध्यानी तथा (णट्ठा) नष्ट (दुट्ठा) दुष्ट (कट्ठा) कष्ट (पापिट्ठा) पापी (किण्ह) कृष्ण (णील) नील (काउदा) कापोत (लेश्या वाले) (विट्ठा) देखे जाते हैं।

भावार्थ - वर्तमान अवसर्पिणी काल में भरतक्षेत्र में रौद्र और आर्त्तध्यान वाले, नष्ट, दुष्ट, दुखी, पापी और कृष्ण-नील-कापोत लेश्या वाले मनुष्य अधिक देखे जाते हैं।

भरत क्षेत्र में सम्यग्दृष्टि दुर्लभ हैं

अज्जव सप्पिणी भरहे, पंचमयाले मिच्छपुव्वया सुलहा।
सम्मत्त पुव्व सायारणयारा दुल्लहा होंति॥ 55॥

अवसर्पिणी के भरत क्षेत्र में, पंचम काल में मिथ्यावान ।
सुलभ किन्तु सम्यक्त्वीश्रावक, मुनि दुर्लभ तम रहे महान ॥55॥

अन्वयार्थ- (अज्जवसप्पिणी)आज वर्तमान अवसर्पिणी (काल में) (भरहे) भरत क्षेत्र में (पंचमयाले) पंचमकाल में (मिच्छपुव्वया) मिथ्या दृष्टि जीव (सुलहा) सुलभ हैं (किन्तु) (सम्मत्तपुव्व) सम्यग्दृष्टि (सायारणयारा) श्रावक (और) मुनि (दुल्लहा) दुर्लभ (होंति) होते हैं।

भावार्थ - वर्तमान अवसर्पिणी काल में भरत क्षेत्र में पंचमकाल में मिथ्यादृष्टि जीव सुलभ हैं, किन्तु सम्यग्दृष्टि गृहस्थ और मुनि अत्यन्त दुर्लभ हैं।

इस काल में भी धर्मध्यान होता है

अज्जवसप्पिणी भरहे, धम्मज्झाणं पमाद रहिदोत्ति।
होदित्ति जिणुदिट्ठं, णहु मण्णइ सोहु कुदिट्ठी॥ 56॥

भरत क्षेत्र अवसर्पिणी में, प्रमाद रहित हो धर्म ध्यान ।
ऐसा ना माने मिथ्यात्वी , जीव है वह कहते भगवान ॥56॥

अन्वयार्थ- (अज्जवसप्पिणी) आज/वर्तमान में अवसर्पिणी काल में (भरहे) भरत क्षेत्र में (धम्मज्झाणं) धर्म ध्यान (पमादरहिदोत्ति) प्रमाद रहित (होता है)ऐसा (णहु) नहीं (मण्णय) मानता है (सोहु) वह भी (कुदिट्ठी) मिथ्यादृष्टि (होदित्ति) होता है। ऐसा (जिणदिट्ठं) जिनेन्द्र देव ने कहा (है)

भावार्थ - वर्तमान अवसर्पिणी काल में भरत क्षेत्र में प्रमाद रहित धर्मध्यान होता है, यह जिनेंद्र देव ने कहा है। जो ऐसा नहीं मानता है, वह निश्चय से मिथ्यादृष्टि है।

अशुभ और शुभ भावों का फल

असुहादो णिरयाउ, सुहभावादो दु सग्ग सुहमाओ।
दुहसुह भावं जाणदु, जं ते रुच्चेइ तं कुज्जा॥57॥

अशुभ भाव से नरकायु हो , शुभ से स्वर्ग आयु सुख जान ।
सुख दुख भावों की जानो फिर, रुचे आपको करें प्रणाम ॥57॥

अन्वयार्थ- (असुहादो) अशुद्ध भावों से (णिरयाऊ) नरक आयु (सुहभावादो) शुभ भावों से (दु) तो (सग्गसुहमाओ) स्वर्ग सुख मिलता है (दुहसुहभावं) दुख सुख भावों को (जाणइ) जानकर (जं) जो (ते) तुमको (रुच्चेइ)रुचे (तं) उसे (कुणहो) करो।

भावार्थ - अशुभ भावों से नरकायु और शुभ भावों से स्वर्ग सुख और स्वर्गायु मिलती है, अतः दुख सुख भावों को जानो और तुम्हें जो अच्छा लगे, उसे करो।

अशुभ भाव के लक्षण

हिंसादिसु कोहादिसु, मिच्छा णाणेसु पक्खवाएसु।
मच्छरिदेसु मदेसु, दुरिहिणिवेसेसु असुहलेस्सेसु॥ 58॥
विकहादिसु रुद्दट्ठज्झाणेसु असुयगेसु दंडेसु।
सल्लेसु गारवेसु य जो वट्टदि असुह भावो सो॥ 59॥

हिंसादिक हैं पाप कषाएँ , क्रोधादिक ईष्या अज्ञान।
पक्षपात मात्सर्य कुलेश्या , दुरभिनिवेश असंयम वान॥58॥
मान बड़ाई विकथाएँ हों, आर्त्त रौद्र ध्यानी मदवान।
इस प्रकार वर्तन जो करते ,अशुभ भाव यह रहे महान ॥59॥

अन्वयार्थ- (हिंसाइसु) हिंसादि में, (कोहाइसु) क्रोधादि में, (मिच्छाणाणेसु) मिथ्याज्ञान में (पक्खवायेसु) पक्षपात में (मच्छरिएसु) मात्सर्य भाव में (मएसु) मदों में, (दुरिहिणिवेसेसु) दुरभिनिवेश में (असुहलेलेसु) अशुभ लेश्याओं में (विकहाइसु) विकथादि में (रुद्दट्ठज्झाणेसु) रौद्र आर्त्तध्यानों में (असुयगेसु) ईर्ष्या डाह में (दंडेसु) असंयमों में (सल्लेसु) शल्यों में (गारवेसु) मान बड़ाई में (खाइसु) ख्याति में (जो) जो (वट्टइए) रहता है वर्तता है (वह) (असुहभावो) अशुभ भाव हैं।

भावार्थ - हिंसादि पापों, क्रोधादि कषायों,मिथ्याज्ञान,पक्षपात, मात्सर्य, मदों, दुरभि निवेशों, अशुभ लेश्याओं, विकथाओं, आर्त्त-रौद्र ध्यानों, ईर्ष्या, असंयमों, शल्यों, और मान बड़ाई में जो वर्तन होता है, वह अशुभ भाव है।

शुभभाव का लक्षण

दव्वत्थिकाय छप्पण, तच्च पयत्थेसु सत्त णवगेसु।
बंधणमोक्खे तक्कारणरूवे वारसणुवेक्खे॥ 60॥
रयणत्तयस्स रूवे, अज्जाकम्मे दयाइसद्धम्मे।
इच्चेवमाइगे जो, वट्टदि सो होइ सुहभावो॥ 61॥

सप्त तत्व छह द्रव्य अस्तिकाय , पाँच पदार्थ बंध व मोक्ष ।
मोक्ष के कारण अनुप्रेक्षाएँ ,दया आदि सद् ज्ञान परोक्ष ॥60॥
रत्नत्रय स्वरूप आर्य कर्म , दया में वर्तन होय महान ।
कहलाए शुभ भाव विशद यह, कहते हैं श्री जिन भगवान॥61॥

अन्वयार्थ- (जो) जो (छप्पण) छह और पाँच (दव्वत्थिकाय) द्रव्य और अस्तिकाय (सत्तणबएसु) सात और नौ (तच्चपयत्थेसु) तत्व और पदार्थों में (बंधण- मोक्खे) बन्ध और मोक्ष में (तक्कारणरूवे)

उन दोनों के कारणों में (वारसणुवेक्खे) बारह अनुप्रेक्षाओं में (रयणत्तयस्यरूवे) रत्नत्रय स्वरूप में (अज्जाकम्मे) आर्य कर्म में (दयाइसद्धम्मे) दया आदि सद्धर्म में (इच्चेवमाइगो) इत्यादिकों में (वट्टइ) वर्तन करता है (सो) वह (सुहभावो) शुभभाव (होइ) होता है।

भावार्थ - छह द्रव्य, पाँच अस्तिकाय, सात तत्व, नौ पदार्थ, बंध और मोक्ष, उसके मोक्ष के कारण रूप बारह अनुप्रेक्षा, रत्नत्रय, स्वरूप, आर्यकर्म, दया आदि सद्धर्म इत्यादि में जो वर्तन होता है, वह शुभभाव होता है।

सम्यक्त्व से सुगति होती है

सम्मत्तगुणाइ सुगदि, मिच्छादो होइ दुग्गदी णियमा।
इदि जाण किमिह बहुणा, जं रुच्चदि तं कुज्जाहो॥ 62॥

सम्यक गुण से सुगति होय अरु, मिथ्या से दुर्गति हो जान ।
अधिक कहें क्या श्रेष्ठ लगे जो, करो वही जो होय प्रमाण॥62॥

अन्वयार्थ- (सम्मत्तगुणाइ) सम्यक्त्व गुण से (सुग्गइ) सद्गति और (मिच्छादो) मिथ्यात्व से (णियमा) नियम से (दुग्गइ) दुर्गति (होइ) होती है (इति) ऐसा (जाण) जानकर (इह) यहाँ (बहुणा) बहुत कहने से (किं) क्या लाभ (जं) जो (ते) तुझे (रुच्चइ) अच्छा लगता है (तं) वह (कुणहो) कर।

भावार्थ - सम्यक्त्व गुण से नियम से सुगति और मिथ्यात्व से दुर्गति होती है - यह जान। यहाँ अधिक कहने से क्या लाभ है ? जो तुझे अच्छा लगे, वह कर।

मोह नष्ट किये बिना संसार से पार नहीं होता

मोह ण छिज्जदि अप्पा, दारुण कम्मं करेदि बहुबारं।
ण हु पावदि भवतीरं, किं बहु दुक्खं वहेदि मूढमदी॥ 63॥

मोह नष्ट ना करे आत्मा, दारुण कर्म करे कई बार ।
भव सिन्धू का पार ना पाए, मूढ़ दुःख कई पाए अपार ॥63॥

अन्वयार्थ- यह (अप्पा) आत्मा (मोह) मोह का (ण) नहीं (छिज्जइ) क्षय करता है किन्तु (दारुण कम्मं) दारुण कर्मों को (बहुबारं) बहुत बार (करेइ) करता है इसलिए प्राणी (भवतीरं) संसार का किनारा (णहु) नहीं (पावइ) पाता है और (मूढ़मई) मूढ़मति (किं) कैसे (बहुदुक्खं) अनेक दुख (वहेइ) भोगता है।

भावार्थ - यह आत्मा मोह को नष्ट नहीं करता है और कठोर कर्म व्रत उपवासादि अनेक बार करता है। निश्चय ही यह संसार समुद्र का किनारा नहीं पाता, फिर यह मूर्ख अनेक दुख क्यों उठाता है ?

Aakruti

बहिरात्मा के व्रताचरणादि निष्फल हैं

धरियउ बाहिरलिंगं, परिहरियउ बाहिरक्खसोक्खं हि।
करियउ किरिया कम्मं, मरियउ जम्मियउ बहिरप्प जीवो ॥ 64 ॥

बाह्य लिंग बहिरातम धारे, इन्द्रिय सुख को भी कर त्याग ।
जन्म मरण करता रहता है, क्रिया काण्ड में धर अनुराग ॥64॥

अन्वयार्थ- (बहिरप्पजिउ) बहिरात्मा जीव (बाहिरलिंगं) बाह्य भेष को (धरियउ) धारण कर (बाहिरक्खसोक्खं) बाह्य इन्द्रियों के सुख को (हि) ही (परिहरियउ) छोड़ता है और (किरियाकम्मं) क्रिया काण्ड को (करियउ) करता हुआ (मरियउ) मरता है (जमियउ) जन्म लेता है।

भावार्थ - बहिरात्मा जीव बाह्यलिंग [द्रव्य लिंग-मुनिवेश] धारण कर बाह्य इन्द्रियों के सुख को ही छोड़कर क्रियाकाण्ड [बाह्य व्रताचरणादि] करता हुआ जन्म मरण करता रहता है [एक सम्यग्दर्शन के बिना सब निष्फल है]।

मिथ्यात्व के कारण मोक्ष सुख नहीं मिलता

मोक्ख णिमित्तं दुक्खं , वहेदि परलोय दिट्ठि तणुदंडी।
मिच्छाभाव ण छिज्जइ , किं पावदि मोक्ख सोक्खं हि ॥ 65 ॥

मोक्ष हेतु दुख सहने वाला ,करे नहीं मिथ्यात्व विनाश।
मिथ्या से क्या मोक्ष सुखों में, कर सकता हैक्या वह वास ॥65॥

अन्वयार्थ- (परलोयदिट्ठी) परलोक पर दृष्टि रखने वाला (तणुदंडी) देहाश्रित (बहिरात्मा) (अनेक काय क्लेश सहने वाला) (मोक्खणिमित्तं) मोक्ष के निमित्त (दुक्खं) दुःख (वहेइ) उठाता है। किन्तु उससे (मिच्छाभाव) मिथ्यात्व भाव (ण) नहीं (छिज्जइ) छीजता है अतः (मोक्ख सोक्ख) मोक्ष सुख को (हि) निश्चय से (किं) कैसे (पावइ) पाता है।

भावार्थ - परलोक पर दृष्टि रखने वाला परलोक में सुखों की अभिलाषा करने वाला, अनेक काय-क्लेश सहन करने वाला [मिथ्यादृष्टि बहिरात्मा] मोक्ष पाने के निमित्त दुःख सहन करता है। किन्तु वह मिथ्यात्व भाव को नष्ट नहीं करता (तब वह) क्या निश्चय से (वस्तुतः) मोक्ष सुख को प्राप्त करता है?। अर्थात् नहीं कर पाता।

कषाय के नाश से कर्मों का नाश

ण हु दंडइ कोहाइं, देहं दंडदि कहं खवदि कम्मं।
सप्पो किं मुवइ तहा, वम्मीए मारिदे लोए॥ 66 ॥

क्रोधादिक को दण्ड ना देवे, देह दण्ड से कर्म विनाश ।
वांमी पीट साँप को मारे, क्या होगी यह पूरी आस ॥66॥

अन्वयार्थ- (यह जीव) (कोहाइं) क्रोधादिकों (दंडेइ) दण्ड देता (णहु) नहीं है (किन्तु)(देह)

शरीर को (दंडेइ) दण्ड या पीड़ा देता है। (इससे) (कम्मं) कर्मों का (कहं) कैसे (खवइ) क्षय कर (सकता है) (किं) क्या (लोए) लोक में (वम्मिउ) बांबी (सांप के बिल) को (मारिए) मारने पर (सप्पो) सांप (मुवइ)मरता है ?

भावार्थ - बहिरात्मा क्रोधादि को दण्ड नहीं देता [निग्रह नहीं करता], देह को दण्ड देता है। तब वह कर्मों को किस प्रकार नष्ट कर सकता है? जैसे लोक में बांबी को मारने पर या नष्ट करने पर क्या साँप मरता है ? अर्थात् नहीं मरता।

संयम उपशम भाव से होता है

उवसम तव भावजुदो, णाणी सो ताव संजदो होदि ।
णाणी कसाय वसगो, असंजदो होदि सो ताव ॥ 67॥
ज्ञानी जीव उपशम तप संयुत, रहे तभी हो संयम वान ।
जब कषाय के वश रहता तब, होय असंयमी महा अज्ञान ॥67॥

अन्वयार्थ- (जो) (णाणी) ज्ञानी (उवसमतवभावजुदो) उपशम, तप भाव से युक्त (है) (सो) वह (ताव) तब तक (संजदो) संयमी (होइ) होता है (जब तक) (णाणी) ज्ञानी (कसायवसगो) कषाय के वश में (होता है) (ताव) तब तक (सो) वह (असंजदो) असंयमी (होइ) होता है।

भावार्थ - ज्ञानी जब उपशम और तपभाव से युक्त रहता है, तभी वह संयमी है, किन्तु जब वह कषाय के वशीभूत रहता है, तब असंयमी रहता है।

मात्र ज्ञान से कर्म-क्षय नहीं होता

णाणी खवेदि कम्मं, णाण बलेणेदि बोल्लदे अण्णाणी।
वेज्जो भेसज्जमहं, जाणे इदि णस्सदे वाही॥ 68॥
ज्ञानी ज्ञान से कर्मों का क्षय ,करे कहे अज्ञानी जीव ।
ज्यों औषधि के ज्ञान से व्याधी, वैद्य करे ना नष्ट अतीव ॥68॥

अन्वायार्थ- (णाणी) ज्ञानी (णाण बलेण) ज्ञान के बल से (कम्मं) कर्म को (खवेइ) क्षय करता है (इदि) इस प्रकार (अण्णाणी) अज्ञानी (बोल्लए) बोलता है (भेसज्जमहं) औषधि का मैं (विज्जो) ज्ञाता वैद्य हूँ (इदि) इस प्रकार (जाणे) जानने से (क्या) क्या (वाहि) व्याधि (णस्सदे) नाश होती है ? अर्थात् नहीं होती।

भावार्थ - ज्ञानी ज्ञान की शक्ति से कर्मों का क्षय करता है, इस प्रकार अज्ञानी कहता है, जैसे मैं औषधि जानता हूँ इतना कहने मात्र से क्या वैद्य व्याधि को नष्ट कर देता है ? अर्थात् नहीं कर पाता।

कर्म-नाश का क्रमिक उपाय

पुव्वं सेवदि मिच्छा, मल सोहण हेउ सम्म भेसज्जं।
पच्छा सेवदि कम्मा, मय णासण चरिय सम्मभेसज्जं॥ 69॥

मिथ्यामल के शोधन हेतू, सम्यक् औषधि करे ग्रहण ।
फिर कर्मों की व्याधि नाश को, चारित औषधि करे वरण ॥69॥

अन्वयार्थ- (पुव्वं) पहले (मिच्छा) मिथ्यात्वरूपी (मल) मल (सोहणहेउ) शोधन का कारण (सम्मभेसज्जं) सम्यक्तरूपी औषधि का (सेवइ) सेवन किया जाता है (पच्छा) पश्चात् (कम्म) कर्मरूपी (आमय) रोग (णासण) नाश करने के लिए (सम्म) सम्यक् (चरिय) चारित्र रूपी (भेसज्जं) औषध (सेवइ) सेवन करें

भावार्थ - पहले मिथ्यात्व रूपी मल के शोधन की कारणभूत सम्यक्त्व रूपी औषधि का सेवन किया जाता है, पश्चात् कर्म रूपी व्याधि का नाश करने के लिये चारित्र रूपी औषधि का सेवन किया जाता है।

अज्ञानी की अपेक्षा ज्ञानी का माहात्म्य

अण्णाणीदो विसय, विरत्तादो होदि सय सहस्स गुणो।
णाणी कसाय विरदो, विसयासत्तो जिणुद्दिट्ठं॥ 70॥
विषय विरत अज्ञानी से तो ,विषयाशक्त कषाय विरक्त ।
ज्ञानी लाख गुणा फल पाए, जिनवर कहते सुनो हे भक्त! ॥70॥

अन्वयार्थ- (कसायविरदो) कषायों से विरक्त तथा (विसयासत्तो) विषयों में आसक्त (णाणी) ज्ञानी (पुरुष के) (विषयविरत्तादो) विषयों से विरक्त (जो) जो (अण्णाणी) अज्ञानी (हैं उसकी अपेक्षा) (सयसहस्सगुणो) लाख गुणा (फल) (होइ) होता है (ऐसा) (जिणुदिट्ठं) जिनेन्द्र देव ने कहा है।

भावार्थ - विषयों से विरक्त अज्ञानी की अपेक्षा विषयों में आसक्त किन्तु कषायों से विरक्त ज्ञानी लाख गुना फल प्राप्त करता है, ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है।

वैराग्यहीन त्याग का निरोध

विणओ भत्तिविहीणो, महिलाणं रोयणं विणा णेहं।
चागो वेरग्ग विणा, एदेदो वारिआ भणिदा॥ 71॥
बिन स्नेह रुदन महिला का, भक्ति विहीन विनय पहचान ।
बिन वैराग्य त्याग करना सब, है प्रति सिद्ध कहे भगवान ॥71॥

अन्वयार्थ- (भत्तिविहीणो) भक्ति के बिना (विणओ) विनय (णेहंविणा) स्नेह के बिना (महिलाणां) महिलाओं का (रोयणं) रोना और (वेरग्ग) वैराग्य के (विणा) बिना (चागो) त्याग (एदेदो) ये (वारिया) प्रतिषिद्ध (भणिया) कहे गये हैं।

भावार्थ - भक्ति विहीन विनय, स्नेह के बिना महिलाओं का रुदन और वैराग्य के बिना त्याग ये प्रतिषिद्ध कहे गये हैं। अर्थात् त्याग करने योग्य है।

संयमहीन मुनि कुछ नहीं पाता

सुहडो सूरत्त विणा, महिला सोहग्ग रहिय परिसोहा।
वेरग्ग णाण संजम, हीणा खवणा ण किं पि लब्भंते॥ 72॥
हो स्त्री सौभाग्य रहित वा ,योद्धा बिना शूरता वान ।
संयम ज्ञान वैराग्य रहित मुनि , कुछ ना पावें ऐसा मान ॥72॥

अन्वयार्थ- (सूरत) शूरता (विणा) बिना (सुहडो) सुभट, योद्धा (सोहग्ग) सौभाग्य (रहिय) रहित (महिला) स्त्री (परिसोहा) शोभा (और) (वेरग्गणाण) वैराग्य ज्ञान (संजम) संयम (हीणा) हीन (खवणा) मुनि (किं वि) कुछ भी (ण) नहीं (लब्भंते) पाते हैं।

भावार्थ - शूरता के बिना योद्धा, सौभाग्य रहित स्त्रियों की शोभा और वैराग्य, ज्ञान और संयम से हीन मुनि कुछ भी प्राप्त नहीं करते।

अज्ञानी को सुख नहीं मिलता

वत्थु समग्गो मूढो, लोही लब्भदि फलं जहा पच्छा।
अण्णाणी जो विसयासत्तो लहइ तहा चेव॥ 73॥
सब पदार्थ संयुक्त मूर्ख ज्यों, लोभी फल पाए पश्चात ।
विषयाशक्त अज्ञानी त्यों ही, पीछे फल पाए हो ज्ञात ॥73॥

अन्वयार्थ- (जहा) जैसे (मूढो) मूर्ख (लोहिय) लोभी (पुरुष) (समग्गो) समग्र (सम्पूर्ण) (वत्थु) वस्तुओं को (लहिए) प्राप्त करता है (पच्छा) पश्चात् (फलं) फल (की अभिलाषा करता है) (तहा) वैसे (चेव) ही (जो) जो (अण्णाणी) अज्ञानी (और) (विसयपरिचत्तो) विषयों को त्यागने वाला (है वह) (लहइ) प्राप्त करता है।

भावार्थ - जैसे समस्त पदार्थों से युक्त [समस्त पदार्थ रहने पर भी] मूर्ख लोभी मनुष्य बाद में फल पाता है, वैसे ही जो विषयासक्त अज्ञानी है, वह पीछे फल पाता है।

सुपात्रदान और विषयों के त्याग का फल समान है

वत्थु समग्गो णाणी, सुपत्तदाणी फलं जहा लहदि।
णाण समग्गो विसय, परिचत्तो लहइ तहा चैव॥ 74॥
सब पदार्थ संयुक्त सुपात्रों , को देने वाला ज्यों दान ।
फल पाए वैसे फल विषयों ,से विरक्त ज्ञानी को मान ॥74॥

अन्वयार्थ- (जहा) जैसे (णाणी) ज्ञानी (पुरुष) (समग्गो) सम्पूर्ण (वत्थु) वस्तु (सुपत्तदाणी) सुपात्र में दान देने वाला दानी (फलं) फल को (लहइ) प्राप्त करता है (तहा) वैसे (चेव) ही (विसयपरिचत्तो) विषयों को त्यागने वाला (समग्गो) सम्पूर्ण (णाण) ज्ञान (के फल को) (लहइ) प्राप्त करता है।

भावार्थ - जैसे समस्त पदार्थों से युक्त [समस्त पदार्थ रहने पर भी] सुपात्रों को दान देने वाला फल प्राप्त करता है, वैसा ही फल विषयों का त्यागी ज्ञानी प्राप्त करता है।

रत्नत्रय से लोभ का विरोध

भूमहिला कणयादि, लोहाहि विसहरं कहं पि हवे।
सम्मत्तणाण वेरग्गो, सहमंतेण जिणुद्दिट्ठं ॥ 75॥

स्वर्ण स्त्री भू आदि लोभी का, विषधर कैसा होय विशेष ।
सम्यक बोध वैराग्य औषधि के ,मंत्र से वश हो कहे जिनेश ॥75॥

अन्वयार्थ- (भू) जमीन (महिला) स्त्री (कणयाइ) स्वर्ण आदि के (लोहाहि) लोभ रूपी सर्प और (विसहरं) विषधर सर्प को (कहं पि हवे) चाहे वो सर्प कैसा ही हो (सम्मत्तणाण) सम्यक्त्व ज्ञान (वेरग्गो सहमंतेण) वैराग्य रूपी औषधि और मंत्र से वश में किया जा सकता है। (जिणुद्दिट्ठं) ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है।

भावार्थ - भूमि, स्त्री, स्वर्ण आदि के लोभ रूपी सर्प और विषधर सर्प को चाहे कैसा ही हो - सम्यक्त्व ज्ञान, वैराग्य, [सम्यग्दर्शन-ज्ञान- चारित्र] रूपी औषधि और मंत्र से [वश में किया जा सकता है] ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है।

मुनि-दीक्षा से पूर्व योगों का निग्रह आवश्यक है

पुव्वं जो पंचेंदिय, तणुमणुवचि हत्थपाय मुंडाउ।
पच्छा सिर मुंडाओ, सिवगदि पहणायगो होइ॥ 76॥

पहले जो पंचेन्द्रिय तन मन, वचन हाथ पग अंग सुजान ।
का मुण्डन कर शीश मुडाए, मोक्ष का वह नेता हो मान ॥76॥

अन्वयार्थ- (जो) जो साधु (पुव्वं) पहले (पंचेंदिय) पाँच इन्द्रियों (तणु-मणु-वचि) शरीर, मन, वचन (हत्थपाय) हाथ- पाँव को (मुंडाउ) मुंडाता है (पच्छा) बाद में (सिरमुंडाउ) सिरमुडाता है (केशलोंच) करता है वह (सिवगइ) मोक्ष मार्ग का (पहणायगो) प्रधान नायक होता है।

भावार्थ - जो मनुष्य पहले पाँचों इन्द्रियों शरीर, मन, वचन हाथ और पैरों को मूंडता है [वश में करता है] और पश्चात् सिर मुंडाता है [केश लुंचन करके मुनि दीक्षा लेता है], वह मोक्ष मार्ग का नेता होता है।

भक्ति के बिना सुगति नहीं

पदिभत्ति विहीण सदी, भिच्चो जिण समय भत्ति हीण जइणो।
गुरुभत्तिविहीण सिस्सो, दुग्गदि मग्गाणु लग्गओ णियमा॥ 77॥

सती भृत्य स्वामी भक्ती बिन ,जैन देव श्रुत भक्ति विहीन ।
गुरुभक्ती से हीन शिष्य ये , दुर्गति पथ में हैं तल्लीन ॥77॥

अन्वयार्थ- (पत्तिभत्ति) पति की भक्ति (विहीण) रहित (सदी) सती (पतिव्रता) (य) और (भिच्चो) स्वामी भक्ति रहित भृत्य (जिणसमय) जिनागम या श्रुत जिनवाणी (भत्ति) भक्ति (हीण) रहित (जइणो) जैन तथा (गुरुभत्ति विहीण) गुरु भक्ति से रहित (सिस्सो) शिष्य (णियमा) नियम से (दुग्गइ) दुर्गति के (मग्गाणु लग्गणो) मार्ग में लगे हुए हैं।

भावार्थ - स्वामी की भक्ति से विहीन सती और भृत्य, जिनेन्द्र देव और शास्त्र की भक्ति से विहीन जैन और गुरु की भक्ति से विहीन शिष्य नियम से दुर्गति के मार्ग में संलग्न है।

गुरु भक्ति के बिना चारित्र निष्फल है

गुरु भक्ति विहीणाणं, सिस्साणं सव्व संग विरदाणं।
ऊसरखेत्ते ववियं, सुवीयसमं जाण सव्वणुट्ठाणं॥ 78॥

सर्व परिग्रह रहित शिष्य जो ,गुरु भक्ती से रहित सुजान ।
ऊसर खेत में बोए बीज सम, जानो उसके सर्वानुष्ठान ॥78॥

अन्वयार्थ- (गुरुभत्ति) गुरु की भक्ति से (विहीणाणं) विहीन (सिस्साणं) शिष्यों के (सव्वसंग) सर्व परिग्रह से (विरदाणं) विरत (होने पर भी) (सव्वणुट्ठाणं) सब अनुष्ठान (जप, तप आदि) (ऊसर छेत्ते) ऊसर खेत में (ववियं) बोये हुए (सुवीयसमं) उत्तम बीज समान (जाण) जानो।

भावार्थ -समस्त परिग्रह [बाह्य और अभ्यंतर] से रहित किन्तु गुरु भक्ति से विहीन शिष्यों के सभी अनुष्ठान [जप, तप, व्रत आदि] ऊसर खेत में बोये हुये उत्तम बीज के समान जानो।

गुरु भक्ति के बिना चारित्र निष्फल है

रज्जं पहाणहीणं , पतिहीणं देश गामरट्ठ बलं।
गुरुभत्ति हीण सिस्साणुट्ठाणं णस्सदे सव्वं॥ 79॥

राजा रहित राज्य स्वामी बिन ,सेना राष्ट्र देश या ग्राम ।
गुरुभक्ती से हीन शिष्य के, अनुष्ठान सब हों बेकाम ॥79॥

अन्वयार्थ- (पहाणहीणं) प्रधान (राजा) हीन (रज्जं) राज्य (पतिहीणं) पति (स्वामी से) हीन (देसगामरट्ठबलं) देश, ग्राम, राष्ट्र (और) सेना (गुरुभत्ति) गुरुभक्ति (हीणं) हीन (सिस्साणुट्ठाणं) शिष्यों (के) अनुष्ठान (सव्वं) सब (णस्सदे) नष्ट हो जाते हैं।

भावार्थ- राजा से विहीन राज्य, स्वामी विहीन देश, ग्राम, राष्ट्र और सेना तथा गुरु भक्ति से विहीन शिष्यों के समस्त अनुष्ठान नष्ट हो जाते हैं।

गुरु भक्ति के बिना चारित्र निष्फल है

सम्माण विणा रूई, भत्तिविणा दाण दया विणा धम्मं।
गुरुभत्ति विणा तह, तव चारित्तं णिप्फलं जाण॥ 80॥

आदर बिना प्रेम भक्ती बिन ,दान दया बिन धर्म विशेष ।
गुरुभक्ती बिनजप तप संयम, निष्फल कहते हैं तीर्थेश ॥ 80 ॥

अन्वयार्थ- (जैसे) (सम्माण) सन्मान (आदर भाव के) (विण) बिना (रूई) रुचि (प्रेम) (भत्ति विणा) भक्ति बिना (दाणं) दान (दयाविणा) दया बिना (धम्मं) धर्म (और) (तह) वैसे (गुरुभत्ति) गुरूभक्ति (विणा) बिना (तव) तप (गुण) गुण (चरित्तं) चारित्र (णिफ्फलं) निष्फल (जाण) जानो।

भावार्थ - सम्मान या आदर भाव के बिना रुचि या प्रेम, भक्ति के बिना दान, दया के बिना धर्म और गुरू भक्ती के बिना तप,जप और चारित्र निष्फल जानो।

हेयोपादेय विवेक की आवश्यकता

हाणादाण वियारं, विहीणादो वाहिरक्खसुक्खं हि।
किं तजियं किं भजियं, किं मोक्खु सुहं जिणुद्दिट्ठं॥ 81॥
ग्राह्याग्राहय विचार बिना जो , बाहिरसुख दुख इन्द्रिय वान ।
क्या हैं ग्राह्य त्याज्य मुक्ती क्या, जाने नहीं कहे भगवान ॥81॥

अन्वयार्थ- (हाणादाण) त्याज्य और ग्राह्य (वियार) विचार से (विहाणादो) विहीन होने से (हि) निश्चय (बाहिरक्खसुक्खं) बाह्य इन्द्रिय सुख को (मानने वाला) (किं) क्या (तजियं) त्याज्य है (किं) क्या (भजियं) ग्राह्य है (किं) क्या (मोक्खं) मोक्ष सुख है (णदिट्ठं) नहीं जाना (जिणुदिट्ठं) ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है।

भावार्थ - निन्द्य और ग्राह्य का विचार न होने से निश्चय से बाह्य इन्द्रियों के सुख को ही सुख मानता हैं। क्या त्याज्य है? क्या ग्राह्य है? मोक्ष क्या है? उसे नहीं जाना, ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है।

आत्मरुचि कर्म-क्षय करती है

काय कलेसुववासं, दुद्धर तवयरण कारणं जाण।
तं णिय सुद्धसरूवं, परिपुण्णं चेदि कम्म णिम्मूलं॥ 82॥
दुर्द्धर तप के कारण जानो, काय क्लेश और उपवास।
शुद्धातम की रुचि होने पर, करते हैं कर्मों का नाश॥82॥

अन्वयार्थ- (कायकिलेसुववासं) कायक्लेश और उपवास (दुद्धर) दुर्धर (कठोर) (तवयरण) तपश्चरण के (कारणं) कारण (जाण) जानो (च) और (तं) वे (परिपुण्णं) परिपूर्ण (णिय) अपने (सुद्धसरूवं) शुद्ध स्वरूप का होना (कम्मणिम्मूलं) कर्म निर्मूलन का (कारणं) कारण (है) (इति) ऐसा (जाण) जानो।

भावार्थ - कायक्लेश और उपवास कठोर तपश्चरण के कारण होते हैं - ऐसा जानो और निज शुद्ध आत्मा की रूचि होने पर वे समस्त कर्मों के नाश के कारण होते हैं - ऐसा जानो।

आत्मज्ञान के बिना बाह्य लिंग व्यर्थ है

कम्म ण खवेदि हू जो, परब्रह्म ण जाणेदि सम्मउमुक्को।
अत्थ ण तत्थ ण जीवो, लिंगं घेत्तूण किं करेदि॥ 83॥
परं ब्रह्मा से हीन सम्यक्त्वी, कर्मों का ना करता नाश।
यहाँ वहाँ का नहीं जीव वह , बाह्य भेषधारी है खास ॥83॥

अन्वयार्थ- (हू) निश्चय से (जो) (सम्मउमुक्को) सम्यक्त्व से रहित है (परब्रह्म) परमब्रह्म (आत्मा) (ण) नहीं (जाणेइ) जानता है (वह) (अत्थ ण) यहाँ नहीं (तत्थ ण) वहाँ नहीं है (कम्म) कर्म (ण) नहीं (खवेइ) क्षय करता है (वह) (लिंग) वेश को (घेत्तूण) ग्रहण कर (किं) क्या (करइ) करता है।

भावार्थ - जो परं ब्रह्म [आत्मा, परमात्मा] को नहीं जानता और सम्यक्त्व से रहित है, वह कर्मों का नाश नहीं करता है। ऐसा जीव न यहाँ का है, न वहाँ का है। वह लिंग बाह्यवेश को धारण करके क्या करता है ? अर्थात् कुछ भी प्राप्त नहीं कर पाता है।

आत्मज्ञान के बिना बाह्य लिंग व्यर्थ है

अप्पाणं पि ण पिच्छइ, ण मुणदि ण वि सद्दहदि ण भावेदि।
बहु दुक्ख भारमूलं , लिंगं घेत्तूण किं करेदि॥ 84॥
निज आतम ना देखे उसका ,मनन करे ना ही श्रद्धान ।
नहीं भावना भाए दुख के, भार भूत लिंग है बेकाम ॥84॥

अन्वयार्थ- (यदि साधु) (अप्पाणं) आत्मा को (पि) भी (ण) नहीं (पिच्छइ) देखता है (ण) न (मुणइ) मनन करता (ण वि) ना ही (सद्दहइ) श्रद्धान करता है और (ण) नाहीं (भावेइ) भाता (है तो) (बहुदुक्खभार) अत्यन्त दुख के भार का (मूलं) कारण (लिंग) वेश को (घेत्तूण) धारण कर (किं) क्या (करई) करता है।

भावार्थ - जो साधु अपनी आत्मा को भी नहीं देखता है न उसका मनन करता है, न ही श्रद्धान करता है, न भावना करता है, तो वह अत्यंत दुःख भार के कारण स्वरूप बाह्य वेश को धारण करके क्या करता है ? अर्थात् कुछ भी प्राप्त नहीं करता है।

आत्मज्ञान के बिना दुःख है

जाव ण जाणदि अप्पा, अप्पाणं दुक्खमप्पणो ताव।
तेण अणंत सुहाणं, अप्पाणं भावए जोई ॥ 85॥
जब तक निज आतम ना जाने, तब तक आतम का दुखवान।
अतः योगि को सुखानन्त मय, निज आतम का करना भान॥85॥

अन्वयार्थ- (जाव) जब तक (अप्पा) आत्मा (अप्पाणं) अपने आपको (ण) नहीं (जाणइ) जानता

है, (ताव) तब तक (अप्पणो) आत्मा का (दुक्ख) दुःख (प्रतीत नहीं होता) (तेण) इसलिए (जोइ) योगी मुनि (अणंत) अनन्त (सुहाणं) सुख (से युक्त) (अप्पाणं) आत्मा का (भावए) चिन्तन करता है। आत्मा का ध्यान करता है।

भावार्थ - जब तक आत्मा को या अपने आपको नहीं जानता है, तब तक आत्मा का दुःख है, इसलिये योगी या साधु को अनंत सुख स्वभावी आत्मा की भावना करनी चाहिये।

आत्मस्वरूप प्राप्त होने पर सम्यक्त्व होता है

णिय तच्चुवलद्धि विणा, सम्मत्तुवलद्धि णत्थि णियमेण।
सम्मत्तुवलद्धि विणा, णिव्वाणं णत्थि णियमेण ॥ 86 ॥

आत्म तत्त्व की प्राप्ति बिना हो, नहीं नियम से समकित प्राप्त।
सम्यक् बिन ना होय नियम से, प्राणी को मुक्ती सम्प्राप्त ॥86॥

अन्वयार्थ- (णिय) निज (तच्चुवलद्धि) तत्त्वोपलब्धि (विणा) बिना (णियमेण) नियम से (सम्मत्तुवलद्धि) सम्यक्त्व की प्राप्ति (णत्थि) नहीं होती और (विणा) बिना (सम्यक्त्व प्राप्ति) (णियमेण) नियम से (णिव्वाणं) निर्वाण (णत्थि) नहीं होता है (ऐसा) (जिणुद्दिट्ठं) जिनेन्द्रदेव ने कहा है। उपदेश दिया है।

भावार्थ - निज तत्व या आत्मस्वरूप की प्राप्ति के बिना नियम से सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं होती। सम्यक्त्व की उपलब्धि के बिना नियम से निर्वाण नहीं होता।

ज्ञान के बिना तप की शोभा नहीं

साल विहीणो राओ, दाण दया धम्मरहिद गिहिसोहा।
णाण विहीण तवो वि य, जीव विणा देह सोहं णो ॥ 87 ॥

राज्य की शोभा बिना दुर्ग के, दया धर्म या दान विहीन ।
शोभा नहीं गृही के तन की, ज्ञान और तप से जो हीन ॥87॥

अन्वयार्थ- (साल) दुर्ग (विहीणो) बिना (राउ) राजा (दाण) दान (दया) दया (धम्म) धर्म (रहिय) रहित (गिह) गृहस्थ की (सोह) शोभा (णो) नहीं होती (य) और (णाण) ज्ञान (विहीण) रहित (तवो) तप की (वि) भी (तथा) (जीव) जीव (विणा) बिना (देह) शरीर की शोभा (णो) नहीं होती है। ऐसा जानना चाहिए।

भावार्थ - दुर्ग के बिना राज्य की और दान, दया, धर्म के बिना गृहस्थ की शोभा नहीं होती। ज्ञान से रहित तप की और जीव के बिना देह की शोभा नहीं होती।

परिग्रही साधु दुःख पाता है

मक्खि सिलिम्मि पडिदो, मुवइ जहा तह परिग्गहे पडिदो।
लोही मूढो खवणो, कायकिलेसेसु अण्णाणी ॥ 88 ॥

मक्खी ज्यों श्लेश्मा में गिरकर, दुःख भोगकर करे मरण ।
त्यों परिग्रह में पड़कर लोभी, काय क्लेश कर करे मरण ॥88॥

अन्वयार्थ- (जहाँ) जैसे (सिलिम्मे) श्लेष्मा में (पडिओ) पड़ी हुई (मक्खि) मक्खी (मुवइ) मर जाती है (तह) वैसे ही (परिग्गहे) परिग्रह में (आसक्ति) (पडिउ) पड़ा हुआ (लोही) लोभी (मूढ़ो) मूर्ख (अण्णाणी) अज्ञानी (खवणे) क्षपक (साधु) (कायकिलेसेसु) शारीरिक कष्टों में (जीवन खो देता है)। ऐसा जानना चाहिए।

भावार्थ - जैसे श्लेष्मा में गिरी हुयी मक्खी दुःख भोगती हुई मर जाती है, उसी प्रकार परिग्रह में पड़ा हुआ या आसक्त लोभी मूढ़, अज्ञानी साधु कायक्लेश में मरता है।

ज्ञानाभ्यास के बिना स्व पर की पहचान नहीं होती

णाणब्भास विहीणो , सपरं तच्चं ण जाणदे किं पि।
झाणं तस्स ण होदि हु, ताव ण कम्मं खवेदि ण हु मोक्खं॥ 89॥

ज्ञानाभ्यास हीन यह प्राणी, स्वपर तत्व के ज्ञान विहीन ।
कर्म नष्ट ना हो निश्चय से, मुक्ती ना पावे वह दीन ॥89॥

अन्वयार्थ- (णाणब्भास) ज्ञानाभ्यास (विहीणो) विहीन जीव (सपरं) स्व आत्मा और पर याने अन्य द्रव्य के (तच्चं) तत्व को (किं) कुछ (वि) भी (ण) नहीं (जाणए) जानता (तस्स) उसके (झाणं) ध्यान (हु) भी (ण) नहीं (होइ) होता है और (जाव) जब तक (कम्मं) कर्म को (ण) नहीं (खवेइ) नष्ट करता है तब तक (मोक्खं) मोक्ष (णहु) नहीं ही (होता है)।

भावार्थ - ज्ञानाभ्यास से विहीन जीव स्वपर तत्त्व को कुछ भी नहीं जानता है। निश्चय ही उसके ध्यान नहीं होता है। तब तक कर्मों को नष्ट नहीं करता और न ही मोक्ष होता है।

स्वाध्याय ही ध्यान है

अज्झयण-मेव झाणं, पंचेंदिय णिग्गहं कसायं पि।
तत्तो पंचमयाले, पवयण सारब्भास मेव कुज्जाहो॥ 90॥

ज्ञानाध्ययन ही ध्यान है जिससे , इन्द्रिय कषाएँ हों निग्रह ।
अतः काल पंचम में प्रवचन, सारादिक से होय अभय॥90॥

अन्वयार्थ- (पंचमयाले) पंचम (वर्तमान)काल में (अज्झयणमेव) अध्ययन ही (झाणं) ध्यान है (जिनागम के अभ्यास से) (पंचदिय) पंचेन्द्रियों का (णिग्गह) निग्रह (कसायं) कषाय का (पि) भी निग्रह होता है (तत्तो) इस प्रकार से (हो) अहो (पंचमयाले) वर्तमान काल में (पवयणसारब्भासमेव) प्रवचनसार का अभ्यास ही (कुज्जा) करें।

भावार्थ - जिनागम का अध्ययन ही ध्यान है। उसी से पंचेन्द्रियों का और कषायों का भी निग्रह होता है, इसलिये इस पंचम काल में प्रवचनसार या जिनागम का ही अभ्यास करना चाहिये।

ज्ञान ही धर्मध्यान है

पावारंभ णिवित्ती , पुण्णारंभे पउत्ति करणं पि।
णाणं धम्मज्झाणं, जिणभणिदं सव्वजीवाणं॥91॥

पापारम्भ से निवृत्ती अरु, पुण्य प्रवृत्ति का कारण ज्ञान।
श्री जिनेन्द्र ने सब जीवों को , ज्ञान कहा है धर्म ध्यान ॥91॥

अन्वयार्थ- (पावारं भणिवित्ती) हिंसादि पाप कार्यों से निवृत्त (होकर) (पुण्णारंभे) पुण्य के कार्यों में (पउत्ति) प्रवृत्ति (करणं) करना (पि) भी (णाणं) सम्यग्ज्ञान और (धम्मज्झाणं) धर्मध्यान को (सव्वजीवाणं) सब जीवों के लिए मुक्ति का कारण (जिणभणिदं) जिनेन्द्र देव ने कहा है।

भावार्थ - पापारंभ या हिंसादि कार्य से निवृत्ति और पुण्य कार्यों में प्रवृत्ति का कारण ज्ञान ही है। इसलिये ज्ञान को ही सब जीवों के लिये जिनेन्द्र देव ने धर्मध्यान कहा है।

श्रुतज्ञान के बिना सम्यग्तप नहीं है

सुदणाणब्भासं जो, ण कुणदि सम्मं ण होदि तवयरणं।
कुव्वंतो मूढमदि, संसार सुहाणुरत्तो सो ॥ 92॥

जो श्रुत का अभ्यास करे ना, उसके सम्यक् तप ना होय ।
सांसारिक सुख में निमग्न वह, श्रुताभ्यास ना करता सोय ॥92॥

अन्वयार्थ- (जो) जो (सुदणाणब्भासं) श्रुत (शास्त्र) का ज्ञानाभ्यास (ण) नहीं (कुणइ) करता है (उसके) (तवयरणं) तपश्चरण (सम्मं ण होइ) सम्यक् ठीक से नहीं होता है (सो) वह (मूढ़मई) मूढबुद्धि (तवयरणं कुव्वंतो) तपश्चरण करता हुआ (संसारसुहाणुरत्तो) संसार सुख में अनुरक्त है।

भावार्थ - जो जिनागम का अभ्यास नहीं करता है, उसके सम्यक् तपश्चरण नहीं होता है। [श्रुतज्ञान का अभ्यास किये बिना तपश्चरण] करने वाला वह अज्ञानी सांसारिक सुखों में अनुरक्त है।

मुनि तत्त्व-विचार में लीन रहते हैं

तच्चवियारण सीलो, मोक्ख पहाराहणासहावजुदो।
अणवरयं धम्मकहा, पसंगओ होदि मुणिराओ॥ 93॥

तत्त्व विचारण करने वाले , मुक्ती पथ के आराधक ।
मुनिवर जानो नित्य निरन्तर , धर्म कथादि के परिचायक ॥93॥

अन्वयार्थ- (तच्च) तत्त्व (वियारणसीलो) विचार के स्वभाव वाले (मोक्खपह) मोक्षपथ (की) (आराहणा) आराधना (सहाव) स्वभाव (जुदो) युक्त (तथा) (अणवरयं) सतत् (धम्मकहा) धर्मकथा (पसंगओ) संबद्ध सहित (मुणिराओ) मुनिराज (होइ) होते हैं।

भावार्थ - मुनिराज तत्त्व की विचारणा करने वाले, मोक्ष-पथ की आराधना के स्वभाव वाले और निरंतर धर्म-कथाओं के परिचायक होते हैं।

मुनि श्री की धर्ममय प्रवृत्ति

विकहादि विप्पमुक्को, आहाकम्मादि विरहिदो णाणी।
धम्मुद्देसण कुसलो, अणुपेहा भावणा जुदो जोई॥ 94॥
विकथादिक से पूर्ण मुक्त हैं, अधःकर्म आदिक से हीन ।
धर्मोपदेश कुशल हों ज्ञानी, मुनि अनुप्रेक्षा चिन्तन लीन ॥94॥

अन्वयार्थ - (जो) (विकहाइ) विकथादि से (विप्पमुक्को) पूर्ण मुक्त हैं (आहाकम्माइ) अधः कर्मादि (दोषों से) (विरहिओ) रहित हैं (धम्मुद्देसण) धर्मोपदेश देने में (कुसलो) कुशल (तथा) (अणुपेहा) अनुप्रेक्षा (भावणाजुदो) भावना से युक्त हैं (वे) (णाणी) ज्ञानी (जोइ) योगी हैं।

भावार्थ - योगी या मुनिराज विकथा आदि से पूर्णतः मुक्त होते हैं, अधः कर्म आदि से रहित होते हैं, सम्यक्ज्ञानी होते हैं, धर्मोपदेश देने में कुशल होते हैं, और बारह अनुप्रेक्षाओं के चिन्तवन में निरत होते हैं।

मुनि का स्वरूप

णिंदा वंचण दूरो, परीसह उवसग्ग दुक्ख सहमाणो।
सुह झाणज्झयणरदो, गदसंगो होदि मुणिराओ॥ 95॥
दूर वंचना निन्दा से मुनि , दुख परिषह उपसर्ग सहें ।
ध्यानाध्ययन शुभ में रत रहते, उभय परिग्रह हीन रहें॥95॥

अन्वयार्थ- (जो) जो (णिंदा) निन्दा (वंचण) वंचना (दूसरों को ठगना) से दूर हैं (परीसह) परीषह (उवसग्ग) उपसर्ग (दुःख) दुख (सहमाणो) सहनशील हैं और (सुह) शुभ (झाणज्झयण) ध्यान अध्ययन में (रदो) रत (लीन) (गयसंगो) परिग्रह विहीन (हैं वे) (मुणिराओ) मुनिनाथ (होइ) होते हैं।

भावार्थ - मुनिराज निन्दा और वंचना से दूर रहते हैं, परीषह, उपसर्ग और दुःखों को सहन करते हैं, शुभ ध्यान और अध्ययन में निरत रहते हैं और अन्तः [अंतरंग] बाह्य परिग्रह से रहित होते हैं।

मुनि योगी होते हैं

अवियप्पो णिद्वंदो, णिम्मोहो णिक्कलंकओ णियदो।
णिम्मलसहाव जुदो, जोई सो होदि मुणिराओ॥ 96॥
निष्कलंक निर्द्वन्द सुनिर्मल, नियत होय जो मोह विहीन ।
निर्विकल्प योगी होता वह, हैं मुनिराज सुज्ञानालीन ॥96॥

अन्वयार्थ- (जो) (जोई) योगी (अवियप्पो) विकल्पों से रहित (णिद्वंदो) निर्द्वन्द (णिम्मोही) निर्मोही (णिक्क्लंकओ) निष्कलंक (णियदो) स्थिर हैं (णिम्मलसहाब) निर्मल स्वभाव (जुत्तो) युक्त हैं (सो) वे (मुणिराओ) मुनिनाथ (होइ) होते हैं।

भावार्थ - जो विकल्प रहित, निर्द्वन्द, मोहरहित, निष्कलंक, नियत, निर्मल, स्वभाव वाला और योगी होता है, वह मुनिराज होता है।

मिथ्यातप से मुक्ति नहीं मिलती

तिव्वं कायकिलेसं, कुव्वंतो मिच्छ भाव संजुत्तो।
सव्वण्हुवदेसे सो, णिव्वाणसुहं ण गच्छेदि॥ 97॥

काय क्लेश तीव्र करके भी , है मिथ्यात्व भाव संयुक्त।
वह सर्वज्ञ देव की वाणी,में मुक्ती सुख से है मुक्त ॥97॥

अन्वयार्थ- (जो) (तिव्वं) - तीव्र (कायकिलेसं) कायक्लेश को (कुव्वंतो) करता हुआ भी (मिच्छभाव) मिथ्यात्व भाव से (संजुत्तो) संयुक्त है (सो) वह (णिव्वाणसुहं) निर्वाणसुख को (ण) नहीं (गच्छेइ) प्राप्त करता है यह (सव्वण्णुवएसे) सर्वज्ञ का उपदेश है।

भावार्थ - जो तीव्र कायक्लेश करता हुआ भी यदि मिथ्यात्व-भाव से युक्त है, तो वह सर्वज्ञदेव के उपदेश में मोक्ष सुख को प्राप्त नहीं करता है।

रागी को आत्मदर्शन नहीं होता

रायादिमल जुदाणं, णियप्परूवं ण दिस्सदे किं पि।
समलादरिसे रूवं, ण दिस्सदे जह तहा णेयं॥ 98॥

रागादिक मल युत जीवों को, आत्म स्वरूप का ना हो भान ।
ज्यों मैले दर्पण में निज का, रूप दिखे ना ऐसा मान ॥98॥

अन्वयार्थ- (रायाइ) रागादि (मलजुदाणं) मलयुक्त (जीवों को) (णिय) अपना (अप्परूवं) आत्म स्वरूप (किं) कुछ (पि) भी (ण) नहीं (दिस्सए) दिखलाई देता है। (जह) जैसे (समल) मल सहित (आदरिसे) दर्पण में (रूवं) रूप (ण) नहीं (दिस्सए) दिखलाई देता है। (तहा) वैसे ही (णेयं) समझना चाहिए।

भावार्थ - रागादि मल से युक्त जीवों को अपना आत्मस्वरूप कुछ भी दिखायी नहीं देता। जैसे मलिन दर्पण में निज रूप दिखायी नहीं देता, उसी प्रकार इसे समझना चाहिये।

असंयमी मुनि दीर्घ संसारी होता है

दंडत्तय सल्लत्तय, मंडिदमाणोअसूयगो साहू।
भंडणजायण सीलो, हिंडदि सो दीहसंसारे॥ 99॥

तीन दण्ड ,त्रय शल्य युक्त मद , ईर्ष्यालु हो कलह प्रदान ।
और याचना करने वाला, भ्रमें दीर्घ संसार महान ॥99॥

अन्वयार्थ- (जो) (दंडत्तय) तीन दंड (मन,वचन, काय को वश में नहीं रखने वाले) (सल्लत्तय) तीन शल्य (माया-मिथ्या-निदान) से (मंडियमाणो) शोभायमान (असूयगो) ईर्ष्यावान् (भंडण)

कलह (जायणसीलो) याचनाशील (साहू) साधु हैं (सो) वे (दीह) दीर्घ (संसारे) संसार में (हिंडइ) घूमते हैं।

भावार्थ - जो साधु तीन दण्ड [मन, वचन, काय को वश में न रखना], और शल्य [माया, मिथ्यात्व, निदान] से युक्त अभिमानी, ईष्यालु, कलह करने वाला और याचना करने वाला, वह दीर्घ संसार में भ्रमण करता है।

सम्यक्त्वहीन साधु की पहचान

देहादिसु अणुरत्ता, विसयासत्ता कसाय संजुत्ता।
अप्पसहावे सुत्ता, ते साहू सम्मपरिचत्ता॥ 100॥

हो आसक्त देह आदिक में ,या विषयों में हो आसक्त ।
निज स्वभाव में सुप्त कषायी , साधू ना पावे सम्यक्त्व ॥100॥

अन्वयार्थ- (जो मुनि) (देहादिसु) शरीर आदि में (अणुरत्ता) अनुरक्त (विसयासत्ता) विषयासक्त (कसाय) कषाय (से) (संजुत्ता) संयुक्त (और) (अप्पसहावे) आत्म स्वभाव में (सुत्ता) सुप्त (बेखबर हैं) (ते) वे (साहू) साधु (सम्म) सम्यक्त्व से (परिचत्ता) परित्यक्त हैं।

भावार्थ - देह आदि में अनुरक्त, विषयों में आसक्त, कषाय से युक्त आत्म स्वभाव में सोये हुये [प्रमादी]- ऐसे साधु सक्यक्त्व से रहित हैं।

जैनधर्म के विराधक साधुओं के लक्षण

आरम्भे धणधण्णे, उवयरणे कंखिया तहासूया।
वय गुणसीलविहीणा, कसायकलहप्पिया मुहरा॥ 101॥
संघविरोह कुसीला, सच्छंदा रहिय गुरुकुला मूढा।
रायादिसेवया ते, जिणधम्म विराहिया साहू॥ 102॥

साधू जो उपकरण धान्य धन, के उपकरण सुगुण व्रतवान।
ईर्ष्यालु वाचाल कलह प्रिय, शील रहित स्वच्छन्दी जान ॥101॥
संघ विरोधी हो कुशील या, गुरु कुल होय मूढ अज्ञान।
राजा का सेवक हो साधू, धर्म विरोधी विशद अजान ॥102॥

अन्वयार्थ- (आरंभे) आरम्भ में (धणधण्णे) धन-धान्य में (तथा) (उववरणे) उपकरण में (कंखिया) कांछा रखने वाला (तहा) तथा (सूया) ईर्ष्यालु (वयगुणसील) व्रत, गुण, शील से (विहीणा) विहीन (कसाय) कषाय (कहलप्पिया) कलहप्रिय (मुहरा) मुखर (संघ) संघ (विरोह) विरोध (कुसीला) कुशील (सच्छंद) स्वच्छन्द (गुरूकुलारहिय) गुरू संघ से रहित (गुरू के समीप नहीं रहते या गुरू के अधीन नहीं रहते) (मूढ़ा) अज्ञानी (रायादिसेवाया) राजा आदि की सेवा करते हैं (ते) वे (साहू) साधु (जिणधम्मविराहिया) जिनधर्म के विरोधी हैं।

Aakriti

भावार्थ - जो साधु आरम्भ, धन-धान्य, उपकरणों में आकांक्षा रखते हैं तथा ईर्ष्यालु हैं, व्रत, गुण, शील से रहित हैं, कषायप्रिय और कलहप्रिय हैं, वाचाल हैं, संघ का विरोध करते हैं, कुशील हैं, स्वच्छंद हैं, गुरू के समीप नहीं रहते हैं, अज्ञानी हैं और राजा आदि की सेवा करते हैं, वे साधु जैन धर्म के विराधक हैं।

साधुओं के लिए दूषण योग्य कार्य

जोइस वेज्जा- मंतोवजीवणं वायवस्स ववहारं।
धणधण्णपडिग्गहणं, समणाणं दूसणं होदि ॥ 103 ॥

ज्योतिष वैद्यक मंत्राजीवक , भूत वात कारी व्यापार ।
प्रतिग्राही धन धान्य का जानो, दूषण कारी है अनगार ॥103॥

अन्वयार्थ- (जोइस) ज्योतिष (वेज्जा) विद्या (मंतोवजीवणं) मन्त्र विद्या द्वारा आजीविका (चलाना) (वायवस्स) वात- विकार का (भूत प्रेत) (ववहारं) व्यवहार (व्यापार कर) (धण-धण्ण) धन-धान्य (पडिग्गहणं) ग्रहण करना (समणाणं) श्रमणों के (साधुओं के) (दूसणं) दोष (होइ) होते हैं।

भावार्थ - ज्योतिष, वैद्यक, मंत्र-विद्या द्वारा उपजीविका चलाना, वात विकार का व्यापार, भूतप्रेत की झाड़फूंक का व्यापार करना, धन-धान्य का प्रतिग्रहण करना-ये काम श्रमण मुनियों के लिये दूषण स्वरूप हैं।

सम्यक्त्वहीन साधु

जे पावारंभरदा, कसायजुत्ता परिग्गहासत्ता।
लोयववहार पउरा, ते साहू सम्मउम्मुक्का ॥104 ॥

पापारम्भ में रत जो साधू , हो कषाय परिग्रह आशक्त ।
लोक व्यवहार में हो निमग्न, वह सम्यक् दर्शन से हो रिक्त ॥104।

अन्वयार्थ- (जे) जो (साहू) साधु (पापरंभरया) पाप आरम्भ में रत हैं (कसायजुत्ता) कषाय से सहित हैं (परिग्गहासत्ता) परिग्रह में आसक्त हैं (लोयववहारपउरा) लोक व्यवहार में चतुर हैं (ते) वे (सम्म) सम्यक्त्व से (उम्मुक्का) रहित हैं ।

भावार्थ - जो साधु पाप और आरंभ में रत हैं, कषाययुक्त हैं, परिग्रह में आशक्त हैं, और लोक व्यवहार में निमग्न हैं। वे सम्यक्त्व से रहित हैं।

सम्यक्त्वहीन साधु

ण सहंति इदरदप्पं, थुवंति अप्पाण मप्पमाहप्पं।
जिब्भणिमित्तं कुणंति, कज्जं ते साहू सम्म उम्मुक्का ॥105 ॥

पर प्रशंस जो सहे ना साधू , निज माहात्म्य प्रशंसा वान ।
जिह्वा हेतु कार्य जो करते, वे सम्यक्त्व रहित हैं मान ॥105॥

अन्वयार्थ- जो साधु (इयरदप्पं) दूसरे के बड़प्पन को (ण) नहीं (सहंति) सहन करते (अप्पाणं) अपने को (अप्पमाहप्पं) अपने माहात्म्य को (थुवंति) सराहते हैं (और) (जिब्भणिमित्तं) जिव्हा (स्वाद) के निमित्त (कुणंति) प्रयत्न करते हैं (ते) वे (साहू) साधु (सम्म) सम्यक्त्व से (उम्मुक्का) उन्मुक्त (हैं)।

भावार्थ - जो साधु दूसरों के बड़प्पन को सहन नहीं करते हैं, अपनी और अपने माहात्म्य की प्रशंसा करते हैं, और जिह्वा के लिये कार्य करते हैं, वे सम्यक्त्व से रहित हैं।

पापी धर्मात्मा से द्वेष करता है

चम्मट्ठि मंललुद्धो सुणहो गज्जदे मुणिं दिट्ठा।
जह तह पाविट्ठो सो, धम्मिट्ठं दिट्ठा सगीयट्ठो॥ 106॥
ज्यों चार्मास्ति मांस का लोभी ,भोंके मुनि को देखे वान ।
स्वार्थ वशात् देख धर्मी को, कलह करे पापी अज्ञान ॥106॥

अन्वयार्थ- (जह) जैसे (चमिट्ठमंस) चर्म, अस्थि माँस के (लव) टुकड़े का (लुद्धो) लोभी (सणुहो) श्वान (मुणिं) मुनि को (दिट्ठा) देखकर (गज्जय) भोंकता है (वैसे ही) (जो) (पाविट्ठो) पापीजन हैं (सो) वह (धम्मिट्ठ) धर्म में स्थित धर्मात्मा को (दिट्ठा) देखकर (सगीयट्ठा) स्वार्थ (अपना मतलब) सिद्ध करता है।

भावार्थ - जैसे चर्म, अस्थि और माँस-खण्ड का लोभी कुत्ता मुनि को देखकर भोंकता है, इसी प्रकार जो पापी है, वह स्वार्थवश धर्मात्मा को देखकर कलह करता है।

मोक्षमार्ग में रत साधु

भुंजेदि जहालाहं लहेदि जइ णाण संजमणिमित्तं।
झाणज्झयणणिमित्तं अणयारो मोक्खमग्गरदो॥107॥
यथा लाभ भोजन जो साधू , संयम ज्ञान की वृद्धीवान ।
ध्यानाध्ययन की वृद्धि हेतु जो,ग्रहण करे मोक्ष मार्गी जान ॥107॥

अन्वयार्थ- (जो) (जइ) यति (साधु) (जहा लाहं) यथा लाभ (जो कुछ प्राप्त होता है) (भुंजेइ) भोजन करता है (वह) (णाणसंजम) ज्ञान और संजम (णिमित्तं) हेतु (झाणज्झायण) ध्यान (और) अध्ययन (णिमित्तं) हेतु (लहेइ) ग्रहण करता है (वह) (मोक्खमग्गरओ) मोक्ष मार्ग में रत (अणयारो) अनगार है।

भावार्थ - जो साधु यथालाभ [जो प्राप्त हो गया] भोजन या आहार करता है, ज्ञान और संयम की वृद्धि के लिये तथा ध्यान और अध्ययन के निमित्त ग्रहण करता है। वह मोक्ष मार्ग में रत है।

Aakruti

मुनि चर्या के भेद

उदरग्गि समण मक्ख मक्खण गोयार सब्भपूरण भमरं।
णाऊण तप्पयारे, णिच्चेवं भुंजए भिक्खू ॥108॥
स्वभ्र पूर्ण उदराग्नि शमन औ, भ्रामरी वृत्ती गोचरी जान ।
अक्ष मृक्षण ये पंच प्रकारी, साधू भोजन लें गुणवान ॥108॥

अन्वयार्थ- (उयरग्गिसमणं) उदराग्निशमन (अक्खमक्खण) अक्षम्रक्षण (गोयार) गोचरी (सुब्भपूरण) श्वभ्रपूरण (और) (भमरं) भ्रामरी (और) (तप्पयारे) उसके प्रकारों को (णाऊण) जानकर (भिक्खू) साधु (णिच्चेवं) नित्य ही (भुञ्जदे) आहार ग्रहण करे।

भावार्थ - उदराग्निशमन, अक्षम्रक्षण, गोचरी, श्वभ्रपूरण और भ्रामरी के इन भेदों को जानकर साधु नित्य ही आहार ग्रहण करता है।

धर्म साधना के लिए मुनि आहार लेते हैं

रसरुहिर मंसमेदट्ठि ,सुकिल मल मुत्तपूयकिमि बहुलं।
दुग्गंध मसुइ चम्ममय, मणिच्च मचेदणं पडणं॥ 109॥
बहुदुक्खभायणं, कम्मकारणं भिण्णमप्पणो देहं।
तं देहं धम्माणुट्ठाण, कारणं चेदि पोसदे भिक्खू॥ 110॥
रुधिर मांस रस मेदा हड्डी , शुक्र मूत्र मल कीड़ोंवान ।
अपवित्र दुर्गन्ध चर्म मय, रहा अचेतन जो नाशवान ॥109॥
पीव अनित्य पात्र है दुख का, कर्माश्रव का कारण जान।
आतम से है भिन्न धर्म का, साधन जाना पोसत मान ॥110॥

अन्वयार्थ - (देहं) शरीर (रस) रस (रूधिर) रुधिर (मंस) मांस (मेद) मेदा (अट्ठि) अस्थि (सुकिल) शुक्र (मल) मल (मुत्त) मूत्र (पूय) पीव (किमि) कीड़े (बहुलं) से भरा हुआ (दुग्गंधं) दुर्गन्धयुक्त (असुइ) अपवित्र (चम्ममयं) चर्ममय (अणिच्चं) अनित्य (अचेदणं) अचेतन (पउणं) पतनशील (बहुदुक्ख भायणं) अनेक दुक्खों का पात्र (कम्मकारणं) कर्मास्रव का कारण (अप्पणो) आत्मा से (भिण्णं) भिन्न है (तं) उस (देहं) शरीर को (धम्माणुट्ठाणकारणं) धर्मानुष्ठान का कारण है (चेदी) यह मानकर (भिक्खू) भिक्षु साधु (पोसदे) पालन पोषण करता है।

भावार्थ - यह शरीर रस, रुधिर, मांस, मेदा, अस्थि, शुक्र, मल, मूत्र, पीव और कीड़ों से भरा हुआ, दुर्गन्धयुक्त, अपवित्र, चर्ममय, अनित्य, अचेतन, नाशवान, अनेक प्रकार के दुःखों का पात्र, कर्मास्रव का कारण और आत्मा से भिन्न है। यह देह धर्मानुष्ठान का कारण है,यह मानकर साधु उस देह का पालन पोषण करता है।

मुनिराज शरीर पुष्टि के लिए आहार नहीं लेते

संजमतव झाणज्झयण, विणाणए गिण्हदे पडिगहणं।
वज्जदि गिण्हदि भिक्खू, ण सक्कदे वज्जिदुं दुक्ख ॥111॥
ध्यानाध्ययन संयम तव हेतू, लें विज्ञान हेतु आहार ।
साधु छोड़ यह भोजन लेवें, दुखों का इनके हो क्षार ॥111॥

अन्वयार्थ- (भिक्खू) साधु (संजम) संयम (तव) तप (झाणज्झयण) ध्यान अध्ययन (विणाणए) विज्ञान के लिए (पडिग्गहणं) प्रतिग्रहण/आहार (गिण्हए) ग्रहण करता है। वह यदि (वच्चइ) इन कारणों को छोड़ता है और (गिण्हए) शरीर की पुष्टि के लिए आहार ग्रहण करता है तो वह (दुक्खं) दुख को (वज्जिदुं) छोड़ने के लिए (सक्कदे) समर्थ (ण) नहीं है।

भावार्थ - साधु संयम तप, ध्यान, अध्ययन और विज्ञान [वीतराग विज्ञान] के लिये आहार ग्रहण करता है। [जो साधु इन कारणों को] छोड़ता है, [और शरीर पुष्टि के लिये] आहार ग्रहण करता है, वह दुःखों को छोड़ने में समर्थ नहीं होता है।

मलिन परिणामों से आहार लेने वाले साधु नहीं हैं

कोहेण य कलहेण य, जायणसीलेण संकिलेसेण।
रुद्देण य रोसेण य, भुंजदि किं विंतरो भिक्खू॥ 112॥
क्रोध कलह संक्लिष्ट रौद्र हो , रुष्ट याचना सेआहार ।
लेता है जो क्या है साधू ? वह तो व्यन्तर करो विचार ॥112॥

अन्वयार्थ- जो साधु (कोहेणय) क्रोध से (कलहेणय) कलह से (जायणसीलेण) याचना करके (संकिलेसेण) संक्लेश परिणामों से (रुद्देण य) रौद्र परिणामों से (रोसेण य) और रुष्ठ होकर (भुञ्जइ) भोजन करता है तो वह (किं) क्या (भिक्षू) साधु है। (वह तो) (विंतरो) व्यन्तर है।

भावार्थ - जो साधु क्रोध से, कलह करके, याचना करके, संक्लिष्ट परिणामों से, रौद्र परिणामों से और रुष्ट होकर आहार ग्रहण करता है, वह क्या साधु है ? वह तो व्यंतर है।

मुनि शुद्ध आहार ग्रहण करता है

दिव्वुत्तरणसरिच्छं, जाणिज्जाहो धरेदि जइ सुद्धो।
तत्तायसपिंडसमं, भिक्खु तुह पाडिगदपिंडं॥ 113॥
लोह पिण्ड सम शुद्ध हाथ में, मिलता यदि तुमको आहार ।
दिव्य नाव सम उसे जानकर, ग्रहण करो तुम हे अनुराग ॥113॥

अन्वयार्थ- (अहो! भिक्खू) हे मुने! (जइ) यदि (तुह) तेरे (पाडिगयपिंडं) हाथ पर रखा हुआ आहार (तत्तायसपिंडसमं) तपे हुए लोहे के पिण्ड के समान (सुद्धो) शुद्ध है तो उसे (दिव्वुत्तरण) दिव्य नौका (सरित्थ) समान (जाणिज्जा) जानकर (धरेइ) ग्रहण करें।

भावार्थ - हे मुनि ! यदि तेरे हाथ पर रखा हुआ आहार तपे हुये लोहे के पिण्ड के समान शुद्ध है तो उसे दिव्य नौका के समान जानकर ग्रहण कर।

पात्र अनेक प्रकार के हैं

अविरद देस महव्वय, आगमरुइणं वियार तच्चण्हं।
पत्तंतरं सहस्सं, णिद्दिट्ठंजिणवरिंदेहिं ॥114॥

अविरत देश व्रती श्रावक ओ, महाव्रती आगम रचिवान।
तत्त्व विचार आदि जिनेश्वर, पात्र हजारों कहे महान ॥114॥

अन्वयार्थ- (जिणवरिंदेहि) जिनेन्द्रदेव ने (अविरद) अविरत (सम्यग्दृष्टि) सम्यग्दृष्टि (देस) देशव्रती श्रावक (महव्यय) महाव्रती मुनि (आगमरुइणं) आगम में रुचि रखने वाले और (वियारतच्चण्हं) तत्वविचारकों के भेद से (सहस्सं) सहस्र (पत्तंतरं) पत्रान्तर पात्र भेद (णिद्दिट्ठं) कहे हैं।

भावार्थ - जिनेन्द्र देव ने अविरत सम्यग्दृष्टि, देशव्रती श्रावक, महाव्रती मुनि, आगम में रुचि रखने वाले और तत्त्व विचारकों के भेद से हजारों प्रकार के पात्र बताये हैं।

मुनि उत्तम पात्र हैं

उवसम णिरीह झाणज्झयणादि महागुणा जहा दिट्ठा।
जेसिं ते मुणिणाहा, उत्तमपत्ता तहा भणिदा॥ 115॥

ध्यानाध्ययन उपशम निरीहता, आदि के सुगुण महान ।
उसी तरह वे मुनिवर उत्तम, पात्र कहे हैं जगत प्रधान॥115॥

अन्वयार्थ- (जेसिं) जिन मुनियों में (उवसम) प्रशम (णिरीह) निरीहता- निस्पृहता (झाणज्झयणाइ) ध्यान अध्ययन आदि (महागुणा) महान् गुण (जहा) जैसे (कहे गये हैं) (तहा) वैसे (दिट्ठा) दिखाई देते हैं (ते) वे (मुणिणाहा) मुनिनाथ (उत्तमपत्ता) उत्तमपात्र (भणिया) कहे गये हैं।

भावार्थ - जिन मुनियों में उपशम, निरीहता, ध्यान, अध्ययन आदि महान गुण जैसे देखे गये, उसी प्रकार वे मुनिराज उत्तम पात्र कहे गये हैं।

आत्मज्ञान के बिना तप संसार का कारण है

णवि जाणदि जिणसिद्ध, सरूवं तिविहेण तह णियप्पाणं।
जो तिव्वं कुणदि तवं सो, हिंडदि दीहसंसारे ॥116॥

अर्हत् सिद्धों का स्वरूप जो , त्रय प्रकार आतम का ज्ञान।
नहीं है जिस को तप कर भी , भ्रमण करे संसार महान ॥116॥

अन्वयार्थ- (जो) जो व्यक्ति (जिण) जिन को (सिद्धं-सरूवं) सिद्ध स्वरूप को (तह) तथा (णियप्पाणं) निजात्मा को (तिवेहेण) तीन प्रकार से (णवि) नहीं (जाणइ) जानता है (सो) वह (तिव्वं) घोर (तवं) तप करता हुआ भी (दीहसंसारे) दीर्घ संसार में (हिंडइ) भ्रमण करता है।

भावार्थ – जो अरहंत और सिद्ध का स्वरूप तथा [बहिरात्मा, अंतरात्मा, परमात्मा] तीन प्रकार के भेद से अपनी आत्मा को भी नहीं जानता, वह तप करता हुआ भी दीर्घ संसार में भ्रमण करता है।

पात्र विशेष के लक्षण

दंसण सुद्धो धम्मज्झाण, रदो संगवज्जिदो णिस्सल्लो।
पत्तविसेसो भणिदो, ते गुणहीणो तु विवरीदो॥117॥
सम्मादिगुणविसेसं, पत्तविसेसं जिणेहिं णिद्दिट्ठं।
तं जाणिदूण देदिसुदाणं, जो सो हु मोक्खरदो॥ 118॥

दर्शन शुद्ध परिग्रह विरहित , धर्म ध्यान रत शल्य विहीन ।
पात्र कहे इन गुण से विरहित हैं, अपात्र जिन कहे प्रवीण ॥117॥
गुण विशेष सम्यक्त्वादि हैं, जिन कहते वह पात्र महान ।
दान देय उस पात्र को है वह, मोक्ष मार्ग रत श्रावक जान ॥118॥

अन्वयार्थ – (दंसणसुद्धो) सम्यग्दर्शन से शुद्ध (धम्मज्झाणरदो) धर्मध्यान में रत (संगविज्जदो) परिग्रह रहित (णिसल्लो) निशल्य (पत्तविसेसो) पात्र विशेष (भणिया) कहे गये हैं (गुणहीनों) गुणों से हीन हैं (ते) वे (दु) तो (विवरीदो) विपरीत अपात्र हैं। जिसमें (सम्माइगुणविसेसं) सम्यक्त्वादि विशेष गुण हैं वह (जिणेहिं) जिनेन्द्र देव के द्वारा (पत्तविसेसं) पात्र विशेष (णिद्दिट्ठं) कहा गया है (जो) जो (तं) उसको (जाणिऊण) जानकर (दाणं) दान (देइसु) दिया जाता है (देता है) (सोहु)वह भी (मोक्खरओ) मोक्ष में रत होता है।

भावार्थ – निर्दोष सम्यग्दर्शन वाले, धर्मध्यान में रत, परिग्रहरहित और तीन शल्यों [माया, मिथ्यात्व और निदान] से रहित विशेष पात्र कहे गये हैं। जो इन तीन गुणों से रहित हैं, वे तो विपरीत अपात्र हैं। जिसमें सम्यक्त्वादि विशेष गुण हैं, उसे जिनेन्द्र देव ने विशेष पात्र कहा है, जो व्यक्ति उस पात्र विशेष को जानकर सुदान देता है, वह निश्चय से मोक्षमार्ग में रत है।

रत्नत्रय दो प्रकार का है

णिच्छय ववहार सरूवं, जो रयणत्तयं ण जाणइ सो।
जं कीरइ तं मिच्छा, रूवं सव्वं जिणुदिट्ठं॥ 119॥

निश्चय अरु व्यवहार स्वरूपी, रत्नत्रय के ज्ञान विहीन ।
मिथ्यात्व रूप कार्य है उसका,कहते जिनवर ज्ञान प्रवीण॥119॥

अन्वयार्थ – (जो)जो (णिच्छयववहार) निश्चय-व्यवहार (सरूवं) स्वरूप (रयणत्तयं) रत्नत्रय को (ण)नहीं (जाणइ) जानता (है) (सो) वह (जं) जो (कुछ) (कीरइ) करता है (तं) वह (सव्वं) सब (मिच्छारूवं) मिथ्यात्वरूप है (ऐसा) (जिणुद्दिट्ठं) जिन देव ने कहा (है)।

भावार्थ - जो निश्चय और व्यवहार स्वरूप वाले रत्नत्रय को नहीं जानता है, वह जो करता है, सब मिथ्यारूप है, यह जिनेन्द्रदेव ने कहा है।

सम्यक्त्व के बिना ज्ञान और तप भव बीज हैं

किं जाणिदूण सयलं, तच्चं किच्चा तवं च किं बहुलं।
सम्म विसोही विहीणं, णाण तवं जाण भववीयं ॥120॥

सर्व तत्व को जान के तप कर,भी क्या लाभ मिले हे जीव!।
हो सम्यक्त्व विशुद्धी विरहित, ज्ञान और तप भव का बीज ॥120।

अन्वयार्थ- (सयलं) सकल (सम्पूर्ण) (तच्चं) तत्व को (जाणिऊण) जानकर भी (किं) क्या ? (च) और (बहुल) विपुल (तवं) तप (किच्चा) करके भी (किं) क्या ? (सम्मविसोही) सम्यक्त्व की विशुद्धि (विहीण) रहित (णाण) ज्ञान (तवं) तप को (भवबीयं) भवबीज (जाण) जानो।

भावार्थ - संपूर्ण तत्त्व को जानकर भी क्या लाभ है ? और बहुत तप करके भी क्या लाभ है ? सम्यक्त्व की विशुद्धि से विहीन ज्ञान और तप को संसार का बीज कारण जानो।

सम्यक्त्व के बिना चारित्र संसार का कारण है

वयगुण सील परीसह, जयं च चरियं च तवं छडावसयं।
झाणज्झयणं सव्वं, सम्मविणा जाण भववीयं॥ 121॥

षट् आवश्यक शील चरित तप, परिषह जय अध्ययन व्रत ध्यान ।
सुगुण आदि सम्यक्त्व बिना सब ,भव के बीज कहे भगवान॥121॥

अन्वयार्थ- (वय) व्रत (गुण) गुण (सील) शील (परीसहजय) परीषहजय (चरियं) चारित्र (तवं) तप (च) और (छडावसयं) छह आवश्यक (क्रियायें) (झाणज्झयणं) ध्यान-अध्ययन (सव्वं) सब (सम्म) सम्यक्त्व के (विणा) बिना (भवबीयं) भव का बीज (जाण) जानो।

भावार्थ - व्रत, गुण, शील, परीषह-जय, चारित्र, तप, षट् आवश्यक ध्यान और अध्ययन यह सब सम्यक्त्व के बिना भव बीज [संसार का कारण] जानो।

चाह से परलोक बिगड़ता है

खाई पूयालाहं, सक्काराइं किमिच्छसे जोई।
इच्छसि जदि परलोयं, तेहिं किं तुज्झ परलोयं॥122॥

हे योगी! पर लोक चाहते , तो ख्याती पूजा सत्कार ।
आदिक क्या? चाहो इनसे क्या, भ्रमण छूट सकता संसार ॥122॥

अन्वयार्थ- (जोई) हे योगी! (जइ) यदि (परलोयं) परलोक को (इच्छसि) चाहते हो तो (खाई) ख्याति (पूया) पूजा (लाहं) लाभ (सक्काराइं) सत्कारादि को (किमिच्छसे) क्यों चाहते हो ? (किं) क्या (तेहिं) उनसे (तुज्झ) तुझे (परलोयं) परलोक की प्राप्ति हो जावेगी? अर्थात् नहीं होगी।

भावार्थ - हे योगी! यदि तू परलोक चाहता है तो ख्याति, पूजा, लाभ, सत्कार, आदि क्यों चाहता है, इनसे तुझे क्या परलोक अच्छा मिलेगा? अर्थात् नहीं मिलेगा।

आत्मरुचि से निर्वाण होता है

कम्माद विहाव सहाव, गुणं जो भाविदूण भावेण।
णियसुद्धप्पा रुच्चइ, तस्स च णियमेण होदि णिव्वाणं॥123॥
जो कर्मादि विभाव छोड़कर, स्वाभाविक गुण चिन्तनवान ।
शुद्धातम में रुचकारी मुनि, नियम से पाते हैं निर्वाण ॥123॥

अन्वयार्थ- (जो) जो जिस मुनि को (कम्माद) कर्म से जनित (विहाव) विभाव (य) और (सहावगुणं) स्वभाव गुण (भावेण) भाव पूर्वक (भाविऊण) मननकर (णिय) निज (सुद्धप्पा) शुद्धात्मा (रुच्चइ) रुचता है (अस्स) उसके (णियमेण) नियम से (णिव्वाणं) निर्वाण (होइ) होता है।

भावार्थ - जो मुनि कर्मजनित विभाव-भाव [रागद्वेष आदि] तथा उनके नाश से आत्मा के क्षमादि स्वाभाविक गुणों का भावपूर्वक मनन करके निज शुद्धात्मा में रुचि करता है, उसका नियम से निर्वाण होता है।

कर्मों से मुक्त जीव तत्त्वों को जानता है

मूलुत्तरुत्तर दव्वादो, भावकम्मदो मुक्को।
आसव बंधण संवर, णिज्जर जाणेदि किं बहुणा॥124॥
द्रव्य कर्म मूलोत्तर प्रकृति , भाव कर्म से मुक्तविशेष ।
आश्रव संवर बन्ध निर्जरा, तत्व जानना कहे जिनेश ॥124॥

अन्वयार्थ- (मूलुत्तरूत्तरदव्वादो) कर्मों की मूल और उत्तर प्रकृतियाँ तथा उत्तरोत्तर द्रव्य कर्म से (भावकम्मदो) भाव कर्म से (मुक्को) मुक्त (जीव) (आसव) आस्रव (बंधण) बन्ध (संवर) (णिज्जर) निर्जरा (जाणेइ) जानता है (किं बहुणा) अधिक क्या (कहना)?

भावार्थ - कर्मों की मूल प्रकृतियाँ [ज्ञानावरणादि], उत्तर प्रकृतियाँ [मतिज्ञानावरणादि] और उत्तरोत्तर [अवग्रहादि] रूप द्रव्य कर्म से [तथा रागद्वेषादि] भावकर्म से मुक्त जीव आस्रव, बंध, संवर और निर्जरा तत्त्वों को जानता है। बहुत कहने से क्या लाभ है?

विषय विरक्त मुनि मुक्त होता है

विसय विरत्तो मुंचदि, विसयासत्तो ण मुंचदे जोई।
बहिरंतर परमप्पा, भेयं जाणाहि किं बहुणा॥125॥
विषय विरक्त कर्म से छूटे , छूटे ना अशक्तिवान ।
बहिरातम अन्तर आतम, तीन भेद जानो गुणवान ॥125॥

Aakriti

अन्वयार्थ- (विसयविरत्तो) विषयों से विरक्त (जोइ) योगी (विषयों को) (मुंचई) छोड़ता है (विसयासत्तो) विषयासक्त (ण) नहीं (मुंचई) छोड़ता है (इसलिये) (बहिरंतर) बहिरात्मा अन्तरात्मा (और) (परमप्पा) परमात्मा के (भेयं) भेद को (जाणेह) जानो (बहुणा) बहुत (कहने से) (किं) क्या ? आत्मा की पहिचान ही सब कुछ है।

भावार्थ - विषयों से विरक्त योगी कर्मों से छूटता है, विषयों में आसक्त नहीं छूटता। आत्मा के बहिरात्मा, अंतरात्मा और परमात्मा, इन तीन भेदों [के स्वरूप] को जानो। बहुत कहने से क्या लाभ है?

बहिरात्मा का लक्षण

णिय अप्प णाण झाणज्झयण सुहामिय रसायणंपाणं।
मोत्तूणक्खाण सुहं, जो भुंजदि सो हु बहिरप्पा॥ 126॥

ध्यानाध्ययन निज आत्म ज्ञान ,और सुखरूपी अमृत रस पान ।
छोड़ के इन्द्रिय का सुख भोगे ,निश्चय से बहिरातम जान ॥126॥

अन्वयार्थ- (णिय) निज (अप्प) आत्मा के लिए (णाण) ज्ञान (झाणज्झयण) ध्यान-अध्ययन (सुहामिय) शुभ अमृत (रसायणप्पाणं) रसायन पान को (मोत्तूण) छोड़कर (जो) जो (अक्खाणसुहं) इंद्रिय सुख को (भुंजई) भोगता है (सो) वह (हु) निश्चय ही (बहिरप्पा) बहिरात्मा है।

भावार्थ - जो मनुष्य अपनी आत्मा के ज्ञान, ध्यान, अध्ययन और सुखरूपी अमृत रसायन का पान छोड़कर इन्द्रियों का सुख भोगता है, वह निश्चय से बहिरात्मा है।

इन्द्रिय-विषय दुःख परिणामी हैं

किंपायफलं पक्कं , विसमिस्सिदमोदगिंद वारुण सोहं।
जिब्भसुहं दिट्ठिपियं, जह तह जाणक्खसोक्खं वि॥127॥

फल किंपाक पक्क विष मिश्रित , इन्द्रायण फल शोभावान ।
दृष्टि प्रिय जिह्वा सुखकारी, त्यों इन्द्रिय के विषय सुजान ॥127॥

अन्वयार्थ- (जहु) जैसे (पक्कं) पका हुआ (किंपायफलं) किम्पाक फल (विसमिस्मिद) विष मिश्रित (मोदमिव) मोदक के समान सुन्दर शुभ (तथा) (जिब्भसुहं) जीभ को सुखकर (दिट्ठिपियं) दृष्टि प्रिय होता है (तहु) वैसे (अक्खसोक्खं) इन्द्रिय सुख (वि) भी (जाण) जानो।

भावार्थ - जैसे पका हुआ किंपाक फल, विषमिश्रित मोदक और इन्द्रायण फल देखने में सुन्दर होते हैं, जीभ को भी सुख देते हैं, दृष्टि को भी प्रिय लगते हैं [किन्तु परिणाम में दुःखदायी होते हैं], उसी प्रकार इन्द्रिय-सुखों को भी जानो।

Arihant

पर को निज मानने वाला बहिरात्मा है

देहकलत्तं पुत्तं , मित्तादि विहाव चेदणा रूवं।
अप्पसरूवं भावदि , सो चेव हवेदि बहिरप्पा ॥128॥
स्त्री पुत्र मित्र तन आदिक, और विभाव चेतना जान।
आतम रूप भाय इन सबको ,वह प्राणी बहिरातम मान ॥128॥

अन्वयार्थ- (जो) (देह) देह शरीर (कलत्तं) पत्नी (पुत्तं) पुत्र (मित्ताइ) मित्र आदि (विहावचेदणा) विभाव चेतना (रूवं) रूप को (अप्पसरूवं) आत्म स्वरूप (भावइ) भाता है (सो) वह (चेव) ही (बहिरप्पा) बहिरात्मा (हवेइ) होता है।

भावार्थ - जो मनुष्य शरीर, स्त्री, पुत्र, मित्र आदि और विभाव चेतना [राग-द्वेष आदि वैभाविक परिणामों] को आत्मस्वरूप भाता है या मानता है, वही बहिरात्मा है।

विषयों में सुख मानने वाला बहिरात्मा है

इंदियविसयसुहादिसु , मूढमदी रमदि ण लहदि तच्चं।
बहुदुक्खमिदि ण चिंतदि, सो चेव हवेदि बहिरप्पा ॥129॥
इन्द्रिय विषय सुखों में रमता , जो अज्ञानी बिना विचार ।
दुखकर आत्म तत्त्व में बाधक , बहिरातम है जीव अपार ॥129॥

अन्वयार्थ- (मूढ़मई) अज्ञानी जीव (इंदियविसय) इंद्रिय के विषय (सुहादिसु) सुखादि में (रमइ) रम जाता है (बहुदुक्खं) ये इंद्रिय विषय बहुत दुख दायी हैं (इदि) यह (ण) (चिंतइ) विचार नहीं करता है वह (तच्चं) तत्त्व को (ण) नहीं (लहइ) प्राप्त होता है। (सो चेव) वह ही (बहिरप्पा) बहिरात्मा (हवेइ) होता है।

भावार्थ - जो अज्ञानी जीव इन्द्रिय-विषयों के सुख में रम जाता है। ये इन्द्रिय विषय बहुत दुःखदायी हैं, इस बात का विचार नहीं करता। वह आत्मतत्त्व को नहीं पाता। वही जीव बहिरात्मा होता है।

बहिरात्मा कौन है?

जं जं अक्खाणसुहं , तं तं तिव्वं करेदि बहुदुक्खं।
अप्पाणमिदि ण चिंतदि, सो चैव हवेदि बहिरप्पा ॥130॥
इन्द्रिय के जो जो सुख हैं वे , आतम को दें दुःख अपार ।
बहिरातम इस बात का कोई, करता नहीं है कभी विचार ॥130॥

अन्वयार्थ- (जं जं) जितने (अक्खाणुसुहं) इन्द्रिय सुख हैं (तं तं) वे (सब) (अप्पाणं) आत्मा को (तिव्वं) तीव्र (बहुदुक्खं) अनेक प्रकार के दुख (करेइ) देते हैं (इदि) इस प्रकार जो (ण) नहीं विचार करता (सो चैव) वही (बहिरप्पा) बहिरात्मा (हवेइ) होता है।

भावार्थ - इन्द्रियों के जितने सुख हैं, वे सब आत्मा को अनेक प्रकार के तीव्र दुःख देते हैं। इस बात का जो विचार नहीं करता, वही बहिरात्मा होता है।

बहिरात्मा की रुचि इन्द्रिय-विषयों में रहती है

जेसिं अमेज्झमज्झे, उप्पण्णाणं हवेदि तत्थ रुई।
तह बहिरप्पाणं, बहिरिंदिय विसएसु होइ मदी।। 131।।

विष्टा में उत्पन्न कीट की, रुचि विष्टा में होय प्रधान ।
इन्द्रिय विषयों में बहिरातम, की बुद्धी भी होय सुजान॥131॥

अन्वयार्थ- (जेसिं) जैसे (अमेज्झ) विष्टा के (मज्झे) मध्य में (उप्पण्णाणं) उत्पन्न (कीड़े की) (रुई) रुचि (तथ्य) उसी विष्टा में (हवेइ) होती है (तह) उसी प्रकार (बहिरप्पाणं) बहिरात्मा की (मई) बुद्धि (बहिरिंदि) बाह्य-इन्द्रिय (विसएसु) विषयों में (होइ) होती है।

भावार्थ - जैसे विष्टा में उत्पन्न हुये कीड़े की रुचि उसी विष्टा में होती है, उसी प्रकार बहिरात्मा की बुद्धि बाह्य इन्द्रिय-विषयों में होती है।

बहिरात्मा को विवेक नहीं होता

पूय सूय रसाणाणं, खारामिय भक्खाभक्खणाणं पि।
मणु जाइ जहा मज्झे, बहिरप्पाणं तहा णेयं॥ 132॥

अपवित्र व खाद्य रसों में, भक्ष्याभक्ष अमृत या क्षार ।
में विवेक मानव जाती ना ,करे होय बहिरात्म विचार ॥132॥

अन्वयार्थ- (जहा) जैसे (मणुजाइ) मनुष्य जाति (पूय सूय रसाणाणं) अपवित्र और खाने योग्य रसों में (खारामिय-भक्खाभक्खणाणं पि) क्षार और अमृत, भक्ष्य और अभक्ष्य के (मज्झे) मध्य विवेक नहीं करती (तहा) उसी प्रकार (बहिरप्पाणं) बहिरात्मा को (णेयं) जानना चाहिए।

भावार्थ - जैसे मनुष्य जाति अपवित्र [अखाद्य] और खाद्य रसों, क्षार और अमृत, भक्ष्य और अभक्ष्य के मध्य विवेक नहीं करती, उसी प्रकार बहिरात्मा को जानना चाहिये [वह भी आत्मा और अनात्मा के मध्य विवेक नहीं करता]।

अन्तरात्मा की पहचान

सिविणे वि ण भुंजदि, विसयाइं देहाइ भिण्णभावमदी।
भुंजदि णियप्परूवो, सिवसुहरत्तो दु मज्झिमप्पो सो॥133॥

स्वप्न में भी विषयादि ना भोगे , देह आत्मा जाने भिन्न ।
आत्मानुभव शिव सुख रत मानव, मध्यम अन्तर आत्म विभिन्न॥133॥

अन्वयार्थ- (देहादिभिण्णभावमई) जो आत्मा को शरीरादि से भिन्न मानने वाला है (सिविणे) स्वप्न में (वि) भी (विसयाई) विषयादि को (ण) नहीं (भुंजइ) भोगता है (णियप्परूवो) आत्मा के निज

स्वरूप को (भुञ्जइं) अनुभव करता है (दु) और (सिवसुहरत्तो) शिव सुख में लीन रहता है (सो) वह (मज्झिमप्पो) मध्यमात्मा अन्तरात्मा है।

भावार्थ - जो आत्मा को देहादि से भिन्न मानता है, जो स्वप्न में भी विषयादि को नहीं भोगता है, जो आत्मा के निज स्वरूप का अनुभव करता है और शिवसुख में लीन रहता है, वह मध्यात्मा [अंतरात्मा] होता है।

अनादिकालीन वासना नहीं छूटती है

मल मुत्त घडव्व , चिरंवासिद दुव्वासणं ण मुंचेदि।
पक्खालिद सम्मत्तजलो य, णाणमएण पुण्णो वि ॥134॥

ज्यों प्राचीन मूत्र मल युत घट , से दुर्गन्ध ना छूटे जान ।
त्यों सम्यकजल ज्ञान युक्त हो, भी दुर्भास ना छूटे आन ॥134॥

अन्वयार्थ- यह जीव (पक्खालिय सम्मत्तजलो) सम्यक्त्व रूपी जल से धोने पर (य) और (णाणम्मएण) ज्ञानामृत से (पुण्णो वि) पूर्ण होने पर भी (चिरवासिय) चिरकाल से दुर्वासित (मलमुत्तघडव्व) मल मूत्र से भरे हुए घड़े के समान (दुव्वासणं) दुर्वासना को (ण) नहीं (मुंचेई) छोड़ता है।

भावार्थ - जैसे बहुत समय से दुर्गन्धित मल-मूत्र वाले घड़े से दुर्गन्ध नहीं छूटती है, उसी प्रकार सम्यक्त्व रूपी जल से धोने पर और ज्ञानामृत से पूर्ण होने पर अनादिकालीन दुर्वासना नहीं छूटती है।

सम्यग्दृष्टि अनिच्छापूर्वक भोग भोगता है

सम्माइट्ठी णाणी, अक्खाणसुहं कहं पि अणुहवदि।
केणावि ण परिहरणं, हिविणासट्ठ भेसज्ज॥ 135॥

सम्यक्त्वी ज्ञानी इन्द्रिय के ,सुख का अनुभव करे विशेष ।
रोग दूर करने को औषधि, छोड़े ना ज्यों नर अवशेष ॥135॥

अन्वयार्थ- (सम्माइट्ठी) सम्यग्दृष्टि (णाणी) ज्ञानी (कहं पि) किसी प्रकार अनिच्छा पूर्वक (अक्खाणसुहं) इन्द्रिय सुख का (अणुहवइ) अनुभव करता है। (विहिविणासट्ठ) व्याधि को दूर करने के लिए (भेसज्ज) औषधि (केणावि) किसी के भी द्वारा (परिहरणं ण) छोड़ी नहीं जाती है।

भावार्थ - सम्यग्दृष्टि ज्ञानी किसी प्रकार [अनिच्छापूर्वक] इन्द्रियों के सुख का अनुभव करता है, जैसे - रोग दूर करने के लिये कोई औषधि नहीं छोड़ता। [इच्छा न होने पर भी रोग दूर करने के लिये औषधि लेनी पड़ती है]।

अन्तरात्मा बनो, परमात्म-पद की भावना करो

किं बहुणा हो तजि, बहिरप्प सरूवाणि सयलभावाणि।
भजि मज्झिम परमप्पा, वत्थु सरूवाणि भावाणि॥ 136॥

क्या है लाभ अधिक कहने से, हे भवि! बहिरातम स्वरूप ।
सर्व भाव तज अन्तर आतम, परमातम भज वस्तु स्वरूप ॥136॥

अन्वयार्थ- (हो) हे भव्यात्मा! (किं बहुणा) अधिक कहने से क्या लाभ? (बहिरप्पसरूवाणि) बहिरात्मस्वरूप (सयलभावाणि) समस्त भावों को (तजि) छोड़ (मज्झिमपरमप्पा) मध्यम आत्मा और परमात्मा के (वत्थुसरूवाणि) यथार्थ स्वरूप सम्बन्धी वस्तु स्वरूप (भावाणि) भावों को (भजि) भज। अर्थात् प्राप्त करो।

भावार्थ - अधिक कहने से क्या लाभ है ? [संक्षेप में] हे भव्य ! बहिरात्म स्वरूप भावों को छोड़ और अंतरात्मा [मध्यात्मा] तथा परमात्मा के वस्तुस्वरूप संबंधी भावों को भज।

बहिरात्मा-भाव दुःख के कारण है

चउगइसंसार गमण, कारण भूयाणि दुक्खहेदूणि।
ताणि हवे बहिरप्पा, वत्थु सरूवाणि भावाणि॥137॥
बहिरातम के वस्तु स्वरूपी , भाव पुण्य के कारण जान ।
चारों गति संसार भ्रमण अरु, दुःख के कारण रहे महान ॥37॥

अन्वयार्थ- (बहिरप्पा) बहिरात्मा के (वत्थुसरूवाणि) वस्तुस्वरूप सम्बन्धी (जो) (भावाणि) भाव हैं (ताणि) वे सब (चउगइ) चतुर्गति रूप (संसार) संसार (गमनकारणभूयाणि) परिभ्रमण के कारण हैं और (दुक्खहेऊणि) दुःख के कारण (हवे) होते हैं।

भावार्थ - बहिरात्मा के वस्तुस्वरूप संबंधी जो भाव हैं, वे सब पुण्य के कारण हैं और चतुर्गति रूप संसार परिभ्रमण और दुःख के कारण हैं।

अन्तरात्मा के भाव मोक्ष और पुण्य के कारण हैं

मोक्खगदि गमण कारण, भूदाणि पसत्थ पुण्णहेदूणि।
ताणि हवे दुविअप्पा, वत्थुसरूवाणि भावाणि॥ 138॥
अन्तरात्म परमातम दोनों, के वस्तु स्वरूपी भाव ।
वे हैं मोक्ष सुगति में कारण,पुण्य प्रशस्त के रहे प्रभाव।138॥

अन्वयार्थ- (दुविअप्पा) दो प्रकार की आत्मा (अन्तरात्मा और परमात्मा) के (वत्थुसरूवाणि) वस्तुस्वरूप सम्बन्धी जो (भावाणि) भाव हैं (ताणि) वे सब (मोक्खगइ) मोक्षगति में (गमनकारणभूयाणि) गमन में कारण भूत (पसत्थपुण्णहेऊणि) प्रशस्त पुण्य के कारण (हवे) होते हैं। ऐसा जानना चाहिए।

भावार्थ - अंतरात्मा और परमात्मा के वस्तुस्वरूप संबंधी जो भाव होते हैं, वे सब मोक्षगति में कारणभूत प्रशस्त पुण्य से मोक्ष ले जाते हैं।

स्व-परसमयज्ञ ही मोक्ष पाता है

दव्व गुण पज्जएहिं, जाणदि परसगसमयादिविभेदं।
अप्पाणं जाणदि सो, सिवगदि पहणायगो होदि ॥139॥
स्वपर समय आदि के भेदों , को द्रव्य गुण पर्यायों वान ।
निज आतम को जाने सो वह, मोक्ष का नेता रहा महान ॥139॥

अन्वयार्थ-(जो) (परसमय) परसमय (ससमयादिविभयं) स्वसमय आदि के भेद को (दव्वगुणपज्जएहिं) द्रव्य गुण पर्याय से (जाणइ) जानता है (सो) वह (अप्पाणं) अपनी आत्मा को (जाणइ) जानता है (सिवगइ) मोक्ष गति का (पहणायगो) पथनायक (होइ) होता है।

भावार्थ - जो स्वसमय और परसमय आदि के भेद को द्रव्य-गुण-पर्यायों से जानता है, वह अपनी आत्मा को जानता है। वह मोक्ष मार्ग का नेता होता है।

केवल परमात्मा स्वसमय है

बहिरंतरप्पभेदं, परसमयं भण्णदे जिणिंदेहिं।
परमप्पा सगसमयं, तन्भेदं जाण गुणठाणे ॥140॥
बहिरातम अन्तर आतम को, पर समयी कहते भगवान ।
परमातम स्व समय वान है, गुण स्थान से भेद सुजान ॥140।

अन्वयार्थ- (जिणिंदेहिं) जिनेन्द्र भगवान ने (बहिरंतरप्पभेयं) बहिरात्मा और अन्तरात्मा इन भेदों को (परसमयं) परसमय (और) (परमप्पा) परमात्मा (सगसमयं) स्वसमय (भण्णए) कहा है (तन्भेयं) उनके भेद (गुणट्ठाणे) गुण स्थानों की अपेक्षा (जाण) जानो।

भावार्थ - जिनेन्द्र भगवान ने बहिरात्मा और अंतरात्मा को परसमय कहा है और परमात्मा स्वसमय है। उनके भेद गुणस्थानों की अपेक्षा जानो।

गुणस्थानों के अनुसार आत्मा का वर्गीकरण

मिस्सोत्ति बहिरप्पा, तरतमया तुरियं अंतरप्प जहण्णो।
संतोत्तिमज्झिमंतर, खीणुत्तम परमजिणसिद्धा ॥141॥
रहे मिश्र तक बहिरातम तिय, चतुर्थजघन्य अन्तर्आतम।
पाँच से ग्यारह मध्यम क्षीण है, उत्तम फिर जिन परमातम ॥41॥

अन्वयार्थ- (मिस्सो) प्रथम, द्वितीय और तृतीय मिश्र गुण स्थान वाले (त्ति) ये (बहिरप्पा) बहिरात्मा हैं (तरतमया) तरतमता से (तुरियं) चतुर्थगुणस्थानवर्ती (जहण्णो) जघन्य (अंतरप्प) अन्तरात्मा है (संत्तोति) पाँचवें से उपशांत मोह (ग्यारहवें गुणस्थान) तक (मज्झिमंतर) मध्यम अन्तरात्मा (खीणुत्तर) क्षीणमोह (बारहवें गुण स्थान वाले) उत्तम अन्तरात्मा हैं। (परमजिणसिद्धा) जिन (तेरहवें गुणस्थानवर्ती) और चौदहवें गुणस्थानवर्ती तथा सिद्ध परमात्मा हैं।

भावार्थ - मिश्र [प्रथम, द्वितीय, तृतीय गुणस्थान वाले] बहिरात्मा हैं तरतमता से [क्रमशः विशुद्धि की तरतमता से] चतुर्थ गुणस्थानवर्ती जघन्य अंतरात्मा हैं। पांचवें से उपशान्त मोह [ग्यारहवें गुणस्थान] तक मध्यम अंतरात्मा हैं। (खीणमोह) वारहवे गुणस्थानवर्ति उत्तम अन्तरत्मा और जिन [तेरहवें और चौदहवें गुणस्थानवर्ती] और सिद्ध परमात्मा हैं।

दोषों के त्याग से मुक्ति होती है

मूढत्तय सल्लत्तय, दोसत्तय दंड गारवत्तयेहिं।
परिमुक्को जोई सो, सिवगदिपहणायगो होदि ॥142॥
तीन शल्य त्रय दोष मूढ़ता , तीन दण्ड त्रय गारव जान ।
मोक्ष मार्ग का नेता होवे, कहते हैं यह जिन भगवान ॥142॥

अन्वयार्थ- (जो) (जोइ) योगी (मूढत्तय) तीन मूढ़ता (सल्लत्तय) तीन शल्य (दोसत्तय) तीन दोष (दंडगारवत्तयेहिं) तीन दंड और तीन गारव से (परिमुक्को) पूर्ण रहित होता है (सो) वह (सिवगइ) शिवगति का (पहणायगो) पथनायक (मोक्ष मार्ग का नेता) (होई) होता है।

भावार्थ - जो योगी तीन मूढ़ताओं, तीन शल्यों, तीन दोषों, तीन दण्डों और तीन गारवों से रहित होता है, वह मोक्ष मार्ग का नेता होता है।

आत्म-विशुद्धि से मुक्ति मिलती है

रयणत्तय करणत्तय, जोगत्तय गुत्तित्तय विसुद्धेहिं।
संजुत्तो जोई सो, सिवगदिपहणायगो होदि ॥143॥
रत्नत्रय त्रय करण योग त्रय, गुप्ति युक्त विशुद्धी वान ॥
मोक्ष मार्ग का नेता योगी , होता है कहते भगवान ॥143॥

अन्वयार्थ- (जो) (जोई) योगी (रयणत्तय) तीन रत्न (करणत्तय) तीन करण (जोगत्तय) तीन योग (और) (गुत्तित्तय) तीन गुप्ति की (बिसुद्धेहिं) विसुद्धि से (संजुत्तो) संयुक्त होता है वह (सिवगइ) शिवगति का (पहणायगो) पथनायक (होइ) होता है।

भावार्थ - जो योगी रत्नत्रय, तीन करणों, तीन योगों, तीन गुप्तियों की विशुद्धियों से युक्त है, वह मोक्ष मार्ग का नेता होता है।

वीतराग योगी को मुक्ति मिलती है

जिणलिंग धरो जोई, विराय-सम्मत्तसंजुदो णाणी।
परमोवेक्खाइरियो, सिवगदिपहणायगो होदि ॥144॥
जिनमुद्रा का धारी योगी, हो सम्यक्त्व वैराग्य संयुक्त ।
ज्ञानी परम उपेक्षा धारी, नेता मोक्ष मार्ग का युक्त ॥144॥

अन्वयार्थ- (जिणलिंगधरो) जिनमुद्रा धारक (जोई) जोगी (विरायसम्मत्तं) वैराग्य सम्यक्त्व से

(संजुदो) संयुक्त (णाणी) ज्ञानी और (परमोवेक्खाइरियो) परम उपेक्षा धारी (आइरियो) आचार्य हैं ऐसा योगी (सिवगइपहणायगो) शिवगति का पथनायक (मोक्ष मार्ग का नेता) (होई) होता है।

भावार्थ - जिन मुद्रा का धारक, वैराग्य और सम्यक्त्व से संयुक्त, ज्ञानी और परम उपेक्षा [वीतराग भाव] का धारक-ऐसा योगी मोक्ष मार्ग का नेता होता है।

शुद्धोपयोगी को मुक्ति मिलती है

बहिरब्भंतरगंथ, विमुक्को सुद्धोवजोय संजुत्तो।
मूलुत्तर गुण पुण्णो, सिवगदि पहणायगो होदि ॥145॥
बाह्याभ्यन्तर रहित परिग्रह , शुद्धोपयोग से हो संयुक्त ।
मोक्ष मार्ग का नेता योगी , मूल और उत्तर गुण युक्त ॥145॥

अन्वयार्थ- (बहिरब्भंतर) बाहरी और भीतरी (गंथ) परिग्रह से (विमुक्को) विमुक्त (तथा) (सुद्धोवजोय) शुद्धोपयोग से (संजुत्तो) संयुक्त (और) (मूलुत्तरगुणपुण्णो) मूलगुण और उत्तरगुण से पूर्ण युक्त (सिवगइ) शिवगति का (पहणायगो) पथनायक (मोक्ष मार्ग का नेता) (होइ) होता है।

भावार्थ - बाह्य-आभ्यंतर परिग्रह से रहित, शुद्धोपयोग से संयुक्त और मूल एवं उत्तर गुणों से युक्त [योगी] मोक्षमार्ग का नेता होता है।

साधु सम्यक्त्व की साधना करता है

जं जादिजरामरणं, दुहदुट्ठ विसाहि विस णासयरं।
सिवसुहलाहं सम्मं, संभावदि सुणदि साहदे साहू ॥146॥
जन्म जरा मृत्यू दुठ विषधर , का विष नाशी है सम्यक्त्व ।
मोक्ष लाभ कर हे मुनि! साधन, करो भावना ज्ञान प्रमुक्त ॥146॥

अन्वयार्थ - (साहू) हे साधु (सुणइ) सुनो (संभावइ) भावना करो (जं) जो (सम्मं) सम्यग्दर्शन (जाइजरामरणं) जन्म-मरण और बुढ़ापा (दुह) दुख रूपी (दुट्ठ) दुष्ट (विसाहिविसविणासयरं) विषधर सर्प के विष का विनाशक है (उसकी तथा उस सम्यक्त्व की) (साधए) साधना करो (जो) (सिवसुहलाहं) शिव सुख का लाभ कराने वाला है।

भावार्थ - जो सम्यक्त्व जन्म-जरा-मृत्यु और दुखरूपी दुष्ट विषधर सर्प के विष का नाश करने वाला है और मोक्ष सुख का लाभ कराने वाला है, हे साधो! उसी की भावना करता है, उसी के बारे में सुनता है और उसी की साधना करता है।

परमात्मा सम्यक्त्व के कारण पूज्य है

किं बहुणा हो देविंदाहिंद णरिंद गणहरिंदेहि।
पुज्जा परमप्पा जे, तं जाणं पहाव सम्मगुणं ॥147॥

क्या है लाभ बहुत कहने से, जो देवेन्द्र नरेन्द्र गणेश ।
से पूजित परमातम है वह, सम्यक गुण धर रहे विशेष ॥147॥

अन्वयार्थ- (हो) अहो (बहुणा) बहुत (कहने से) (किं) क्या (जे) जो (परमप्पा) परमात्मा (देविंदाहिंद) देवेन्द्र, नागेन्द्र (णरिंद) नरेन्द्र (गणहरिंदेहि) गणधरों से (पुज्जा) पूज्य हैं (तं) उसे (सम्मगुणं) सम्यक्त्व गुण का (पहाव) प्रभाव (जाण) जानो।

भावार्थ - अहो! [भव्य] बहुत कहने क्या लाभ है ? जो परमात्मा देवेन्द्र, नागेन्द्र, और गणधरेन्द्रों से पूजित हैं, उनमें सम्यक्त्व गुण की प्रधानता जानो।

पंचमकाल में उपशम सम्यक्त्व

उवसमई सम्मत्तं, मिच्छत्तबलेण पेल्लदे तस्स।
परिवट्टंति कसाया, अवसप्पिणि कालदोसेण ॥148॥

काल दोष से अवसर्पिणि के , मिथ्यात्वोदय से जीव यह जान ।
उपशम सम्यक् नष्ट होय अरु, फिर कषाय का हो उत्थान ॥148।

अन्वयार्थ- (अवसप्पिणी) अवसर्पिणी (कालदोसेण) काल के दोष से (पेल्लए) प्रेरित होने पर इस जीव के (सम्मत्तं) सम्यक्त्व (उवसमई) उपशम (समाप्त) हो जाता है और (कसाया) कषाय (परिवट्टंति) परिवर्तित हो जाती है।

भावार्थ - इस अवसर्पिणी काल के दोष से, मिथ्यात्व के प्रबल उदय से जीवों का उपशम सम्यक्त्व नष्ट हो जाता है, और फिर कषाय उत्पन्न हो जाती है।

श्रावक की 53 क्रियायें

गुण-वय-तव-सम-पडिमा, दाणं जलगालणं अणत्थमिदं।
दंसण-णाण चरित्तं, किरिया तेवण्ण सावया भणिदा ॥149॥

अष्ट मूल गुण अणुव्रत बारह तप, समता प्रतिमा चउ दान ।
जल गालन रात्रि भोजन तज, रत्नत्रय त्रेपन क्रियावान ॥149॥

अन्वयार्थ- (गुण) मूलगुण (वय) बारह व्रत (तव) तप (सम) समता (पडिया) प्रतिमा (दाणं) दान (जलगालणं) पानी छानना (अणत्थंमियं) अनस्तमित (सूर्यास्त के बाद भोजन नहीं करना) और (दंसण) सम्यग्दर्शन (णाण) सम्यग्ज्ञान और (चरित्तं) सम्यक् चारित्र (सावया) श्रावक की (तेवण्ण) त्रेपन (किरिया) क्रियाऐं (भणिया) कही गईं हैं।

भावार्थ - 8 मूलगुण, 12 अणुव्रत, 12 तप, समता, 11 प्रतिमा, 4 प्रकार के दान, जलगालन, सूर्यास्त के पश्चात् भोजन न करना, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक चारित्र- ये श्रावक की 53 क्रियायें कहीं गयीं हैं।

Aakriti

ज्ञान मुक्ति का कारण है

णाणेण झाणसिद्धी, झाणादो सव्व कम्मणिज्जरणं।
णिज्जरण फलं मोक्खं, णाणब्भासं तदो कुज्जा॥150॥

ज्ञान से ध्यान की सिद्धी होवे, कर्म निर्जरा कारी ध्यान ।
रहा निर्जरा का फल मुक्ती, ज्ञानाभ्यास करो तुम जान ॥150॥

अन्वयार्थ- (णाणेण) ज्ञान से (झाणसिज्झी) ध्यान की सिद्धि होती है (झाणादो) ध्यान से (सव्वकम्मणिज्जरणं) समस्त कर्मों की निर्जरा होती है (णिज्जरणंफलं) निर्जरा का फल (मोक्खं) मोक्ष है (तदो) इसलिए (णाणब्भासं) ज्ञानाभ्यास (कुज्जा) करना चाहिए।

भावार्थ - ज्ञान से ध्यान की सिद्धी होती है, ध्यान से समस्त कर्मों की निर्जरा होती है, निर्जरा का फल मोक्ष है, अतः ज्ञानाभ्यास करना चाहिये।

ज्ञान-भावना से तप, संयम, वैराग्य होता है

कुसलस्स तवो णिवुणस्स, संजमो समपरस्स वेरग्गो।
सुदभावणेण तत्तिय, तम्हा सुदभावणं कुणह॥151॥

निपुण के संयम सुतप कुशल के, वैरागी के समता होय।
श्रुतधर के तीनों होते हैं, श्रुताभ्यास करना तुम सोय॥151॥

अन्वयार्थ- (कुसलस्य) कुशल (व्यक्ति के) (तवो) तप (होता है) (णिवुणस्स) निपुण के (संजमो) संयम और (समपरस्स) समभावी के (वेरग्ग) वैराग्य (होता है) (किन्तु) (सुदभावणेण) श्रुत की भावना से (तत्तिय) तीनों होते हैं (तम्हा) इसलिए (सुदभावणं) श्रुत भावना (कुणहं) करनी चाहिये।

भावार्थ - कुशल व्यक्ति के तप होता है। निपुण व्यक्ति के संयम होता है। समताभावी के वैराग्य होता है और श्रुत की भावना से ये तीनों होते हैं। इसलिये श्रुत की भावना करो।

मिथ्यात्व से संसार परिभ्रमण है

कालमणंतं जीवो, मिच्छत्तसरूवेण पंचसंसारे।
हिंडदि ण लहइ सम्मं, संसारब्भमणपारंभो॥152॥

होने से मिथ्यात्व स्वरूपी , कालानन्त पंच संसार ।
भ्रमण करे जिस कारण प्राणी, पाए ना सम्यक्त्व का सार ॥152॥

अन्वयार्थ- (जीवो) जीव (मिच्छसरूवेण) मिथ्यात्व स्वरूप से (अणंतं) अनन्त (कालं) काल (पंचसंसारे) पञ्च परावर्तन संसार में (हिंउदि) परिभ्रमण करता है (सम्मं) सम्यक्त्व (लहइ) प्राप्त (ण) नहीं करता है (इससे) (संसारब्भमण) संसार का भ्रमण (प्रारम्भो) बना रहता है।

भावार्थ - जीव मिथ्यात्व स्वरूप होने से अनंतकाल से [अनादिकाल से], पंचपरावर्तन [द्रव्य, क्षेत्र, काल,भव,भाव] रूप संसार में भ्रमण कर रहा है जिस कारण सम्यक्त्व को प्राप्त नहीं कर पा रहा है।

सम्यग्दर्शन से सुख मिलता है

सम्मद्दंसणसुद्धं, जाव दु लभदे हि ताव सुही।
सम्मद्दंसण सुद्धं, जाव ण लभदे हि ताव दुही ॥153॥
सम्यक दर्शन शुद्धप्राप्त कर, सुख मय हो जाता है जीव ।
जब तक सम्यक्त्वी ना होवे , तब तक पावे दुःख अतीव ॥153॥

अन्वयार्थ- (हि) निश्चय से (जाव) जब (जीव) (सुद्धं) शुद्ध (सम्मद्दंसण) सम्यग्दर्शन (लभते) प्राप्त करता है (दु) तो (ताव) तब (सुही) सुखी होता है और (जाव) जब तक (सुद्धं) शुद्ध (सम्मद्दंसण) सम्यग्दर्शन (ण) नहीं (लभते) प्राप्त होता है (हि) निश्चय से (ताव) तब तक (दुहि) दुखी रहता है।

भावार्थ - जब शुद्ध [निर्दोष] सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लेता है, जीव तभी सुखी होता है। जब तक शुद्ध सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं कर लेता है, तब तक जीव दुखी रहता है।

सम्यक्त्व है, तो सब सुख रूप है

किं बहुणा वयणेण दु, सव्वं दुक्खेव सम्मत्त विणा।
सम्मत्तेण विजुत्तं, सव्वं सोक्खेव जाणं खु ॥154॥
क्या है लाभ बहुत कहने से, सम्यक बिन है सब दुखकार ।
सम्यक से सब सुख होते हैं, अतः जीव सम्यक्त्व विचार ॥154॥

अन्वयार्थ- (बहुणा) बहुत (वयणेण) वचन कहने से (किं) क्या लाभ (सम्मत्त) सम्यक्त्व के (विणा) बिना (दु) तो (सव्वं) सब (दुक्खेव) दुख ही है (खु) निश्चय ही (सम्मत्तेण) सम्यक्त्व से संयुक्त (सव्वं) सब (सोक्खेव) सुख ही (जाण) जानो।

भावार्थ - बहुत कहने क्या लाभ है ? सम्यक्त्व के बिना सब दुःख ही है और सम्यक्त्व से संयुक्त सब सुख रूप ही है यह जानो।

सम्यक्त्वहीन ज्ञान और क्रिया संसार के कारण हैं

णिक्खेव णय पमाणं, सद्दालंकार छंद लहियाणं।
णाडय पुराण कम्मं, सम्म विणा दीहसंसारं॥155॥
नय निक्षेप प्रमाण छंद या, नाट्य शास्त्र शब्दालंकार।
पुराण ज्ञान ये बाह्य क्रियाएँ, सम्यक बिना दीर्घ संसार ॥155॥

अन्वयार्थ- (णिक्खेव) निक्षेप (णय) नय (पमाणं) प्रमाण (सद्दालंकार) शब्दालंकार (छंद) छन्द (का ज्ञान) (नाट्य) नाटक (पुराण) शास्त्र ज्ञान (कम्मं) कर्म का (ज्ञान) पूर्ण (लहि) प्राप्त करने (पर भी) (सम्मविणा) सम्यक्त्व के बिना (दीह) दीर्घ (संसारं) संसार है।

भावार्थ - निक्षेप, नय, प्रमाण, शब्दालंकार, छंद, नाट्य शास्त्र, पुराण इनका ज्ञान प्राप्त किया, बाह्य

क्रियायें की किन्तु ये सब सम्यक्त्व के बिना दीर्घ संसार के कारण होते हैं।

जब तक ममकार है, तब तक सुख नहीं

वसदि पडिमोवयरणे, गणगच्छे समयसंघजादिकुले।
सिस्सपडिसिस्सछत्ते, सुदजादे कप्पडे पुत्थे।। 156।।
पिच्छे संत्थरणे, इच्छासु लोहेण कुणदि ममयारं।
यावच्च अट्ठरुद्दं, ताव ण मुंचेदि ण हु सोक्खं।। 157।।

साधु वसतिका शास्त्र गच्छगण, प्रतिमोपकरण शिष्य कुल जान ।
पुत्र पौत्र प्रतिशिष्य वस्त्र या ,पुस्तक संस्तर पिच्छी मान ॥156॥
इच्छाओं में लोभ और मम,जब तक आर्त रौद्र हो ध्यान ।
तब तकमुक्त नहीं होता है, ना सुख भी पावे इन्सान ॥157॥

अन्वयार्थ- (वसहि) वसतिका वस्ती (पडिमोवयरणे) प्रतिमा उपकरण से (गणगच्छे) गण गच्छ में (समयसंघ) शास्त्र संघ (जाइकुले) जाति कुल में (सिस्सपडिसिस्सछत्ते) शिष्य, प्रतिशिष्य, छात्र में (सुयजाते) सुत प्रपौत्र में (कप्पड़े) कपड़े में (पुत्थे) पोथी पुस्तक में (पिच्छे)पीछी में (संत्थरणे) संस्तर में (इच्छासु) इच्छाओं में (लोहेण) लोभ से (ममयारं) ममकार (कुणइ) करता है (यावच्च) और जब तक (अट्टरूद्दं) आर्तरौद्र ध्यान (ण) नहीं (मुंचेदि) छोड़ता है (ताव) तब तक (सोक्खं) सुख (णहु) नहीं होता है।

भावार्थ - जो साधु वसतिका, प्रतिमोपकरण, गण, गच्छ, शास्त्र, संघ, कुल, शिष्य, प्रतिशिष्य, पुत्र, पौत्र, वस्त्र, [श्रुतपाहुण] पुस्तक, पिच्छी, संस्तर और इच्छाओं में जब तक लोभ में ममकार करता है और जब तक आर्त्त-रौद्र-ध्यान है, तब तक मुक्त नहीं होता है और न सुख मिलता है।

निर्मल आत्मा ही समय

रयणत्तयमेव गणं, गच्छं गमणस्स मोक्खमग्गस्स।
संघो गुणसंघादो, समओ खलु णिम्मलो अप्पा।। 158।।

मोक्ष मार्ग गामी साधू का रत्नत्रय, भी गण है गच्छ ।
गुण समूह है संघ सुनिर्मल, निश्चिय से आतम है स्वच्छ ॥158॥

अन्वयार्थ- (मोक्खमग्गस्स) मोक्ष मार्ग में (गमणस्स) गमन करते हुए साधु का (रयणत्तयमेव) रत्नत्रय ही (गणं) गण है (गच्छं) गच्छ है (गुणसंघादो) गुण समूह ही (संघो) संघ है (खलु) निश्चय से (णिम्मलो) निर्मल (अप्पा) आत्मा (समओ) समय है।

भावार्थ - मोक्ष मार्ग में गमन करने वाले साधु का रत्नत्रय ही गण और गच्छ है, गुणों के संघ [समूह] से संघ है और निश्चय से निर्मल आत्मा ही समय है।

सम्यक्त्व कर्मों का नाश करता है

मिहरो महंधयारं, मरुदो मेहं महावणं दाहो।
वज्जो गिरिं जहा, विणसिंज्जदि सम्मे तहा कम्मं ॥159॥

गहन तिमिर को सूर्य मेघ को, वायू वन को अग्नि समान।
गिरि को वज्र नष्ट करते हैं, कर्म को सम्यक्त्व नाशे मान ॥159॥

अन्वयार्थ- (जहा) जैसे (मिहरो) सूर्य (महंधयारं) महांधकार को (मरुदो) वायु (मेहं) मेघ को (दाहो) अग्नि (महावणं) महावन को (वज्जो) वज्र (गिरिं) पर्वत को (वियसिंज्जइ) विनाश कर देता है, (तहा) वैसे (सम्मे) सम्यग्दर्शन (कम्मं) कर्म को (नाश करता है)।

भावार्थ - जैसे सूर्य गहन अंधकार को, वायु मेघ को, अग्नि विशाल वन को और वज्र पर्वत को नष्ट कर देता है, उसी प्रकार सम्यक्त्व कर्मों को नष्ट कर देता है।

सम्यक्त्व दीपक के समान है

मिच्छंधयाररहिदं, हियमज्झं सम्मरयणदीवकलावं।
जो पज्जलदि स दीसदि, सम्मं लोयत्तयं जिणुद्दिट्ठं ॥160॥

मिथ्यातम से रहित हृदय में, रत्न द्वीप सम्यक्त्व प्रकाश ।
करके तीनों लोक देखता, कहते जिन रक्खो विश्वास ॥160॥

अन्वयार्थ- (जो) जो (मिच्छंधयाररहियं) मिथ्यात्वरूपी अंधकार से रहित (सम्मरयणदीवकलावं) सम्यक्त्व रूपी रत्न दीपक को (हियमज्झं) हृदय मंदिर में (पज्जलइ) प्रज्ज्वलित करता है। (स) वह (लोयत्तयं) त्रिलोक में (सम्मं) समीचीन प्रकार से (दीसइ) देखता है (इदि) ऐसा (जिणुदिट्ठं) जिनदेव ने कहा है।

भावार्थ -जो अपने हृदय में मिथ्यात्व रूपी अंधकार से रहित सम्यक्त्व रूपी रत्नदीप समूह को प्रज्ज्वलित करता है, वह तीनों लोकों को सम्यक् प्रकार देखता है, ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है।

आत्मा के शुद्धस्वरूप का अभ्यास

पवयणय सारब्भासं, परमप्पज्झाण कारणं जाण।
कम्मक्खवण णिमित्तं, कम्मक्खवणे हि मोक्ख सुहं ॥161॥

शुद्ध आत्म स्वरूप के चिन्तन , से परमात्म का होवे ध्यान ।
ध्यान कर्म क्षय का कारण है, मोक्ष सौख्य जिससे हो मान ॥161॥

अन्वयार्थ- (पवयणसारब्भासं) प्रवचनसार-आत्मा के शुद्ध स्वरूप-का अभ्यास (परमप्पज्झाणकारणं) परमात्मा के ध्यान का कारण है ऐसा (जाण) जानो। परमात्मा का ध्यान (कम्मक्खवणणिमितं) कर्म क्षय का कारण है (कम्मक्खवणे) कर्म क्षय होने पर (हि) निश्चय से (मोक्खसोक्खं) मोक्ष सुख मिलता है।

भावार्थ - आत्मा के शुद्ध स्वरूप का अभ्यास परमात्मा के ध्यान का कारण है, ऐसा जानो, परमात्मा का ध्यान कर्म क्षय का कारण है, कर्म क्षय होने पर निश्चय ही मोक्ष सुख मिलता है।

धर्मध्यान से कर्मों का क्षय

धम्मज्झाणब्भासं, करेदि तिविहेण भाव सुद्धेण।
परमप्पझाणदि चेट्ठो, तेणेव खवेदि कम्माणि॥162॥

जो त्रिशुद्ध भावाभ्यासी है, वह परमात्म का करता ध्यान ।
हो परमात्म ध्यान में स्थित, कर्म नाश वह करे प्रधान॥162॥

अन्वयार्थ- (जाव) जो (तिविहेण) तीन प्रकार (की) (सुद्धेण) शुद्धता से (धम्मज्झाणब्भासं) धर्मध्यान का अभ्यास (करेइ) करता है (तेणेव) उसके ही (परमप्पझाणचेट्ठो) परमात्मा के ध्यान रूप की विशुद्धि में स्थिति (कम्माणि) कर्मों का (खवेइ) क्षय होता है।

भावार्थ - जो मन, वचन, काय से भाव की विशुद्धि पूर्वक अभ्यास करता है, वह परमात्मा के ध्यान में स्थित हो जाता है। उसी से परमात्म ध्यान की अवस्थिति से वह कर्मों को नष्ट करता है।

काललब्धि का महत्त्व

अदिसोहण जोएणं, सुद्धं हेमं हवेदि जह तह य।
कालाई लद्धीए, अप्पा परमप्पओ हवदि॥ 163॥

जो प्रतिशोधन क्रिया से सोना, हो जाता है पूर्ण विशुद्ध ।
त्यों कालादिक लब्धि के द्वारा, आतम भी हो जाए शुद्ध ॥163॥

अन्वयार्थ- (जह) जिस प्रकार (अदिसोहण-जोएणं) अतिशोधन क्रिया के योग से (हेमं) स्वर्ण (सुद्धं) शुद्ध (हवेइ) हो जाता है (तय य) उसी प्रकार (कालाई लद्धीय) काललब्धि आदि के द्वारा (अप्पा) आत्मा (परमप्पओ) परमात्मा (हवदि) हो जाता है।

भावार्थ - जिस प्रकार प्रतिशोधन क्रिया से सोना शुद्ध हो जाता है, उसी प्रकार काललब्धि आदि के द्वारा परमात्मा हो जाता है।

सम्यक्त्व यथेच्छ सुख देता है

कामदुहिं कप्पतरुं , चिंतारयणं रसायणं परसं।
लद्धोभुंजइ सोक्खं, जहच्छिदं जाण तह सम्मं॥164॥

जैसे कामधेनु चिंतामणि कल्पवृक्ष, पारस मणि जान ।
श्रेष्ठ रसायन पा सुख भोगे, त्यों सम्यक्त्व पाय सुखमान ॥164॥

अन्वयार्थ- (जहाँ जैसे) (भाग्यवान पुरूष) (कामदुहिं) कामधेनु, (कप्पतरूं) कल्पवृक्ष और (चिंतारयणं) चिंतामणि रत्न (रसायणं) रसायण (लद्धो) प्राप्त कर (परमं) उत्कृष्ट (सोक्खं) मनवांछित इन्द्रिय सुखों को (भुंजइ) भोगता है (तह) वैसे ही जिसने (सम्मं) सम्यग्दर्शन को प्राप्त कर लिया वह (जहट्ठियं) यथास्थिति सुख को प्राप्त होता है (जाण) ऐसा जानो।

भावार्थ - जैसे कामधेनु, कल्पवृक्ष, चिन्तामणि रत्न, रसायन और पारसमणि को प्राप्त करने वाला मनुष्य यथेष्ट सुख भोगता है, उसी प्रकार सम्यक्त्व को जानो।

विशेष - सम्यग्दर्शन वह विशिष्ट रत्न है जिसकी उपमा नहीं है फिर भी आचार्य भगवन विशेष फल प्रदायी वस्तु की उपमा देते हैं सम्यक्त्व कामधेनु समान नहीं उससे भी अधिक श्रेष्ठ, कल्पतरु उससे भी विशिष्ट, चिंतामणि रत्न उससे भी महान, स्वर्ण रस नहीं उससे भी उत्कृष्ट, पार्श्वमणि जो लोहे को स्वर्ण बनाए नहीं उससे भी कहीं सर्वोच्य है इसकी कहीं तुलना नहीं की जा सकती है।

'रयणसार' ग्रन्थ का माहात्म्य

सम्म णाणं वेरग्ग, तवोभावं णिरीह वित्तिचारित्तं।
गुणसील सहावं, उपज्जदि रयणसार मिणं॥165॥

सम्यक दर्श ज्ञान चारित गुण, निष्पृह वृत्ति शील तप भाव ।
रयण सार यह ग्रन्थ जगाए, शुभ वैराग्य आत्म स्वभाव॥165॥

अन्वयार्थ- (इणं) यह (रयणसारं) रयणसार ग्रन्थ (सम्य) सम्यक्त्व (णाणं) ज्ञान (वेरग्ग) वैराग्य (तपोभावं) तप भाव (णिरीहवित्ति) निस्पृह वृत्ति (चारित्तं) सम्यक् चारित्र (गुण) गुण (सील) शील और (सहावं) स्वभाव को (उप्पज्जइ) उत्पन्न करता है।

भावार्थ - यह 'रयणसार' [ग्रन्थ] सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, वैराग्य, तपोभाव, निरीह वृत्ति, चारित्र, गुण, शील, और आत्मस्वभाव को उत्पन्न करता है।

ग्रन्थ की प्रशस्ति

गंथमिणं जिणदिट्ठं, ण हु मण्णदि ण सुणेदि ण हु पढदि।
ण हु चिंतदि ण हु भावदि, सो चेव हवेदि कुद्दिट्ठी॥166॥

श्री जिन कथित ग्रन्थ यह, इसको माने सुने ना पढ़े विशेष ।
ना हो चिंतन करें भावना, मिथ्यात्वी वे जीव अशेष ॥166॥

अन्वयार्थ- (इणं) इस (ग्रंथ) ग्रन्थ को (जो) जो (ण) नहीं (दिट्ठइ) देखता है (णहु) नहीं (मण्णइ) मानता (णहु) नहीं (सुणेइ) सुनता है (णहु) नहीं (पढ़इ) पढ़ता है (णहु) नहीं (चिंतई) चिन्तन करता है (णहु) नहीं (भावइ) भाता है (सो) वह (चेव) ही (कुदिट्ठी) मिथ्यादृष्टि (होवेइ) होता है।

भावार्थ - जिनेन्द्र देव द्वारा कथित इस ग्रंथ को जो न तो मानता है, न सुनता है, न पढ़ता है, न चिन्तन करता है, और न ही भावना करता है, वह मिथ्यादृष्टि है।

उपसंहार

इदि सज्जणपुज्जं, रयणसारं गंथं णिरालसो णिच्चं।
जो पढदि सुणदि भावदि, पावदि सो सासयं ठाणं॥167॥

रयणसार यह पूज्य ग्रन्थ जो, निरालस्य हो पठन श्रवण।
'विशद' भावना सज्जन प्राणी , करके करते मोक्ष गमन ॥167॥

अन्वयार्थ- (इदि) इस प्रकार (सज्जणपुज्जं) सज्जनों के द्वारा पूज्य (रयणसारं गंथं) रयणसार ग्रन्थ का (जो) जो मनुष्य (णिरालसो) आलस्य रहित (णिच्चं) नित्य (पढइ) पढ़ता है (सुणइ) सुनता है (भावइ) मनन करता है (सो) वह (मनुष्य) (सासयं) शाश्वत (ठाणं) स्थान को (पावइ) पाता है।

भावार्थ - इस प्रकार सज्जनों के द्वारा पूज्य 'रयणसार' ग्रन्थ को जो व्यक्ति आलस्य रहित होकर सदा पढ़ता है, सुनता है, भावना करता है, वह विशद शाश्वत् स्थान [मोक्ष] पाता है।

प्रश्न है कि रत्न किसे कहते हैं ?

उत्तर है बहुमूल्य या अमूल्य वस्तु को रत्न कहा जाता है। किन्तु लोक में सभी पाषाण खण्ड को रत्न बोलते हैं शायद वे प्राणी मूढ़ हैं कभी भी है -

प्रथिव्यां त्रीणि रत्नानि, जल मन्नं शुभासितं।
मूढ़ा पाषाण खण्डेषु, रत्न संज्ञाविधीयते॥

अर्थात् पृथ्वी पर तीन रत्न हैं जल, अन्न और शुभाषित किन्तु पता नहीं कौन सा मूढ़ व्यक्ति है जो पाषाण खण्ड को रत्न संज्ञा दे दिया आप सभी अंग्रेजी में बोलते हैं 'नीलम स्टोन, मरगज स्टोन' इत्यादि स्टोन अर्थात् पत्थर किन्तु जैन सिद्धान्त कहता है।

प्रथिव्या त्रीणि रत्नानि दर्शनं ज्ञान चारित्रात।
मूढ़ा पाषाण खण्डेषु रत्न संज्ञा विधीयते॥

अर्थात् पृथ्वी पर तीन रत्न हैं सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र किन्तु पता नहीं कौन सा मूढ़ है जो पाषण खण्ड को रत्न संज्ञा दे रहा है।

इति

रयण सार इस ग्रन्थ का, करके पद्यानुवाद ।
ज्येष्ठ शुक्ल दशमी, तिथि रखें हमेशा याद॥1॥
वीर निर्वाण पच्चीस सौ, रहा चवालिस वर्ष।
नोयडा सेक्टर पचास में, हुआ सभी को हर्ष ॥2॥
आदिसागराचार्य जी ,महावीर कीर्ति ऋषीश ।
विमल सिन्धु के शिष्य कई, जिनमें भरत मुनीश॥3॥
विराग सिन्धु का शिष्य हूँ , विशद सिन्धु मम नाम।
अल्प बुद्धि से यह किया, लेखन का शुभ काम ॥4॥
भूल चूक को भूलकर, करें ज्ञान अभ्यास ।
जिससे होगा 'विशद' शुभ सिद्ध शिला पर वास॥5॥

समाधितंत्रम्

(श्रीमद्देवनन्द्यपरनामपूज्यपादस्वामिविरचित)

येनात्माऽबुद्ध्यतात्मैव, परत्वेनैव चापरम्।
अक्षयानन्त बोधाय, तस्मै सिद्धात्मने नमः ॥ 1 ॥

आतम रूप स्वयं को जाने, पर पदार्थ को पर ही माने।
अविनाशी जिन सिद्ध अनन्त, चरणों नमन् अनन्तानन्त॥

अन्वयार्थ- (**येन**) जिसके द्वारा (**आत्मा**) आत्मा (**आत्मा एव**) आत्मा रूप से ही (**अबुद्धयत**) जाना गया है (**च**) और (**अपरं**) अन्य को-कर्म जनित मनुष्यादि पर्याय रूप पुद्गल को (**परत्वेन एव**) पररूप से ही (**अबुद्धयत्**) जाना गया है (**तस्मै**) उस (**अक्षयानन्तबोधाय**) अविनाशी अनन्तज्ञानस्वरूप (**सिद्धात्मने**) सिद्धात्मा को (**नमः1**) नमस्कार हो।

अर्थ - जिसके द्वारा आत्मा, आत्मा रूप और जड़ पदार्थ तथा चेतन पदार्थ अन्य पदार्थ के रूप से ही जाने जाते हैं, उन अविनाशी अनंत ज्ञान स्वरूप सिद्ध भगवान को नमस्कार है।

वंशस्थ छन्द

जयन्ति यस्यावदतोऽपि भारती, विभूतयस्तीर्थकृतोप्यनीहितुः।
शिवाय धात्रे सुगताय विष्णवे, जिनाय तस्मै सकलात्मने नमः ॥2 ॥

अनिहितु वाणी युत अरहंत, दिव्य विभूति हो जयवन्त।
सकल आत्म विष्णू सुगताय, जिन धाता शिवपद सिरनाय॥

अन्वयार्थ- (**यस्य**) जिस (**अनीहितुःअपि**) इच्छा से भी रहित (**तीर्थकृतः**) तीर्थंकर की (**अवदतः अपि**) ने बोलते हुए भी-तालु-ओष्ठ-आदि के द्वारा शब्दों को उच्चारण न करते हुए भी (**भारतीविभूतयः**) वाणीरूपी विभूतियाँ-अथवा वाणी और छत्र त्रयादिक विभूतियाँ (**जयन्ति**) जयको प्राप्त होती हैं (**तस्मै**) उस (**शिवाय**) शिवरूप-परम कल्याण अथवा परम सौख्यमय (**धात्रे**) विधाता अथवा ब्रह्मरूप-सन्मार्ग के उपदेश द्वारा लोक के उद्धारक (**सुगताय**) सुगतरूप सद्बुद्धि एवं सद्गति को प्राप्त (**विष्णवे**) विष्णुरूप-केवलज्ञान के द्वारा समस्त चराचर पदार्थों में व्याप्त होने वाले (**जिनाय**) जिनरूप-संसार-परिभ्रमण के कारणभूत कर्मशत्रुओं को जीतने वाले (**सकलात्मने**) सकलात्मा को सशरीर शुद्धात्मा अर्थात् जीवन्मुक्त अरहंत परमात्मा को (**नमः**) नमस्कार हो।

अर्थ - जिस तरह इच्छा रहित न बोलते हुये तीर्थंकर की दिव्य ध्वनि की विभूतियाँ जयवंत होती हैं, उस कल्याण रूपी मोक्ष मार्ग के निर्माता, जन्म मरण रहित सुगति प्राप्त, समस्त लोकालोक में व्यापक

Aakriti

केवल ज्ञान द्वारा शरीर धारी परमात्मा जिनेन्द्र भगवान को नमस्कार है।

उपजाति छन्द

श्रुतेन लिंगेन यथात्मशक्ति, समाहितान्तः करणेन सम्यक्।
समीक्ष्य कैवल्यसुखस्पृहाणां, विविक्तमात्मानमथाभिधास्ये॥ 3॥

पाकर आगम युक्ति निमित्त, निज शक्ती युत स्थिर चित्त।
जिनको शुद्धातम की चाह, आत्म तत्व को कहूँ बनाय॥

अन्वयार्थ- (**अथ**) परमात्मा को नमस्कार करने के अनंतर (**अहं**) मैं पूज्यपाद आचार्य (**विविक्तं आत्मानं**) कर्ममल रहित आत्मा के शुद्ध स्वरूपको (**श्रुतेन**) शास्त्र के द्वारा (**लिंगेन**) अनुमान व हेतु के द्वारा (**समाहितान्तःकरणेन**) एकाग्र मन के द्वारा सम्यक् समीक्ष्य अच्छी तरह अनुभव करके (**कैवल्य-सुखस्पृहाणां**) कैवल्यपद-विषयक अथवा निर्मल अतीन्द्रिसुखकी इच्छा रखने वालों के लिए (**यथात्मशक्ति**) अपनी शक्ति के अनुसार (**अभिधास्ये**) कहूँगा।

अर्थ -परमात्मा को नमस्कार करने के पश्चात्, अब मैं आगम से , अनुमान व हेतु के द्वारा अपने चित्त को स्थिर करके अच्छी तरह जानकर शुद्धात्म सुख के इच्छुक जीवों के लिये शुद्ध आत्म तत्त्व को अपनी शक्ति के अनुसार कहूँगा।

बहिरन्तः परश्चेति त्रिधात्मा सर्वदेहिषु।
उपेयात्तत्र परमं मध्योपायाद्बहिस्त्यजेत् ॥ 4॥

सब देहों में आतम वास, बाह्यान्तर परमात्म निवास।
अन्तर परम ग्रहण के योग्य, बहिरातम है पूर्ण अयोग्य॥

अन्वयार्थ- (**सर्वदेहिषु**) सर्वप्राणियों में (**बहिः**) बहिरात्मा (**अन्तः**) अन्तरात्मा (**च परः**) और परमात्मा (**इति**) इस तरह (**त्रिधा**) तीन प्रकार का (**आत्मा**) आत्मा (**अस्ति**) है। (**तत्र**) आत्मा के उन तीन भेदों में से (**मध्योपायात्**) अन्तरात्मा के उपाय द्वारा (परमं) परमात्मा को (**उपेयात्**) अंगीकार करे-अपनावें और (**बहिः**) बहिरात्मा को (**त्यजेत्**) छोड़ें।

अर्थ - समस्त शरीरधारी जीवों में बहिरात्मा, अंतरात्मा और परमात्मा इस तरह तीन प्रकार की आत्मा है, उनमें से अंतरात्मा के उपाय द्वारा परमात्मा को अंगीकार करें और बहिरात्मा का त्याग करें।

बहिरात्मा शरीरादौ जातात्मभ्रान्तिरान्तरः।
चित्तदोषात्मविभ्रान्तिः परमात्माऽतिनिर्मलः॥ 5॥

देहादिक भ्रान्ति बहिरात्म, चित्त दोष बिन अन्तर आत्म।
कर्म नष्ट करता जो आत्म, वह कहलाता है परमात्म॥

अन्वयार्थ- (**शरीरादौ जातात्मभ्रान्तिः बहिरात्मा**) शरीरादिक में आत्मभ्रान्तिको धरने वाला-उन्हें

भ्रम से आत्मा समझने वाला–बहिरात्मा है। **(चित्तदोषात्मविभ्रान्तिः अन्तरः)** चित्तके, राग द्वेषादिक दोषों के और आत्मा के विषय में अभ्रान्त रहने वाला–उनका ठीक विवेक रखने वाला अर्थात् चित्तको चितरूप से, दोषों को दोषरूप से और आत्मा को आत्मरूप से अनुभव करने वाला–अन्तरात्मा कहलाता है। **(अति निर्मलः परमात्मा)** सर्व कर्ममलसे रहित जो अत्यन्त निर्मल है वह परमात्मा है।

अर्थ – शरीर, पुत्र, स्त्री आदि से आत्म भ्रांति को धरने वाला [उन्हें भ्रम से आत्मा समझने वाला] बहिरात्मा है। चित्त [विकल्प] के, रागद्वेषादिक दोषों के और आत्मा के विषय में अभ्रांत रहने वाला अंतरात्मा है, सर्व कर्म मल से रहित जो अत्यंत निर्मल है, वह परमात्मा है।

निर्मलः केवलः शुद्धो, विविक्तः प्रभुरव्ययः।
परमेष्ठी परात्मेति, परमात्मेश्वरो जिनः॥6॥

परमेष्ठी निर्मल परमात्म, अव्यय शुद्ध विवक्ति परात्म।
केवल प्रभु ईश्वर जिन कहे, परमेष्ठी वाचक सब रहे॥

अन्वयार्थ– **(निर्मलः)** निर्मल–कर्मरूपीमलसे रहित **(केवलः)** केवल शरीरादि परद्रव्य के सम्बंध से रहित **(शुद्धः)** शुद्ध–द्रव्य और भावकर्म से रहित होकर परमविशुद्धिको प्राप्त **(विविक्तः)** विविक्त–शरीर और कर्मादिके स्पर्श से रहित **(प्रभुः)** प्रभु–इन्द्रादिकों का स्वामी **(अव्ययः)** अव्यय अपने अनन्त चतुष्टयरूप स्वभाव से च्युत न होने वाला **(परमेष्ठी)** परमपद में स्थिर **(परात्मा)** परमात्मा–संसारी जीवों से उत्कृष्ट आत्मा **(ईश्वरः)** ईश्वर–अन्य जीवों में असंभव ऐसी विभूति का धारक और **(जिनः)** जिन–ज्ञानावरणादि सम्पूर्ण कर्म शत्रुओं को जीतने वाला **(इति परमात्मा)** ये परमात्मा के नाम हैं।

अर्थ– निर्मल, केवल, शुद्ध, विविक्त, प्रभु, अव्यय, परमेष्ठी, परमात्मा, परात्मा, ईश्वर, जिन ये परमात्मा के पर्यायवाची नाम हैं।

बहिरात्मेन्द्रियद्वारै, रात्मज्ञानपराङ्मुखः।
स्फुरितः स्वात्मनो देह मात्मत्वेनाध्यवश्यति॥ 7॥

इन्द्रिय विषय ग्रहण में लीन, बहिरातम है बाह्य प्रवीण।
निज आतम से रहता बाह्य, आत्म रूप तन माने ग्राह्य॥

अन्वयार्थ–**(यतः)** चूंकि **(बहिरात्मा)** बहिरात्मा **(इन्द्रिय द्वारैः)** इन्द्रियद्वारों से **(स्फुरितः)** बाह्य पदार्थों के ग्रहण करने में प्रवृत्त हुआ **(आत्मज्ञानपराङ्मुखः)** आत्मज्ञान से पराङ्मुख **(भवति, ततः)** होता है इसलिये **(स्वात्मः देह)** अपने शरीर को **(आत्मत्वेन अध्यवस्यति)** आत्मरूप से निश्चय करता है–अपना आत्मा समझता है?

अर्थ – बहिरात्मा, इन्द्रिय द्वारों से बाह्य पदार्थों के ग्रहण करने में प्रवृत्त हुआ, आत्मज्ञान से पराङ्मुख होता है, इसलिये वह अपने शरीर को आत्म रूप से समझता है।

नरदेहस्थमात्मानम, विद्वान मन्यते नरम् ।
तिर्यञ्चं तिर्यगङ्गस्थं, सुरांगस्थं सुरं तथा॥ 8॥
नारकं नारकाङ्गस्थं, न स्वयं तत्त्वतस्तथा।
अनंतानंतधीशक्तिः, स्वसंवेद्योऽचलस्थितिः ॥9॥

अज्ञानी का यह विश्वास, नर तन में नर आतम वास।
पशु तन में हो पशु का वास, सुर तन में सुर आत्म निवास॥
नरक गति में नरक स्वरूप, यह आतम के नहीं है रूप।
आतम शक्ति अनन्तानन्त, स्वसंवेद्य अचल गुणवन्त॥

अन्वयार्थ- (अविद्वान) मूढ बहिरात्मा (नरदेहस्थं) मनुष्यदेहमें स्थित (आत्मानं) आत्मा को (नरम्) मनुष्य, (तिर्यगङ्गस्थं) तिर्यंच शरीरमें स्थित आत्माको (तिर्यंचं) तिर्यंच (सुराङ्गस्थं) देव शरीरमें स्थित आत्माको (सुरं) देव (तथा) और (नारकाङ्गस्थं) नारक शरीरमें स्थित आत्माको (नारकं) नारकी (मन्यते) मानता है। किन्तु (तत्वतः) वास्तवमें-शुद्ध निश्चयनयकी दृष्टि से (स्वयं) कर्मोपाधि से रहित खुद आत्मा (तथा न) मनुष्य, तिर्यंच, देव और नारकीय रूप नहीं है (तत्वतस्तु) निश्चयनयसे तो यह आत्मा (अनंतानंतधीशक्तिः) अनन्तानन्त ज्ञान और अनन्तानन्तशक्तिरूप वीर्यका धारक है। (स्वसंवेद्यः) स्वानुभवगम्य है-अपने द्वारा आप अनुभव किये जाने योग्य है और (अचलस्थितिः) अपने उक्त स्वभाव से कभी च्युत न होने वाला-उसमें सदा स्थिर रहने वाला है।

अर्थ- अपने आपको न समझने वाला, मूर्ख बहिरात्मा, मनुष्य देह में स्थित आत्मा को मनुष्य, तिर्यंच शरीर में स्थित आत्मा को तिर्यंच, देव शरीर में स्थित आत्मा को देव तथा नारक शरीर में स्थित आत्मा को नारकी मानता है। किन्तु वास्तव में [निश्चय दृष्टि से] कर्मोपाधि से रहित खुद आत्मा मनुष्य तिर्यंच, देव और नारकी रूप नहीं है। निश्चय से यह आत्मा अनंतानंत ज्ञान और अनंतानंत शक्ति से युक्त है, स्वानुभवगम्य है अपने चैतन्य स्वभाव में सदा स्थिर रहता है।

स्वदेहसदृशं दृष्ट्वा, परदेहमचेतनम्।
परात्माधिष्ठितं मूढः, परत्वेनाध्यवस्यति॥ 10॥

स्वयं देह सम पर की देह, देख मानता निज की देह।
पर में स्थित पर की आत्म, मान रहा देखो बहिरात्म॥

अन्वयार्थ - **(मूढः)** अज्ञानी बहिरात्मा **(परात्माधिष्ठितं)** अन्यकी आत्मासहित **(अचेतनं)** चेतनारहित **(परदेहं)** दूसरे के शरीर को **(स्वदेहसदृशं)** अपने शरीर के समान इन्द्रिय व्यापार तथा वचनादि व्यवहार करता हुआ **(दृष्टवा)** देखकर **(परत्वेन)** पर का आत्मा **(अध्यवस्यति)** मान लेता है।

अर्थ – मूर्ख बहिरात्मा अन्य की आत्मा सहित, चेतना रहित दूसरे के शरीर को अपने शरीर की तरह देखकर पर का आत्मा मान लेता है।

स्वपराध्यवसायेन, देहष्वविदितात्मनाम्।
वर्तते विभ्रमः पुंसां, पुत्रभार्यादिगोचरः॥ 11॥

निज स्वरूप ना जाने लोग, तन में स्व पर का संयोग।
सुत वनिता आदिक संसार, भ्रम वश करता उनसे प्यार॥

अन्वयार्थ– **(अविदितात्मनां पुंसां)** आत्मा के स्वरूपको नहीं जानने वाले पुरुषों के **(देहेषु)** शरीरों में **(स्वपराध्यवसायेन)** अपनी और पर की आत्म मान्यता से **(पुत्रभार्यादिगोचरः)** स्त्री–पुत्रादिविषयक **(विभ्रमः वर्तते)** विभ्रम होता है।

अर्थ – आत्म स्वरूप को नहीं जानने वाले पुरुषों के शरीरों में अपनी और पर की आत्म मान्यता से स्त्री, पुत्रादिक, विषयक विभ्रम होता है।

अविद्यासंज्ञितस्तस्मात्संस्कारो जायते दृढः।
येन लोकोऽङ्गमेव स्वं, पुनरप्यभिमन्यते॥ 12॥

विभ्रम से मिथ्या संस्कार, अज्ञानी दृढ़ता कर धार।
इस कारण अज्ञानी जीव, तन को माने स्वयं सजीव॥

अन्वयार्थ – **(तस्मात्)** उस विभ्रमसे **(अविद्यासंज्ञितः)** अविद्या नाम का **(संस्कारः)** संस्कार **(दृढः)** दृढ़–मजबूत **(जायते)** हो जाता है **(येन)** जिसके कारण **(लोकः)** अज्ञानी जीव **(पुनरपि)** जन्मान्तरमें भी **(अंगमेव)** शरीर को ही **(स्वं अभिमन्यते)** आत्मा मानता है।

अर्थ – उस विभ्रम से अविद्या [अज्ञान] नाम का संस्कार मजबूत हो जाता है, जिसके कारण अज्ञानी जीव जन्मांतर में भी शरीर को ही आत्मा मानता है।

देहे स्वबुद्धिरात्मानं, युनक्त्येतेन निश्चयात्।
स्वात्मन्येवात्मधीस्तस्माद्वियोजयति देहिनं॥ 13॥

तन में चेतन का सम्बन्ध, संसारी करता है बंध।
आत्म ज्ञान से जो संयुक्त, तन से हो जाता है मुक्त॥

अन्वयार्थ– **(देहे स्वबुद्धिः)** शरीरमें आत्मबुद्धि रखनेवाला बहिरात्मा **(निश्चयात्)** निश्चय 7से **(आत्मानं)** अपनी आत्माको **(एतेन)** शरीरके साथ **(युनक्ति)** जोड़ता–बाँधता है। किन्तु **(स्वात्मनि एव आत्मधीः)** अपनी आत्मामें ही आत्मबुद्धि रखने वाला अन्तरात्मा **(देहिनं)** अपनी आत्मा को **(तस्मात्)** शरीरके सम्बन्धसे **(वियोजयति)** पृथक् करता है।

अर्थ– शरीर में आत्म बुद्धि रखने वाला बहिरात्मा निश्चय से अपनी आत्मा को शरीर के साथ जोड़ता [बाँधता] है। किन्तु अपनी आत्मा में ही बुद्धि रखने वाला अंतरात्मा अपनी आत्मा को शरीर के संबंध

से पृथक करता है।

देहेष्वात्मधिया जाताः, पुत्रभार्यादिकल्पनाः।
सम्पत्तिमात्मनस्ताभिर, मन्यते हा हतं! जगत्॥ 14॥

तन में चेतन का संयोग, पुत्रादिक का माने योग।
अज्ञानी पर होता खेद, नहीं मानते पर में भेद॥

अन्वयार्थ- (**देहेषु**) शरीरों में (**आत्मधिया**) आत्मबुद्धि होने से (**पुत्रभार्यादिकल्पनाः**) मेरा पुत्र, मेरी स्त्री इत्यादि कल्पनाएँ (**जाताः**) उत्पन्न होती हैं (**हा**) खेद है कि (**जगत्**) बहिरात्मास्वरूप प्राणिगण (**ताभिः**) उन कल्पनाओंके कारण (**सम्पत्ति**) स्त्री-पुत्रादिकी समृद्धिको (**आत्मनः**) अपनी समृद्धि (**मन्यते**) मानता है और इस प्रकार यह जगत् (**हतं**) नष्ट हो रहा है।

अर्थ - शरीर में आत्म बुद्धि होने से मेरा पुत्र, मेरी स्त्री, इत्यादि कल्पनायें उत्पन्न होती हैं। खेद है कि बहिरात्म स्वरूप प्राणीगण उन कल्पनाओं के कारण स्त्री, पुत्रादि की समृद्धि को अपनी समृद्धि मानता है और इस प्रकार यह जगत नष्ट हो रहा है।

मूलं संसारदुःखस्य, देह एवात्मधीस्ततः।
त्यक्त्वैनां प्रविशेदन्त, र्बहिरव्यापृतेन्द्रियः ॥ 15॥

भव के भ्रमण में कारण मूल, तन में आत्म बुद्धि अनुकूल।
भ्रान्ती त्याग अक्ष व्यापार, निज आतम का कर उद्धार॥

अन्वयार्थ- (**देहे**) इस जड़ शरीरमें (**आत्मधीः एव**) आत्मबुद्धि का होना ही (**संसारदुःखस्य**) संसार के दुःखों का (**मूलं**) कारण है। (**ततः**) इसलिए (**एनां**) शरीर में आत्मत्व की मिथ्या कल्पनाओं को (**त्यक्त्वा**) छोड़कर (**बहिरव्यापृतेन्द्रियः**) बाह्य विषयों में इन्द्रियों की प्रवृत्ति को रोकता हुआ (**अन्तः**) अन्तरंग में अर्थात् आत्मा में ही (**प्रविशेत्**) प्रवेश करे।

अर्थ- इस जड़ शरीर में आत्म बुद्धि का होना ही संसार के दुःखों का मूल कारण है, इसलिए शरीर में आत्मत्व की मिथ्या कल्पना को छोड़कर बाह्य विषयों में इन्द्रियों की प्रवृत्ति को रोकता हुआ अन्तरंग (आत्मा) में प्रवेश करें।

मत्तश्च्युत्वेन्द्रियद्वारैः, पतितो (यतितो) विषयेष्वहम्।
तान् प्रपद्याऽहमिति मां, पुरा वेद न तत्वतः॥ 16॥

निज स्वभाव से च्युत हो दीन, इन्द्रिय विषयों में लवलीन।
काल अनादि की यह भूल, निज के पाया न अनुकूल॥

अन्वयार्थ- (**अहं**) मैं (**पुरा**) अनादिकालसे (**मत्तः**) आत्मस्वरूपसे (**च्युत्वा**) च्युत होकर (**इन्द्रियद्वारैः**) इन्द्रियोंके द्वारा (**विषयेषु**) विषयोंमें (**पतितः**) पतित हुआ हूँ-अत्यासक्तिसे प्रवृत्त हुआ हूँ (**ततः**) इसी कारण (**तान्**) उन विषयोंको (**प्रपद्य**) अपने उपकारक समझकर मैंने

(तत्वतः) वास्तवमें **(मां)** आत्मा को **(अहंइति)** मैं ही आत्मा हूँ इस रूप से **(न वेद)** नहीं जाना–अर्थात् उस समय शरीरको ही आत्मा समझनेके कारण मुझे आत्माके यथार्थ स्वरूप का परिज्ञान नहीं हुआ।

अर्थ –मैं अनादिकाल से आत्म स्वरूप से च्युत होकर इन्द्रियों के द्वारा विषयों में पतित हुआ हूँ। इसी कारण उन विषयों को पाकर मैंने वास्तव में आत्मा को नहीं जाना।

एवं त्यक्त्वा बहिर्वाचं, त्यजेदन्तरशेषतः।
एष योगः समासेन, प्रदीपः परमात्मनः॥ 17॥

ऐसे बाह्य वचन का त्याग, परिजन धन से छोड़ो राग।
आत्म प्रकाशक है वह दीप, अक्ष रोध के योग समीप॥

अन्वयार्थ- **(एवं)** आगे कही जाने वाली रीति के अनुसार **(बहिर्वाचं)** बाह्यार्थवाचक वचन प्रवृत्ति को **(त्यक्त्वा)** त्यागकर, **(अन्तः)** अन्तरंग वचन प्रवृत्ति को भी **(अशेषतः)** पूर्णतया **(त्यजेत्)** छोड़ देना चाहिए **(एषः)** यह बाह्याभ्यन्तर रूप से जल्प त्याग लक्षण वाला **(योगः)** योग–स्वरूप में चित्त निरोध लक्षणात्मक समाधि ही **(समासेन)** संक्षेप से **(परमात्मनः)** परमात्मा के स्वरूप का **(प्रदीपः)** प्रकाशक है।

अर्थ - आगे कही जाने वाली रीति के अनुसार बाहरी बातों को त्याग कर अंतरंग वचन प्रवृत्ति को भी पूर्णतया छोड़ देवें। यह योग [समाधि] ही संक्षेप से परमात्मा के स्वरूप का प्रकाशक है।

यन्मया दृश्यते रूपं, तन्न जानाति सर्वथा।
जानन्न दृश्यते रूपं, ततः केनब्रवीम्यहम्॥ 18॥

मन इन्द्रिय से देखा जाए, वस्तु स्वरूप जान न पाय।
चेतन दृष्टी गोचर नाहिं, वार्तालाप करे कहाँ जाहिं॥

अन्वयार्थ- **(मया)** इन्द्रियों के द्वारा मुझे **(यत्)** जो **(रूप)** शरीरादिक रूपी पदार्थ **(दृश्यते)** दिखाई दे रहा है **(तत्)** वह अचेतन होने से **(सर्वथा)** बिल्कुल भी **(न जानाति)** नहीं जानता और **(जानत रूपं)** जो पदार्थोंको जानने वाला चैतन्यरूप है वह **(न दृश्यते)** मुझे इन्द्रियोंके द्वारा दिखाई नहीं देता **(ततः अहं)** इसलिये मैं **(केन)** किसके साथ **(ब्रवीमि)** बात करूँ?

अर्थ- इन्द्रियों के द्वारा मुझे जो शरीर आदिक रूपी पदार्थ दिखाई दे रहा है वह अचेतन होने से बिल्कुल भी नहीं जानता और जो पदार्थ को जानने वाला चैतन्य रूप है वह मुझे इन्द्रियों के द्वारा दिखायी नहीं देता। इसलिये मैं किसके साथ बात करूँ?

यत्परैः प्रतिपाद्योऽहं, यत्परान् प्रतिपादये।
उन्मत्तचेष्टितं तन्मे, यदहं निर्विकल्पकः॥ 19॥

मैं हूँ पर प्रतिपाद्य स्वरूप, पर प्रतिपादन करने रूप।

यह है पागलपन का काम, निर्विकल्प मैं हूँ निष्काम॥

अन्वयार्थ- (**अहं**) मैं (**परैः**) उपाध्याय आदिकों से (**यत्प्रतिपाद्यः**) जो कुछ प्रतिपादित किया जाता हूँ तथा (**परान्**) शिष्यादिकोंको (**यत् प्रतिपादये**) जो कुछ प्रतिपादन करता हूँ (**तत्**) वह सब (मे) (**मेरी उन्मत्तचेष्टितं**) पागलों जैसी चेष्टा है (**यदहं**) क्योंकि मैं (**निर्विकल्पकः**) विकल्प रहित हूँ- वास्तव में मैं इन सभी वचन विकल्पों से अग्राह्य हूँ।

अर्थ- मैं, उपाध्याय आदिकों से जो कुछ प्रतिपादित किया जाता हूँ तथा शिष्यादिकों को जो कुछ प्रतिपादन करता हूँ, वह सब मेरी पागलों जैसी चेष्टा है क्योंकि मैं विकल्प रहित हूँ।

यदग्राह्यं न गृह्णाति, गृहीतं नैव मुंचति।
जानाति सर्वथा सर्वं, तत्स्वसंवेद्यमस्म्यहम्॥ 20॥

ग्रहण नहीं करता अग्राह्य, छोड़े नहीं किया जो ग्राह्य।
आतम स्व संवेद्य स्वरूप, जाने पर पदार्थ के रूप॥

अन्वयार्थ- (**यत्**) जो शुद्धात्मा (**अग्राह्यं**) ग्रहण न करने योग्य को (**न गृह्णाति**) ग्रहण नहीं करता है और (**गृहीतं अपि**) ग्रहण किये गये अनन्तज्ञानादि गुणों को (**न मुञ्चति**) नहीं छोड़ता है तथा (**सर्वं**) सम्पूर्ण पदार्थों को (**सर्वथा**) सर्व प्रकार से (**जानाति**) जानता है (**तत्**) वही (**स्वसंवेद्यं**) अपने द्वारा ही अनुभव में आने योग्य चैतन्यद्रव्य (**अहंअस्मि**) मैं हूँ।

अर्थ- जो शुद्धात्मा ग्रहण न करने योग्य को ग्रहण नहीं करता है और ग्रहण किये गये अनंतज्ञानादि गुणों को नहीं छोड़ता है तथा संपूर्ण पदार्थों को सर्व प्रकार से जानता है वही अपने द्वारा ही अनुभव में आने योग्य चैतन्य द्रव्य मैं हूँ।

उत्पन्नपुरुषभ्रान्तेः, स्थाणौ यद्वद्विचेष्टितम्।
तद्वन्मे चेष्टितं पूर्वं, देहादिष्वात्म विभ्रमात्॥ 21॥

ज्यों तन ठूठ को प्राणी कोय, भ्रान्ति से नर माने सोय।
त्यों तन को भी माने जीव, किन्तू तन है पूर्ण अजीव॥

अन्वयार्थ- (**स्थाणौ**) स्थाणु में (**उत्पन्नपुरुषभ्रान्तेः**) उत्पन्न हो गई है पुरुष पने की भ्रान्ति जिसको ऐसे मनुष्य की (**यद्वत्**) जिस प्रकार (**विचेष्टितम्**) विकृत अथवा विपरीत चेष्टा होती है (**तद्वत्**) उसी प्रकार की (**देहादिषु**) शरीरादिक पर पदार्थों में (**आत्मविभ्रमात्**) आत्मा का भ्रम होने से (**पूर्वं**) आत्मज्ञान से पहले (**मे**) मेरी (**चेष्टितम्**) चेष्टा थी।

अर्थ- स्थाणु [ठूंठ] में पुरुष की भ्रांति धारण करने वाले मनुष्य की जिस प्रकार की विपरीत चेष्टा होती है, उसी प्रकार की शरीरादि में आत्मा का भ्रम होने से पहले मेरी चेष्टा थी।

यथाऽसौ चेष्टते स्थाणौ, निवृत्ते पुरुषाग्रहे।
तथाचेष्टोऽस्मि देहादौ, विनिवृत्तात्मविभ्रमः॥ 22॥

ठूंठ में नर की भ्रान्ती दूर, जिसकी हो जाती भरपूर।
निवृत्ति देहादि से पाय, चेष्टा चेतन की हो जाय॥

अन्वयार्थ- (**असौ**) जिसको वृक्ष के ठूँठ में पुरुष का भ्रम हो गया था वह मनुष्य (स्थाणौ) ठूँठमें (**पुरुषाग्रहे निवृत्ते**) यह पुरुष है ऐसे मिथ्याभिनिवेश के नष्ट हो जाने पर (**यथा**) जिस प्रकार उससे अपने उपकारादि की कल्पना त्यागने की (**चेष्टते**) चेष्टा करता है उसी प्रकार (**देहादी**) शरीरादिक में (**विनिवृत्तात्मविभ्रमः**) आत्मपने के भ्रम से रहित हुआ मैं भी (**तथा चेष्टः अस्मि**) देहादिक में अपने उपकारादि की बुद्धि को छोड़ने में प्रवृत्त हुआ हूँ।

अर्थ- भ्रम को प्राप्त व्यक्ति ठूंठ में यह पुरुष है, ऐसी विपरीत धारणा के दूर होने पर जैसी चेष्टा करता है, उसी प्रकार शरीरादि में आत्मपने के भ्रम से रहित हुआ मैं भी चेष्टा करता हूँ।

येनात्मनाऽनुभूयेऽहं, मात्मनैवत्मनाऽत्मनि ।
सोऽहं न तन्न सा नासौ, नैको न द्वौ न वा बहुः ॥23॥

निज आतम से आतम ज्ञान, स्व संवेदन का हो भान।
ना मैं स्त्री षंड रूप, एक दोय ना बहुत स्वरूप॥

अन्वयार्थ- (**येन**) जिस (**आत्मना**) चैतन्यस्वरूप से (**अहम्**) मैं (**आत्मनि**) अपनी आत्मा में ही (**आत्मना**) अपने स्वसंवेदन ज्ञान के द्वारा (**आत्मनैव**) अपनी आत्मा को आप ही (**अनुभूये**) अनुभव करता हूँ (**सः**) वही शुद्धात्म स्वरूप (**अहं**) मैं (**न तत्**) न तो नपुंसक हूँ (**न सा**) न स्त्री हूँ (**न असौ**) न पुरुष हूँ (**न एको**) न एक हूँ (**न द्वौ**) न दो हूँ (**वा**) और (**न बहुः**) न बहुत हूँ।

अर्थ- जिस चैतन्य स्वरूप से मैं अपनी आत्मा में ही अपने स्वसंवेदन ज्ञान के द्वारा अपनी आत्मा को स्वयं ही अनुभव करता हूँ, वही शुद्धात्मा स्वरूप मैं नपुंसक नहीं हूं, स्त्री नहीं हूँ, पुरुष नहीं हूँ, न एक हूँ, न दो हूँ, और न ही बहुत हूँ।

यदभावे सुषुप्तोऽहं, यद्भावे व्युत्थितः पुनः।
अतीन्द्रियमनिर्देश्यं, तत्स्वसंवेद्यमस्म्यहम्॥ 24॥

जिस अभाव में सोया रहा, स्व स्वरूप से खोया रहा।
वह अतीन्द्रिय मैं वचनातीत, निज अनुभव से होय प्रतीत॥

अन्वयार्थ- (**यत् अभावे**) जिस शुद्धात्म स्वरूप के प्राप्त न होने से (**अहं**) मैं (**सुषुप्तः**) अब तक गाढ़ निद्रामें पड़ा रहा हूँ-मुझे पदार्थों का यथार्थ परिज्ञान न हो सका-(**पुनः**) और (**यत् भावे**) जिस शुद्धात्म स्वरूप की उपलब्धि होने पर मैं (**व्युत्थितः**) जागरित हुआ हूँ-यथावत् वस्तु स्वरूप को जानने लगा हूँ। (**तत्**) वह शुद्धात्म स्वरूप (**अतीन्द्रियं**) इन्द्रियों के द्वारा ग्राह्य नहीं है (**अनिर्देश्यं**) वचनों के भी अगोचर है, वह तो (**स्वयंवेद्यं**) अपने द्वारा आप ही अनुभव करने योग्य है। उसी रूप (**अहं अस्मि**) मैं हूँ।

अर्थ- मैं जिस शुद्धात्म स्वरूप के प्राप्त न होने से मैं स्वयं अब तक गाढ़ निद्रा में आक्रांत था। जिस स्वरूप की प्राप्ति होने से मैं जाग्रत हुआ हूँ, वह शुद्धात्म स्वरूप इन्द्रियों के द्वारा ग्राह्य नहीं है, अनिर्वचनीय है, वह तो अपने द्वारा आप ही अनुभव करने योग्य है, उसी रूप मैं हूँ।

क्षीयन्तेऽत्रैव रागाद्यास्तत्वतो मां प्रपश्यतः।
बोधात्मानं ततः कश्चिन्न में शत्रुर्न च प्रियः॥ 25॥

निज चैतन्य का हो आभास, हो तुरन्त रागादिक नाश।
नहीं कोई शत्रु अरु मित्र, निज अनुभव जब होय पवित्र॥

अन्वयार्थ- (**यतः**) क्योंकि (**बोधात्मानं**) शुद्ध ज्ञानस्वरूप (**मां**) मुझ आत्मा का (**तत्वतः प्रपश्यतः**) वास्तव में अनुभव करने वाले के (**अत्र एव**) इन जन्म में ही (**रागाद्यः**) राग, द्वेष, क्रोध, मान, मायादिक दोष (**क्षीयन्ते**) नष्ट हो जाते हैं (**ततः**) इसलिये (**मे**) मेरा (**न कश्चित्**) न कोई (**शत्रुः**) शत्रु है (**न च**) और न कोई (**प्रियः**) मित्र है।

अर्थ- यथार्थ में अपने को ज्ञान स्वरूप देखने वाले के इस जन्म में ही रागादि विकार क्षय को प्राप्त हो जाते हैं, इसलिये मेरा कोई शत्रु नहीं है तथा मित्र भी नहीं है।

मामपश्यन्नयं लोको, न मे शत्रुर्न च प्रियः।
मां प्रपश्यन्नयं लोको, न मे शत्रुर्न च प्रियः॥ 26॥

मम स्वरूप जाने ना कोय, लोक मित्र ना शत्रू होय।
मम स्वरूप जाने जो कोय, लोक मित्र ना शत्रू होय॥

अन्वयार्थ- (**मां**) मेरे आत्म स्वरूप को (**अपश्यन्**) नहीं देखता हुआ (**अयं लोकः**) यह अज्ञ प्राणिवृन्द (**न मे शत्रुः**) न मेरा शत्रु है (**न च प्रियः**) और न मित्र है तथा (**मां**) मेरे आत्म स्वरूप को (**प्रपश्यन्**) देखता हुआ (**अयं लोकः**) यह प्रबुद्ध-प्राणिगण (**न मे शत्रुः**) न मेरा शत्रु है (**न च प्रियः**) और न मित्र है।

अर्थ- मेरे आत्म स्वरूप को न देखता हुआ यह जगत न मेरा शत्रु है और न मित्र है, मेरे आत्म स्वरूप को देखता हुआ यह समस्त जगत न मेरा शत्रु है, और न मेरा कोई मित्र है।

त्यक्त्वैवं बहिरात्मान मन्तरात्मव्यवस्थितः।
भावयेत्परमात्मानं सर्व संकल्पवर्जितम्॥ 27॥

बहिरातम के छोड़ विचार, अन्तरात्म करके आचार।
हर संकल्प जाल से हीन, हो परमात्म ध्यान में लीन॥

अन्वयार्थ- (**एवं**) इस प्रकार (**बहिरात्मानं**) बहिरात्मपनेको (**त्यक्त्वा**) छोड़कर (**अंतरात्म व्यवस्थितः**) अंतरात्मा में स्थित होते हुए (**सर्वसंकल्पवर्जितं**) सर्वसंकल्प-विकल्पों से रहित (**परमात्मानं**) परमात्मा को (**भावयेत्**) ध्याना चाहिए।

अर्थ–इस प्रकार बहिरात्मपने को छोड़कर अंतरात्मा में स्थित होते हुये सर्व संकल्प विकल्पों से रहित परमात्मा की भावना करें।

सोऽहमित्यात्तसंस्कारस्तस्मिन् भावनया पुनः।
तत्रैव दृढ़संस्काराल्लभते ह्यात्मनि स्थितिम्॥ 28॥

पुनः आत्म परमातम जाने, दृढ़ता से ऐसा ही माने।
करते-करते यह अभ्यास, उर में हो ज्ञानादिक वास॥

अन्वयार्थ- (**तस्मिन्**) उस परमात्म पद में (**भावनया**) भावना करते रहने से (**सः अहं**) 'वह अनन्तज्ञान स्वरूप परमात्मा मैं हूँ' (**इति**) इस प्रकार के (**आत्तसंस्कारः**) संस्कार को प्राप्त हुआ ज्ञानी पुरुष (**पुनः**) फिर-फिर उस परमात्म पद में आत्म स्वरूप की भावना करता हुआ (**तत्रैव**) उसी परमात्म स्वरूप में (**दृढ़संस्कारात्**) संस्कारकी दृढ़ता के हो जाने से (**हि**) निश्चय से (**आत्मनि**) अपने शुद्ध चैतन्य स्वरूप में (**स्थिति लभते**) स्थिरता को प्राप्त होता है।

अर्थ- उस परमात्म पद में भावना करते रहने से वह अनंतज्ञान स्वरूप परमात्मा मैं हूँ। इस प्रकार के संस्कार को प्राप्त ज्ञानी पुरुष फिर उसी परमात्म स्वरूप में संस्कार की दृढ़ता होने से निश्चय से अपने शुद्ध चैतन्य स्वरूप में स्थिरता को प्राप्त होता है।

मूढात्मा यत्र विश्वस्तस्ततो नान्यद्भयास्पदम्।
यतो भीतस्ततो नान्यदभयस्थानमात्मनः॥ 29॥

मूढ़ करे पर में विश्वास, ये ही भय का कारण खास।
परमातम से हैं भयभीत, अभय आत्म का कोई न मीत॥

अन्वयार्थ- (**मूढात्मा**) अज्ञानी बहिरात्मा (**यत्र**) जिन शरीर पुत्रमित्रादि बाह्यपदार्थों में (**विश्वस्तः**) 'ये मेरे हैं, मैं इनका हूँ' ऐसा विश्वास करता है (**ततः**) उन शरीर-स्त्री-पुत्रादि बाह्यपदार्थों से (**अन्यत्**) और कोई (**भयास्पदं न**) भय का स्थान नहीं है और (**यतः**) जिस परमात्म स्वरूप के अनुभव से (**भीतः**) डरा रहता है (**ततः अन्यत्**) उसके सिवाय दूसरा (**आत्मनः**) आत्मा के लिये (**अभयस्थानं न**) निर्भयता का स्थान नहीं है।

अर्थ- अज्ञानी बहिरात्मा जिस शरीर पुत्रादि बाह्य पदार्थों में ये मेरे हैं मैं इनका हूँ ऐसा विश्वास करता है उन बाह्य पदार्थों से अन्य कोई भय का स्थान नहीं है, और जिस परमात्म स्वरूप से डरता है उसके सिवाय दूसरा आत्मा के लिये निर्भयता का स्थान नहीं है।

सर्वेन्द्रियाणि संयम्य स्तिमिते नान्तरात्मना।
यत्क्षणं पश्यतो भाति तत्तत्वं परमात्मनः॥ 30॥

इन्द्रिय मन का करके रोध, अन्तरात्म का जागे बोध।
यही आत्म का कहा स्वरूप, नहीं अन्य चेतन का रूप॥

अन्वायर्थ- (**सर्वेन्द्रियाणि**) सम्पूर्ण पाँचों इन्द्रियों को (**संयम्य**) अपने विषयों में यथेष्ट प्रवृत्ति करने से रोककर (**स्तिमितेन**) स्थिर हुए (**अन्तरात्मना**) अन्तःकरण के द्वारा (**क्षणं पश्यतः**) क्षण मात्र के लिए अनुभव करने वाले जीव के (**यत्**) जो चिदानन्द स्वरूप (**भाति**) प्रतिभासित होता है। (**तत्**) वही (**परमात्मनः**) परमात्माका (**तत्वं**) स्वरूप है।

अर्थ- संपूर्ण इंद्रियों को अपने अपने विषयों से रोककर स्थिर हुए अंत:करण के द्वारा क्षण मात्र के लिये अनुभव करने वाले जीव के जो [चिदानंद स्वरूप] प्रतिभाषित होता है, वही परमात्मा का स्वरूप है।

यः परात्मा स एवाऽहं योऽहं स परमस्ततः।
अहमेव मयोपास्यो नान्यः कश्चिदिति स्थितिः॥ 31॥
वह मैं हूँ आतम जो श्रेष्ठ, वही आत्म परमात्म यथेष्ट।
मैं हूँ मेरे योग्य उपास्य, नहीं अन्य का कुछ भी भाष्य॥

अन्वयार्थ- (**यः**) जो (**परात्मा**) परमात्मा है (**स एव**) वह ही (**अहं**) मैं हूँ तथा (**यः**) जो स्वानुभवगम्य (**अहं**) मैं हूँ (**सः**) वही (**परमः**) परमात्मा है (**ततः**) इसलिये-जब कि परमात्मा और आत्मा में अभेद है (**अहं एव**) मैं ही (**मया**) मेरे द्वारा (**उपास्यः**) उपासना किये जाने के योग्य हूँ (**कश्चित् अन्यः न**) दूसरा कोई मेरा उपास्य नहीं हैं, (**इति स्थितिः**) इस प्रकार ही आराध्य-आराधक-भाव की व्यवस्था है।

अर्थ- जो परमात्मा है वही मैं हूँ, जो [स्वानुभवगम्य] मैं हूँ वही परमात्मा है, इसलिये मैं ही मेरे द्वारा उपासना किये जाने के योग्य हूँ दूसरा कोई मेरा उपास्य नहीं हैं। इस प्रकार आराध्य और आराधक की व्यवस्था है।

प्रच्याव्य विषयेभ्योऽहं मां मयैव मयि स्थितम्।
बोधात्मानं प्रपनोऽस्मि परमानन्द निर्वृतम्॥ 32॥
छुड़ा आत्म से विषयाभ्यास, मेरे द्वारा मुझ में वास।
परमानन्द पूर्ण में आज, ज्ञान स्वरूपी चेतन राज॥

अन्वयार्थ- (**अहं**) मैं (**मयि स्थितम्**) अपने ही में स्थित ज्ञानस्वरूप (**परमानन्दनिर्वृतम्**) परम आनन्द से परिपूर्ण (**मां**) अपनी आत्मा को (**विषयेभ्यः**) पंचेन्द्रियों के विषयों से (**प्रच्याव्य**) छुड़ाकर (**मया एव**) अपने ही द्वारा (**प्रपन्नोऽस्मि**) आत्म स्वरूप को प्राप्त हुआ हूँ।

अर्थ- मैं अपने में ही स्थित ज्ञान स्वरूप परम आनंद से परिपूर्ण अपनी आत्मा को पंचेन्द्रिय के विषयों से छुड़ाकर अपने ही द्वारा आत्म स्वरूप को प्राप्त हुआ हूँ।

यो न वेत्ति परं देहा देवमात्मानमव्ययम्।
लभते स न निर्वाणं तप्त्वाऽपि परमं तपः॥ 33॥

तन ये चेतन को जो भिन्न, माने ना अविनाशी छिन्न।
तप को तपकर भी वह लोग, पावें ना मुक्ती संयोग॥

अन्वयार्थ- (**एवं**) उक्त प्रकार से (**यः**) जो (**अव्ययं**) अविनाशी (**आत्मानं**) आत्मा को (**देहात्**) शरीर से (**परं न वेत्ति**) भिन्न नहीं जानता है (**सः**) वह (**परमं तपः तप्त्वापि**) घोर तपश्चरण करके भी (**निर्वाणं**) मोक्ष को (**न लभते**) प्राप्त नहीं करता है।

अर्थ- उक्त प्रकार से जो अविनाशी आत्मा को शरीर से भिन्न नहीं जानता है, वह घोर तपश्चरण करके भी मोक्ष को प्राप्त नहीं करता है।

आत्म देहान्तरज्ञान जनिताल्हाद निर्वृतः।
तपसा दुष्कृतं घोरं भुञ्जानोऽपि न खिद्यते॥ 34॥
भेद ज्ञान युत हैं जो संत, परमाह्लाद सहित गुणवन्त।
तप से कष्ट सहें कर जाप, खेद खिन्न ना होते आप॥

अन्वयार्थ- (**आत्म देहांतरज्ञान जनिताल्हादनिर्वृतः**) आत्मा और शरीर के भेद-विज्ञान से उत्पन्न हुए आनन्द से जो आनन्दित हैं वह (**तपसा**) तपके द्वारा-द्वादश प्रकार के तप द्वारा उदय में लाये हुए (**घोरं दुष्कृतं**) भयानक दुष्कर्मों के फल को (**भुञ्जानः अपि**) भोगता हुआ भी (**न खिद्यते**) खेद को प्राप्त नहीं होता है।

अर्थ- आत्मा और शरीर के भेद विज्ञान से उत्पन्न हुये आनंद से जो आनंदित है, वह तप के द्वारा उदय में लाये हुये भयानक दुष्कर्मों के फल को भोगता हुआ भी खेद को प्राप्त नहीं होता है।

रागद्वेषादि कल्लोलैरलोलं यन्मनो जलम्।
स पश्यात्यात्मनस्तत्वं स तत्त्वं नेतरो जनः॥35॥
राग द्वेष आदिक कल्लोल, पाकर मन जल रहे अडोल।
आत्मावलोकन पाते लोग, शेष का ना मिलता संयोग॥

अन्वयार्थ- (**यन्मनोजलम्**) जिसका मनरूपी जल (**राग-द्वेषादिकल्लोलैः**) राग-द्वेष-काम-क्रोध-मान-माया-लोभादि तरंगों से (**अलोलं**) चंचल नहीं होता (**सः**) वही पुरुष (**आत्मनः तत्वम्**) आत्मा के यथार्थ स्वरूप को (**पश्यति**) देखता है-अनुभव करता है-(**तत् तत्वम्**) उस आत्मतत्व को (**इतरो जन**) दूसरा राग द्वेषादि कल्लोलों से आकुलित चित्त मनुष्य (**न पश्यति**) नहीं देख सकता है।

अर्थ- जिसका मन रूप जल, राग, द्वेष, कामादि तरंगों से चंचल नहीं होता है, वही पुरुष आत्मा के यथार्थ स्वरूप को देखता है। उस आत्म स्वरूप को अन्य राग, द्वेषादि कल्लोलों से आकुलित चित्त मनुष्य नहीं देख सकता है।

Aakruti

अविक्षिप्तं मनस्तत्त्वं विक्षिप्तं भ्रान्तिरात्मनः।
धारयेत्तदविक्षिप्तं विक्षिप्तं नाश्रेयत्ततः॥ 36॥

अविक्षिप्त मन आतम तत्त्व, हो विक्षिप्त मन भ्रान्ति सत्व।
अविक्षिप्त मन का कर योग, नहिं विक्षिप्त का कर संयोग॥

अन्वयार्थ-(**अविक्षिप्तं**) रागादिपरिणति से रहित तथा शरीर और आत्मा को एक मानने रूप मिथ्या अभिप्राय से रहित जो स्वरूप में स्थिर है (**मनः**) वही मन है (**आत्मनः तत्त्वं**) आत्मा का वास्तविक रूप है और (**विक्षिप्तं**) रागादि रूप परिणत हुआ एवं शरीर तथा आत्मा के भेदज्ञान से शून्यमन है वह (**आत्मनः भ्रान्तिः**) आत्मा का विभ्रम है-आत्मा का निजरूप नहीं है (**ततः**) इसलिये (**तत् अविक्षिप्तं**) उस रागद्वेषादि से रहित मन को (**धारयेत्**) धारण करना चाहिये और (**विक्षिप्तं**) रागद्वेषादि से क्षुब्ध हुए मन को (**न आश्रयेत्**) आश्रय नहीं देना चाहिये।

अर्थ- रागादि परिणति से रहित जो स्वरूप में स्थिर है, वही मन है, आत्मा का वास्तविक रूप है और रागादि रूप परिणत हुआ एवं शरीर तथा आत्मा के भेद ज्ञान से शून्य मन है वह आत्मा का निजरूप नहीं है, इसलिये उस अविक्षिप्त मन को धारण करें और राग-द्वेषादि से क्षुब्ध हुये मन का आश्रय न करें।

अविद्याभ्याससंस्कारैरवशं क्षिप्यते मनः।
तदेव ज्ञानसंस्कारैः स्वतस्तत्त्वेऽवतिष्ठते॥ 37॥

जिसके होय अविद्याभ्यास, कुसंस्कार से मनः विनाश।
मन में ज्ञान के सुसंस्कार, आत्मावस्थित का विस्तार॥

अन्वयार्थ- (**अविद्याभ्याससंस्कारैः**) शरीरादिक को शुचि, स्थिर और आत्मीय मानने रूप जो अविद्या अज्ञान है उसके पुनः-पुनः प्रवृत्ति रूप अभ्यास से उत्पन्न हुए संस्कारों द्वारा (**मनः**) मन (**अवशं**) स्वाधीन न रहकर (**क्षिप्यते**) विक्षिप्त हो जाता है-रागी द्वेषी बन जाता है और (**तदेव**) वही मन (**ज्ञानसंस्कारैः**) आत्म-देह के भेद विज्ञान रूप संस्कारों-द्वारा (**स्वतः**) स्वयं ही (**तत्त्वे**) आत्मस्वरूप में (**अवतिष्ठते**) स्थित हो जाता है।

अर्थ- अविद्या रूप अभ्यास से उत्पन्न हुये संस्कारों द्वारा मन स्वाधीन न रहकर विक्षिप्त हो जाता है और वही मन आत्मदेह के भेद विज्ञान रूप संस्कारों द्वारा स्वयं ही आत्म स्वरूप में स्थित हो जाता है।

अपमानादयस्तस्य विक्षेपो यस्य चेतसः।
नापमानादयस्तस्य न क्षेपो यस्य चेतसः॥ 38॥

जिसके चित्त में होय विकार, अपमानादिक हो तिरस्कार।
जिसके चित्त में नहीं विकार, अपमानादि न हि तिरस्कार॥

अन्वयार्थ- (**यस्य चेतसः**) जिसके चित्त का (**विक्षेपः**) रागादिरूप परिणमन होता है (**तस्य**) उसी के (**अपमानादयः**) अपमानादिक होते हैं। (**यस्यचेतसः**) जिसके चित्त का (**क्षेपः न**) राग-द्वेषादिरूप परिणमन नहीं होता (**तस्य**) उसके (**अपमानदयः न**) अपमान-तिरस्कारादि नहीं होते हैं।
अर्थ- जिसके चित्त का रागादि रूप परिणमन होता है, उसी के अपमानादिक होते हैं, और जिसके चित्त का रागादिक रूप परिणमन नहीं होता है, उसके अपमानादिक नहीं होते हैं।

यदा मोहात्प्रजायेते रागद्वेषौ तपस्विनः।
तदैव भावयेत्स्वस्थमात्मानं शाम्यतः क्षणात्॥39॥
मोह उदय से रागद्वेष, होय तपस्वी के अवरोध।
निज स्वरूप में होवे लीन, क्षण में सारे होंय विलीन॥

अन्वयार्थ- (**यदा**) जिस समय (**तपस्विनः**) किसी तपस्वी अन्तरात्मा के (**मोहात्**) मोहनीय कर्म के उदय से (**रागद्वेषी**) राग और द्वेष (**प्रजायेते**) उत्पन्न हो जावें (**तदा एव**) उसी समय वह तपस्वी (**स्वस्थं आत्मानं**) अपने शुद्ध आत्मस्वरूप की (**भावयेत्**) भावना करे। इससे वे रागद्वेषादिक (**क्षणात्**) क्षणभर में (**शाम्यतः**) शांत हो जाते हैं।
अर्थ- जिस समय किसी तपस्वी के मोहनीय कर्म के उदय से राग और द्वेष उत्पन्न हो जावे उसी समय वह तपस्वी अपने आत्म स्वरूप की भावना करे। इससे रागद्वेषादि क्षण भर में शांत हो जाते हैं।

यत्र काये मुनेः प्रेम ततः प्रच्याव्य देहिनम।
बुद्धया तदुत्तमे काये, योजयेत्प्रेम नश्यति॥ 40॥
काय से प्रेम करें जो संत, उससे दूर हटाय तुरन्त।
ज्ञान से चेतन का कर ध्यान, तन से नेह करे दुर्ध्यान॥

अन्वयार्थ- (**यत्र काये**) जिस शरीर में (**मुनेः**) मुनि का-अन्तरात्मा का (**प्रेम**) प्रेम-स्नेह है (**ततः**) उससे (**बुद्धया**) भेद विज्ञान के आधार पर (**देहिनम्**) आत्मा को (**प्रच्याव्य**) पृथक् करके (**तदुत्तमेकाये**) उस उत्तम चिदानन्दमय काय में-आत्मस्वरूप में (**योजयेत्**) लगावे। ऐसा करने से (**प्रेम नश्यति**) बाह्य शरीर और इन्द्रिय विषयों में होने वाला प्रेम नष्ट हो जाता है।
अर्थ- जिस शरीर में मुनि का प्रेम है, उससे भेद विज्ञान के आधार पर आत्मा को पृथक करके उस उत्तम चिदानंदमय काय में [आत्म स्वरूप में] लगावें। ऐसा करने से शरीर आदि में होने वाला प्रेम नष्ट हो जाता है।

आत्मविभ्रमजं दुःखमात्मज्ञानात्प्रशाम्यति।
नाऽयतास्तत्र निर्वान्ति कृत्वापि परमं तपः॥ 41॥
आतम विभ्रम से दुख होय, आत्म ज्ञान से शांती सोय।
स्व संवेदन जो ना पाय, मोक्ष नहीं तपकर भी जाए॥

Aakriti

अन्वयार्थ- (**आत्मविभ्रजं**) शरीरादिक में आत्मबुद्धि रूप विभ्रम से उत्पन्न होने वाला (**दु:ख**) दुख-कष्ट (**आत्मज्ञानात्**) शरीरादि से भिन्नरूप आत्मस्वरूप के अनुभव करने से (**प्रशाम्यति**) शांत हो जाता है। अतएव जो पुरुष (**तत्र**) भेदविज्ञान के द्वारा आत्मस्वरूप की प्राप्ति करने में (**अयता:**) प्रयत्न नहीं करते वे (**परमं**) उत्कृष्ट एवं दुर्द्धर (**तपं**) तप को (**कृत्वापि**) करके भी (**न निर्वान्ति**) निर्वाण को प्राप्त करने में समर्थ नहीं होते हैं।

अर्थ- शरीरादिक में आत्मबुद्धि रूप विभ्रम से उत्पन्न होने वाला दु:ख आत्म स्वरूप के अनुभव करने से शांत हो जाता है अतएव जो पुरुष आत्म स्वरूप की प्राप्ति करने में प्रयत्न नहीं करते वे उत्कृष्ट एवं दुर्द्धर तप को करके भी निर्वाण को प्राप्त नहीं करते।

शुभं शरीरं दिव्यांश्च विषयानभिवाञ्छति।
उत्पन्नाऽऽत्ममतिर्देहे तत्वज्ञानी ततश्च्युतिम्॥ 42॥

तन से आत्म बुद्धि का योग, दिव्य विषय शुभ तन का भोग।
अज्ञानी करता है चाह, तत्त्व ज्ञानी च्युति को पाय॥

अन्वयार्थ- (**देहे उत्पन्नात्ममति:**) शरीर में जिस को आत्मबुद्धि उत्पन्न हो गई है ऐसा बहिरात्मा तप करके (**शुभं शरीरं च**) सुन्दर शरीर और (**दिव्यान् विषयान्**) उत्तमोत्तम अथवा स्वर्ग के विषय भोगों को (**अभिवांच्छति**) चाहता है और (**तत्वज्ञानी**) ज्ञानी अन्तरात्मा (**तत:**) शरीर और तत्संबंधी विषयों से (**च्युतिम्**) छूटना चाहता है।

अर्थ- शरीर में आत्म बुद्धि धारण करने वाला पुरुष शुभ शरीर और दिव्य विषय सुखों को चाहता है किन्तु ज्ञानी अंतरात्मा शरीर और तत्संबंधी विषयों से छूटना चाहता है।

परत्राहम्मति: स्वस्माच्च्युतो बध्नात्यसंशयम्।
स्वस्मिन्नहम्मतिश्च्युत्वा परस्मान्मुच्यते बुध:॥ 43॥

चेतन निज की माने देह, उसे बन्ध हो नि:सन्देह।
आत्म बुद्धि आतम में पाय, कर्म बन्ध से मुक्ती पाय॥

अन्वयार्थ- (**परत्राहम्मति:**) शरीरादिक परपदार्थों में जिसकी आत्मबुद्धि हो रही है ऐसा बहिरात्मा (**स्वस्मात्**) अपने आत्मस्वरूप से (**च्युत:**) भ्रष्ट हुआ (**असंशयम्**) नि:सन्देह (**बध्नाति**) अपने को कर्म बंधनसे बद्ध करता है और (**स्वस्मिन्नहम्मति:**) अपने आत्मा के स्वरूप में ही आत्मबुद्धि रखने वाला (**बुध:**) अन्तरात्मा (**परस्मात्**) शरीरादिक पर के सम्बंध से (**च्युत्वा**) च्युत होकर (**मुच्यते**) कर्म बंधन से छूट जाता है।

अर्थ- शरीरादिक पदार्थों में जिसकी आत्म बुद्धि हो रही है ऐसा बहिरात्मा अपने आत्म स्वरूप से भ्रष्ट हुआ नि:संदेह कर्म बंधन में बँध जाता है और अपने आत्मा के स्वरूप में ही आत्म बुद्धि रखने वाला अंतरात्मा शरीरादिक पर के संबंध से च्युत होकर कर्म बंधन से छूट जाता है।

दृश्यमानमिदं मूढस्त्रिलिङ्गमवबुध्यते।
इदमित्यवबुद्धस्तु निष्पन्नं शब्दवर्जितम्॥ 44॥
दृश्यमान त्रियलिंग को मूढ़, आतम माने होय विमूढ़।
ज्ञानी शब्द रहित निष्पन्न, चेतन चित्त रहित सम्पन्न॥

अन्वयार्थ- (**मूढः**) अज्ञानी बहिरात्मा (**इदं दृश्यमानं**) इस दिखाई देने वाले शरीर को (**त्रिलिंग अवबुध्यते**) स्त्री-पुरुष-नपुंसक के भेद से यह आत्मत्व त्रिलिङ्गरूप है ऐसा मानता है, किन्तु (**अवबुद्धः**) आत्मज्ञानी अन्तरात्मा (**इदं**) यह आत्मतत्त्व है-त्रिलिङ्गरूप आत्मतत्व नहीं है वह (**निष्पन्नं**) अनादि संसिद्ध है तथा (**शब्दवर्जितम्**) नामादिक विकल्पों से रहित है (**इति**) ऐसा समझता है।

अर्थ- मूर्ख बहिरात्मा इस दिखाई देने वाले शरीर को तीन लिंग रूप मानता है, किन्तु प्रबुद्ध आत्मा इस आत्मा तत्त्व को अनादि सिद्ध और नामादिक विकल्पों से रहित समझता है।

जानन्नप्यात्मनस्तत्त्वं विविक्तं भावयन्नपि।
पूर्वविभ्रमसंस्काराद् भ्रांतिं भूयोऽपि गच्छति॥ 45॥
आतम आत्म तत्व को जान, तन से भिन्न स्वयं को मान।
पूरव विभ्रम के संस्कार, माने तन में आतम सार॥

अन्वयार्थ- अन्तरात्मा (**आत्मनः तत्वं**) अपने आत्मा के शुद्ध चैतन्य स्वरूप को (**जानन् अपि**) जानता हुआ भी (**विविक्तं भावयन् अपि**) और शरीरादिक अन्य पर पदार्थों से भिन्न अनुभव करता हुआ भी (**पूर्वविभ्रमसंस्कारात्**) पहली बहिरात्मावस्था में होने वाले भ्रान्ति के संस्कारवश (**भूयोऽपि**) पुनरपि (**भ्रान्ति गच्छति**) भ्रान्ति को प्राप्त हो जाता है।

अर्थ- आत्मा के शुद्ध स्वरूप को जानता हुआ भी और शरीरादिक पर पदार्थों से भिन्न अनुभव करता हुआ भी पूर्व कालीन भ्रान्ति के संस्कार वश पुनः भ्रान्ति को प्राप्त हो जाता है।

अचेतनमिदं दृश्य मदृश्यं चेतनं ततः।
क्व रुष्यामि क्व तुष्यामि मध्यस्थोऽहं भयाम्यतः॥46॥
दृश्य मान सब द्रव्य अजीव, नहीं है इन्द्रिय गोचर जीव।
रुष्ट होऊँ किस पर संतुष्ट, धरूँ भाव मध्यस्थ विशिष्ट॥

अन्वयार्थ- अन्तरात्मा तब अपनी विचार परिणति को इस रूप करे कि (**इदं दृश्यं**) यह जो दृष्टिगोचर होने वाला पदार्थ समूह है वह सबका सब (अचेतनं) चेतनारहित-जड़ है और जो (**चेतनं**) चैतन्यरूप आत्मसमूह है वह (**अदृश्यं**) इन्द्रियों के द्वारा दिखाई नहीं पड़ता (**ततः**) इसलिए (**क्व रुष्यामि**) मैं किस पर तो क्रोध करूँ? और (**क्व तुष्यामि**) किस पर संतोष व्यक्त करुँ? (**अतः अहं मध्यस्थः भवामि**) ऐसी हालत में मैं तो अब रागद्वेष के परित्याग रूप मध्यस्थभाव

को धारण करता हूँ।

अर्थ- अंतरात्मा विचार करे कि यह जो दृष्टिगोचर होने वाला पदार्थ है वह चेतना रहित है और जो चैतन्य रूप आत्मसमूह है वह इन्द्रियों के द्वारा दिखायी नहीं पड़ता इसलिये मैं किस पर क्रोध करूँ? और किस पर संतोष व्यक्त करूँ? ऐसी अवस्था में मैं तो अब राग द्वेष के परित्याग रूप मध्यस्थ भाव को धारण करता हूँ।

त्यागादाने बहिर्मूढः करोत्यध्यात्ममात्मवित्।
नान्तर्बहिरुपादानं न त्यागो निष्ठितात्मनः॥ 47॥

अज्ञानी पर त्यागादान, आत्म ज्ञान वित् तत्व निधान।
निष्ठ आत्म ना करती त्याग, ना ही ग्रहण से करती राग॥

अन्वयार्थ- (**मूढः**) मूर्ख बहिरात्मा (**बहिः**) बाह्य पदार्थों का (**त्यागादाने करोति**) त्याग और ग्रहण करता है अर्थात् द्वेष के उदय से जिनको अनिष्ट समझता है उनको छोड़ देता है और रागके उदय से जिन्हें इष्ट समझता है उनको ग्रहण कर लेता है तथा (**आत्मवित्**) आत्माके स्वरूप का ज्ञाता अन्तरात्मा (**अध्यात्मं त्यागादाने करोति**) अन्तरंग राग-द्वेष का त्याग करता है और अपने सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूप निजभावों का ग्रहण करता है। परन्तु (**निष्ठतात्मनः**) शुद्ध स्वरूप में स्थित जो कृत कृत्य परमात्मा है उसके (**अंतःबहिः**) अंतरंग और बहिरंग किसी भी पदार्थ का (**न त्यागः**) न तो त्याग होता है और (**न उपादानं**) न ग्रहण होता है।

अर्थ- मूर्ख बहिरात्मा बाह्य पदार्थों का त्याग और ग्रहण करता है तथा आत्मत्व का ज्ञाता अंतरंग रागद्वेष का त्याग करता है और रत्नत्रय रूप निज भावों को ग्रहण करता है परंतु शुद्ध स्वरूप में स्थित जो परमात्मा है, उसके अंतरंग बहिरंग किसी भी पदार्थ का न तो त्याग होता है और न ग्रहण होता है।

युञ्जीत मनसाऽऽत्मानं वाक्कायाभ्यां वियोजयेत्।
मनसा व्यवहारं तु त्यजेद्वाक्काययोजितम्॥ 48॥

आतम से मन करो अभेद, वच तन से मन का विच्छेद।
मन से वाणी का आधार, तन से भी छोड़ो व्यवहार॥

अन्वयार्थ- (**आत्मानं**) आत्मा को (**मनसा**) मन के साथ (**युञ्जीत**) संयोजित करें- चित्त और आत्मा का अभेदरूप से अध्यवसाय करें (**वाक्कायाभ्यां**) वचन और काय से (**वियोजयेत्**) अलग करें-उन्हें आत्मा न समझें (**तु**) और (**वाक्काययोजितम्**) वचन-काय से किये हुए (**व्यवहारं**) व्यवहार को (**मनसा**) मन से (**त्यजेत्**) छोड़ देवें-उस में चित्त को न लगावें।

अर्थ- आत्मा को मन के साथ संबंध करें, वचन और काय से अलग करें और वचन काय से किये हुये व्यवहार को मन से छोड़ देवें [उसमें चित्त न लगावें]।

जगद्देहात्मदृष्टीनां विश्वास्यं रम्यमेव च।
स्वात्मन्येवात्मदृष्टीनां क्व विश्वासः क्वा वा रतिः ॥ 49 ॥

देहात्म दृष्टि को ये जग रम्य, लगता विश्वसनीय सुरम्य।
स्वात्म दृष्टि को तन में आस, कहाँ रति कहाँ हो विश्वास॥

अन्वयार्थ- (**देहात्मदृष्टीनां**) शरीरमें आत्मदृष्टि रखने वाले मिथ्यादृष्टि बहिरात्माओं को (**जगत्**) यह स्त्री-पुत्र मित्रादि का समूहरूप संसार (**विश्वास्यं**) विश्वास के योग्य (**च**) और (**रम्यं एव**) रमणीय ही मालूम पड़ता है। परन्तु (**स्वात्मनि एव आत्मदृष्टीनां**) अपने आत्मा में ही आत्मदृष्टि रखने वाले सम्यग्दृष्टि अन्तरात्माओं को (**क्व विश्वासः**) इन स्त्रीपुत्रादि पर पदार्थों में कहाँ विश्वास हो सकता है? (**वा**) और (**क्व रतिः**) कहाँ आसक्ति हो सकती है? कहीं भी नहीं।

अर्थ- शरीर में आत्म दृष्टि रखने वाले बहिरात्माओं को यह संसार विश्वास के योग्य और रमणीय ही मालूम पड़ता है। परंतु अपनी आत्मा में आत्म दृष्टि रखने वाले अंतरात्माओं को इन पर पदार्थों में कहाँ विश्वास हो सकता है? और कहाँ आसक्ति हो सकती है? अर्थात् कहीं भी नहीं।

आत्मज्ञानात्परं कार्यं न बुद्धौ धारयेच्चिरम्।
कुर्यादर्थवशात्किंचिद्वाक्कायाभ्यामतत्परः॥ 50 ॥

मति को आत्म ज्ञान बिन कार्य, चिरकालीन न देवे भार।
किंचित् स्वपरोपकार वसाद्, वचन काय से हो उत्पाद॥

अन्वयार्थ- अन्तरात्मा को चाहिये कि वह (**आत्मज्ञानात्परं**) आत्मज्ञान से भिन्न दूसरे (**कार्यं**) कार्य को (**चिरं**) अधिक समय तक (**बुद्धौ**) अपनी बुद्धि में (**न धारयेत्**) धारण नहीं करें। यदि (**अर्थवशात्**) स्व-पर के उपकारादिरूप प्रयोजन के वश (**वाक्कायाभ्यां**) वचन और काय से (**किंचित् कुर्यात्**) कुछ करना ही पड़े तो उसे (**अतत्परः**) अनासक्त होकर (**कुर्यात्**) करे।

अर्थ- अन्तरात्मा को चाहिए कि आत्मज्ञान से भिन्न दूसरे कार्यों को अधिक समय तक अपनी बुद्धि में धारण नहीं करें। यदि किसी प्रयोजन से वचन और काय से कुछ करना पड़े तो उसे अनासक्त होकर करें।

यत्पश्यामीन्द्रियैस्तन्मे नास्ति यन्नियतेन्द्रियः।
अंतः पश्यामि सानन्दं तदस्तु ज्योतिरुत्तमम्॥ 51 ॥

इन्द्रिय गोचर जो भी होय, मेरा रूप नहीं वह सोय।
इन्द्रिय वश कर आतम रूप, श्रेष्ठानन्द है ज्योती स्वरूप॥

अन्वयार्थ- अन्तरात्मा को विचारना चाहिये कि (**यत्**) जो कुछ शरीरादि बाह्य पदार्थ (**इन्द्रियैः**) इन्द्रियों के द्वारा (**पश्यामि**) मैं देखता हूँ। (**तत्**) वह (**मे**) मेरा स्वरूप (**नास्ति**) नहीं है, किन्तु (**नियतेन्द्रियः**) इन्द्रियों को बाह्य विषयों से रोककर स्वाधीन करता हुआ (**यत्**) जिस (**उत्तमं**)

उत्कृष्ट अतीन्द्रिय **(सानन्द ज्योतिः)** आनन्दमय ज्ञान प्रकाशको **(अन्तः)** अंतरंग में **(पश्यामि)** देखता हूँ-अनुभव करता हूँ **(तत् मे)** वही मेरा वास्तविक स्वरूप **(अस्तु)** होना चाहिये।

अर्थ- अंतरात्मा को विचारना चाहिये कि जो कुछ शरीरादि बाह्य पदार्थ इन्द्रियों के द्वारा मैं देखता हूँ, वह मेरा स्वरूप नहीं है, किन्तु इंद्रियों को बाह्य विषयों से रोककर स्वाधीन करता हुआ जिस उत्कृष्ट, अतीन्द्रिय, आनंदमय, ज्ञान प्रकाश को अंतरंग में देखता हूँ, वही वास्तविक स्वरूप मुझे प्राप्त होवे।

सुखमारब्धयोगस्य बहिर्दुःखमथाऽऽत्मनि।
बहिरेवाऽसुखं सौख्यमध्यात्मं भावितात्मनः॥ 52॥

पहले योग से सुख हो बाह्य, निज आतम को दुख हो ग्राह्य।
साधु को विषयों में दुख होय, सुख अनुभव आतम में सोय॥

अन्वयार्थ- **(आरब्धयोगस्य)** जिसने आत्मभावना का अभ्यास करना अभी शुरू किया है उस मनुष्य को-अपने पुराने संस्कारों की वजह से **(बहिः)** बाह्य विषयों में **(सुखं)** सुख मालूम होता है **(अथ)** प्रत्युत इसके **(आत्मनि)** आत्मस्वरूप की भावना में **(दुःखं)** दुःख प्रतीत होता है। किन्तु **(भावितात्मनः)** यथावत् आत्मस्वरूप को जानकर उसकी भावना के अच्छे अभ्यासी को **(बहिः एव)** बाह्य विषयों में ही **(असुखं)** दुःख जान पड़ता है और **(अध्यात्मं)** अपने आत्मा के स्वरूप चिंतन में ही **(सौख्यम्)** सुख का अनुभव होता है।

अर्थ- आरब्धयोग से व्यक्ति को बाह्य विषयों में सुख मालूम होता है तथा आत्म स्वरूप की भावना में दुःख प्रतीत होता है किन्तु आत्म स्वरूप को जानकर उसकी भावना के अच्छे अभ्यासी को बाह्य विषयों में ही दुःख जान पड़ता है और आत्म स्वरूप के चिंतवन में ही सुख का अनुभव होता है।

तद् ब्रूयात्तत्परान्प्रच्छेत्तदिच्छेत्तत्परो भवेत।
येनाऽविद्यामयं रूपं त्यक्त्वा विद्यामयं व्रजेत्॥ 53॥

रूप अविद्या का परिहार, विद्या रूप करो स्वीकार।
आत्मार्थी से आत्म स्वरूप, आत्मोपलब्धि आदर रूप॥

अन्वयार्थ- **(तत् ब्रूयात्)** उन आत्मस्वरूप का कथन करे-उसे दूसरों को बतलावे **(तत् परान् पृच्छेत्)** उन आत्मस्वरूप को दूसरे आत्मानुभवी पुरुषों से-विशेष ज्ञानियों से-पूछें **(तत् इच्छेत्)** उस आत्मस्वरूप की इच्छा करें-उसकी प्राप्ति को अपना इष्ट बनायें और **(तत्परः भवेत्)** उस आत्मस्वरूप की भावना में सावधान हुआ आदर बढ़ावें **(येन)** जिससे **(अविद्यामयं रूपं)** यह अज्ञानमय बहिरात्म रूप **(त्यक्त्वा)** छूटकर **(विद्यामयं व्रजेत्)** ज्ञानमय परमात्म स्वरूप की प्राप्ति होवे।

अर्थ- उस आत्म स्वरूप का कथन करें, उस आत्म स्वरूप के विषय में ही ज्ञानियों से पूछें, उस आत्म स्वरूप की इच्छा करें, उस आत्म भावना में आदर भाव धारण करें जिससे यह अज्ञानमय बहिरात्मा छूटकर ज्ञानमय परमात्म स्वरूप की प्राप्ति होवे।

शरीरे वाचि चात्मानं सन्धत्ते वाक् शरीरयोः।
भ्रान्तोऽभ्रान्तः पुनस्तत्त्वं पृथगेषां निबुध्यते॥ 54॥
मूढ़ भ्रान्त वच तन को धार, आतम रूप करे स्वीकार।
ज्ञाता वचन काय को रूप, भिन्न मानता आत्म स्वरूप॥

अन्वयार्थ- **(वाक् शरीरयोः भ्रान्तः)** वचन और शरीर में जिसकी भ्रान्ति हो रही है-जो उनके वास्तविक स्वरूप को नहीं समझता ऐसा बहिरात्मा **(वाचि शरीरे** च) वचन और शरीर में **(आत्मानं सन्धत्ते)** आत्मा का आरोपण करता है अर्थात् वचन को तथा शरीर को आत्मा मानता है **(पुनः)** किन्तु **(अभ्रान्तः)** वचन और शरीर से आत्मा की भ्रान्ति न रखनेवाला ज्ञानी पुरुष **(एसां तत्त्वं)** इन शरीर और वचन के स्वरूप को **(पृथक्)** आत्मा से भिन्न **(निबुध्यते)** जानता है।

अर्थ- वचन और शरीर के विषय में भ्रान्ति धारण करने वाला बहिरात्मा वचन और काय में आत्मा का आरोपण करता है किन्तु वचन और काय में आत्मा की भ्रान्ति न रखने वाला शरीर और वचन के स्वरूप को आत्मा से भिन्न जानता है।

न तदस्तीन्द्रियार्थेषु यत्क्षेमङ्करमात्मनः।
तथापि रमते बालस्तत्रैवाज्ञानभावनात्॥55॥
आतम का क्षेमंकर रूप, इन्द्रिय विषय में नहीं अनूप।
फिर भी बाल भावना धार, विषयों में रमता अधिकार॥

अन्वयार्थ- **(इन्द्रियार्थेषु)** पाँचों इन्द्रियों के विषय में (तत्) ऐसा कोई पदार्थ **(न अस्ति)** नहीं है **(यत्)** जो **(आत्मनः)** आत्मा का **(क्षेमंकर)** भला करने वाला हो। **(तथापि)** तो भी **(बालः)** यह अज्ञानी बहिरात्मा **(अज्ञानभावनात्)** चिरकालीन मिथ्यात्व के संस्कारवश **(तत्रैव)** उन्हीं इन्द्रियों के विषयों में **(रमते)** आसक्त रहता है।

अर्थ- पाँचों इंद्रियों के विषय में ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जो आत्मा का भला करने वाला हो, फिर भी यह अज्ञानी बहिरात्मा चिरकालीन मिथ्यात्व के संस्कार वश उन्हीं इन्द्रियों के विषय में आसक्त रहता है।

चिरं सुषुप्तास्तमसि मूढात्मानः कुयोनिषु।
अनात्मीयात्मभूतेषु ममाहमिति जाग्रति॥ 56॥
मिथ्यातम में खोकर मूढ़, कुगतिन में सो हुआ विमूढ़।
पुत्रादिक देहादिक रूप, मान स्वयं को हुआ विरूप॥

अन्वयार्थ- (**मूढात्मानः**) ये मूर्ख अज्ञानी जीव (**तमसि**) मिथ्यात्वरूपी अन्धकार के उदयवश (**चिरं**) अनादिकाल से (**कुयोनिषु**) नित्यनिगोदादिक कुयोनियों में (**सुषुप्ताः**) सो रहे हैं-अतीव जड़ता को प्राप्त हो रहे हैं। यदि कदाचित् संज्ञी प्राणियों में उत्पन्न होकर कुछ जागते भी हैं तो (**अनात्मीयात्मभूतेषु मम अहम्**) अनात्मीयभूत स्त्री-पुत्रादिक में 'ये मेरे हैं' और अनात्मभूत शरीरादिकों में 'मैं ही इन रूप हूँ' (**इति जाग्रति**) ऐसा अध्यवसाय करने लगते हैं।

अर्थ- मूर्ख बहिरात्मा जीव मिथ्यात्व रूप अंधकार के उदयवश अनादिकाल से निगोदादि कुयोनियों में सो रहे हैं। कदाचित् संज्ञी प्राणियों में उत्पन्न होकर जागते भी हैं तो अनात्मीय भूत स्त्री पुत्रादि ये मेरे हैं और अनात्मभूत शरीरादिकों में मैं ही इन रूप मैं हूँ, ऐसा अध्यवसाय करने लगते हैं।

पश्येन्निरंतरं देहमात्मनोऽनात्मचेतसा।
अपरात्मधियाऽन्येषामात्मतत्त्वे व्यवस्थितः॥ 57॥

आत्म तत्त्व में थिर हो जाए, तन में भिन्न स्वयं को पाय।
पर के तन को पर ही लेख, अपर आत्म बुद्धी से देख॥

अन्वयार्थ- अन्तरात्मा को चाहिये कि (**आत्मतत्वे**) अपने आत्मस्वरूप में (**व्यवस्थितः**) स्थित होकर (**आत्मनः देह**) अपने शरीर को (**अनात्मचेतसा**) 'यह शरीर मेरा आत्मा नहीं' ऐसी अनात्मबुद्धि से (**निरन्तर पश्येत्**) सदा देखे-अनुभव करे और (**अन्येषां**) दूसरे प्राणियों के शरीर को (**अपरात्मधिया**) 'यह शरीर परका आत्मा नहीं है' ऐसी अनात्मबुद्धि से (**पश्येत्**) सदा अवलोकन करे।

अर्थ- आत्म स्वरूप में स्थित होकर अपने शरीर को आत्म भावना पूर्वक सदा देखें और दूसरे प्राणियों के शरीर को अनात्म बुद्धि से सदा अवलोकन करें।

अज्ञापितं न जानन्ति यथा मां ज्ञापितं तथा।
मूढात्मानस्ततस्तेषां वृथा मे ज्ञापनश्रमः॥58॥

ज्यों अज्ञापित मुझे ना जान, त्यों ज्ञापित का ना हो ज्ञान।
निज स्वरूप ज्ञापन के अर्थ, मेरा सारा श्रम है व्यर्थ॥

अन्वयार्थ- स्वात्मानुभव मग्न अन्तरात्मा विचारता है कि (**यथा**) जैसे (**मूढात्मानः**) ये मूर्ख अज्ञानी जीव (**अज्ञापितं**) बिना बताए हुए (**मां**) मेरे आत्मस्वरूप को (**न जानन्ति**) नहीं जानते हैं। (**तथा**) वैसे ही (**ज्ञापितं**) बतलाये जाने पर भी नहीं जानते हैं। (**ततः**) इसलिये (**तेषां**) उन मूढ़ पुरुषों को (**मे ज्ञापनश्रमः**) मेरा बतलाने का परिश्रम (**वृथा**) व्यर्थ है, निष्फल है।

अर्थ- ये मूर्ख अज्ञानी जीव बिना बताये हुये मेरे आत्म स्वरूप को नहीं जानते हैं, वैसे ही बतलाये जाने पर भी नहीं जानते हैं। इसलिये उन मूढ़ पुरुषों को मेरा बतलाने का परिश्रम व्यर्थ है।

यद् बोधयितुमिच्छामि तन्नाहं यदहं पुनः।
ग्राह्यं तदपि नान्यस्य तत्किमन्यस्य बोधये॥ 59॥

देहादि के ज्ञान की चाह, मेरा रूप नहीं कहलाय।
मम स्वरूप ना पर से ग्राह्य, कैसे समझाऊँ अग्राह्य॥

अन्वयार्थ- (**यत्**) जिस विकल्पाधिरूढ़ आत्मस्वरूप को अथवा देहादिक को (**बोधयितुं**) समझाने-बुझाने की (**इच्छामि**) मैं इच्छा करता हूँ-चेष्टा करता हूँ (**तत्**) वह (**अहं**) मैं नहीं हूँ- आत्मा का वास्तविक स्वरूप नहीं हूँ। (**पुनः**) और (**यत्**) जो ज्ञानानन्दमय स्वयं अनुभव करने योग्य आत्मस्वरूप (**अहं**) मैं हूँ (**तदपि**) वह भी (**अन्यस्य**) दूसरे जीवों के (**ग्राह्यं न**) उपदेश द्वारा ग्रहण करने योग्य नहीं है- वह तो स्वसंवेदन के द्वारा अनुभव किया जाता है (**तत्**) इसलिए (**अन्यस्य**) दूसरे जीवों को (**किं बोधये**) मैं क्या समझाऊँ?

अर्थ- जिस विकल्पात्मक आत्म स्वरूप को मैं समझाने की इच्छा करता हूँ वह मैं नहीं हूँ और ज्ञानानंदमय स्वयं अनुभव करने योग्य आत्म स्वरूप मैं हूँ वह भी दूसरे जीवों के लिये उपदेश द्वारा ग्रहण करने योग्य नहीं है, इसलिये दूसरे जीवों को मैं क्या समझाऊँ?

बहिस्तुष्यति मूढात्मा पिहितज्योतिरन्तरे ।
तुष्यत्यन्तः प्रबुद्धात्मा बहिर्व्यावृत्तकौतुकः॥60॥

पिहित ज्योति अन्तर में मूढ़, बाह्य द्रव्य में हुआ विमूढ़।
बाह्य में कौतुक रहित प्रबुद्ध, निज स्वरूप अनुभव से शुद्ध॥

अन्वयार्थ- अन्तरङ्गमें जिसकी ज्ञानज्योति मोह से आच्छादित हो रही है-जिसे स्वरूप का विवेक नहीं ऐसा (**मूढात्मा**) बहिरात्मा (**बहिः**) बाह्य शरीरादि परपदार्थों में ही (**तुष्याति**) संतुष्ट रहता है-आनन्द मानता है, किन्तु मिथ्यात्व के उदयाभाव से प्रबोध को प्राप्त हो गया है आत्मा जिसका ऐसा स्वरूप विवेकी अन्तरात्मा (**बहिर्व्यावृत्तकौतुकः**) बाह्यशरीरादि पदार्थों में अनुराग रहित हुआ (**अन्तः**) अपने अन्तरंग आत्मस्वरूप में ही (**तुष्यति**) संतोष धारण करता है-मग्न रहता है।

अर्थ- अंतरंग में जिसकी ज्ञान ज्योति मोह से आच्छादित हो रही है, ऐसा बहिरात्मा बाह्य शरीरादि पर पदार्थों में ही संतुष्ट रहता है, किन्तु प्रबोध को प्राप्त आत्मा बाह्य शरीरादि पदार्थों में अनुराग रहित हुआ अपने अंतरंग आत्म स्वरूप में ही संतोष धारण करता है।

न जानन्ति शरीराणि सुखदुःखान्यबुद्धयः।
निग्रहानुग्रहधियं तथाप्यत्रैव कुर्वत॥61॥

जड़ तन सुख दुख जाने नाहिं, अन्य बुद्धि उसमें भरमाहिं।
निग्रह बुद्धी तन में जान, करें अनुग्रह अपना मान॥

अन्वयार्थ- अन्तरात्मा विचारता है-(**शरीराणि**) ये शरीर (**सुख-दुःखानि न जानन्ति**) जड़ होने से सुखों तथा दुःखों को नहीं जानते हैं (**तथापि**) तो भी ये जो जीव (**अत्रैव**) इन शरीरों में ही (**निग्रहानुग्रहधियं**) उपवासादि द्वारा दंडरूप निग्रह की और अलंकारादि द्वारा अलंकृत करने रूप अनुग्रह की बुद्धि (**कुर्वते**) धारण करते हैं (**ते**) वे जीव (**अबुद्धयः**) मूढ़बुद्धि हैं-बहिरात्मा हैं।
अर्थ- ये शरीर जड़ होने से सुख और दुख को नहीं जानते, तो भी जो जीव इन शरीरों में ही निग्रह, अनुग्रह की बुद्धि धारण करते हैं, वे जीव बहिरात्मा हैं।

स्वबुद्ध्या यावद् गृह्णीयात् कायवाक् चेतसां त्रयम्।
संसार तावदेतेषां भेदाभ्यासे तु निर्वृतिः॥ 62॥
आत्म बुद्धि से मन वच काय, जग में भ्रमण स्वयं को पाय।
भेद ज्ञान योगों का जोय, मोक्ष प्राप्त प्राणी को होय॥

अन्वयार्थ- (**यावत्**) जब तक (**कायवाक्चेतसां त्रयम्**) शरीर, वचन और मन इन तीनों को (**स्वबुद्ध्या**) आत्मबुद्धि से (**गृह्णीयात्**) ग्रहण किया जाता है (**तावत्**) तब तक (**संसारः**) संसार है (**तु**) और जब (**एतेषां**) इन मन, वचन, काय का (**भेदाभ्यासे**) आत्मा से भिन्न होने रूप अभ्यास किया जाता है तब (**निर्वृतिः**) मुक्ति की प्राप्ति होती है।
अर्थ- जब तक शरीर, वचन और मन इन तीनों को आत्म बुद्धि से ग्रहण किया जाता है, तब तक संसार है और जब इन मन, वचन काय का आत्मा से भेद रूप अभ्यास किया जाता है, तब मुक्ति की प्राप्ति होती है।

घने वस्त्रे यथाऽऽत्मानं न घनं मन्यते तथा।
घने स्वदेहेप्यात्मानं न घनं मन्यते बुधः॥63॥
ज्ञानी घने वस्त्र को धार, पुष्ट ना माने निज आकार।
तन के पुष्ट होय धीमान, आत्म पुष्टि का ना हो (भान) ज्ञान॥

अन्वयार्थ- (**यथा**) जिस प्रकार (**वस्त्रे घने**) गाढ़ा वस्त्र पहन लेने पर (**बुधः**) बुद्धिमान् पुरुष (**आत्मानं**) अपने को-अपने शरीर को (**घनं**) गाढ़ा अथवा पुष्ट (**न मन्यते**) नहीं मानता है (तथा) उसी प्रकार (**सवदेहेऽपि घने**) अपने शरीर के भी गाढ़ा अथवा पुष्ट होने पर (**बुधः**) अन्तरात्मा (**आत्मानं**) अपने जीवात्मा को (**घनं न मन्यते**) पुष्ट नहीं मानता है।
अर्थ - जिस प्रकार मोटा वस्त्र पहन लेने पर बुद्धिमान पुरुष अपने शरीर को पुष्ट नहीं मानता है, उसी प्रकार अपने शरीर के भी पुष्ट होने पर अंतरात्मा अपने जीवात्मा को पुष्ट नहीं मानता है।

जीर्णे वस्त्रे यथाऽऽत्मानं न जीर्णं मन्यते तथा।
जीर्णे स्वदेहेऽप्यात्मानं न जीर्णं मन्यते बुधः॥64॥

ज्ञानी जीर्ण वस्त्र को धार, जीर्ण ना माने निज आकार।
जीर्ण देह को लख धीमान, आत्म जीर्ण का ना हो ज्ञान॥

अन्वयार्थ- **(यथा)** जिस प्रकार **(वस्त्रे जीर्णे)** पहने हुए वस्त्र के जीर्ण -होनेपर (बुधः) बुद्धिमान पुरुष **(आत्मानं)** अपने को-अपने शरीर को **(जीर्णं न मन्यते)** जीर्ण नहीं मानता है (तथा) उसी प्रकार **(स्वदेहे अपि जीर्णे)** अपने शरीर के भी जीर्ण हो जाने पर **(बुधः)** अन्तरात्मा **(आत्मानं)** अपने जीवात्मा को **(जीर्ण न मन्यते)** जीर्ण नहीं मानता है।

अर्थ- जिस प्रकार पहने हुये वस्त्र के जीर्ण होने पर बुद्धिमान पुरुष अपने शरीर को जीर्ण नहीं मानता है, उसी प्रकार अपने शरीर के भी जीर्ण हो जाने पर अंतरात्मा अपनी आत्मा को जीर्ण नहीं मानता है।

नष्टे वस्त्रे यथाऽऽत्मानं न नष्टं मन्यते तथा ।
नष्टे स्वदेहेऽप्यात्मानं न नष्टं मन्यते बुधः ॥65॥

वस्त्र नाश ज्ञानी का होय, स्वयं नाश ना माने सोय।
तन के नाश होय ज्यों आत्म, निज का नाश ना माने स्वात्म॥

अन्वयार्थ- **(यथा)** जिस तरह **(वस्त्रे नष्टे)** कपड़े के नष्ट हो जाने पर **(बुधः)** बुद्धिमान पुरुष **(आत्मानं)** अपने शरीर को **(नष्टं न मन्यते)** नष्ट हुआ नहीं मानता है **(तथा)** उसी तरह **(बुधः)** अन्तरात्मा **(स्वदेहे अपि नष्टे)** अपने शरीर को नष्ट हो जाने पर **(आत्मानं)** अपने जीवात्मा को **(नष्टं न मन्यते)** नष्ट हुआ नहीं मानता है।

अर्थ- जिस प्रकार कपड़े के नष्ट हो जाने पर बुद्धिमान पुरुष अपने शरीर को नष्ट नहीं मानता है, उसी प्रकार अंतरात्मा अपने शरीर के नष्ट हो जाने पर अपनी आत्मा को नष्ट हुआ नहीं मानता है।

रक्ते वस्त्रे यथाऽऽत्मानं न रक्तं मन्यते तथा।
रक्ते स्वदेहेऽप्यात्मानं न रक्तं मन्यते बुधः॥ 66॥

रंगे वस्त्र को ज्ञानी लोग, माने ना रत रंजित योग।
रक्त वर्ण इस तन का रूप, ज्ञानी माने नहीं स्वरूप॥

अन्वयार्थ- **(यथा)** जिस प्रकार **(वस्त्रे रक्ते)** पहना हुआ वस्त्र लाल होने पर **(बुधः)** बुद्धिमान पुरुष **(आत्मानं)** अपने शरीर को **(रक्तं न मन्यते)** लाल नहीं मानता है **(तथा)** उसी तरह **(स्वदेहे अपि रक्ते)** अपने शरीर के भी लाल होने पर **(बुधः)** अन्तरात्मा **(आत्मानं)** अपने जीवात्मा को **(रक्तं न मन्यते)** लाल नहीं मानता है।

अर्थ- जिस प्रकार पहना हुआ वस्त्र लाल होने पर बुद्धिमान पुरुष अपने शरीर को लाल नहीं मानता है, उसी प्रकार अपने शरीर के भी लाल होने पर अंतरात्मा अपनी आत्मा को लाल नहीं मानता है।

A-aKriti

यस्य सस्पन्द माभाति निःस्पन्देन समं जगत्।
अप्रज्ञ मक्रियाभोगं स शमं याति नेतरः॥ 67॥
यह तन सुख दुख जाने नाहिं, तन में चेतन रमते जाहिं।
निग्रह और अनुग्रह जीव, द्वेष राग से करें सजीव॥

अन्वयार्थ- (**यस्य**) जिस ज्ञानी जीव को (**सस्पन्दं जगत्**) अनेक क्रियाएँ-चेष्टाएँ करता हुआ शरीरादि रूप यह जगत् (**निस्पन्देन समं**) निश्चेष्ट काष्ठ-पाषाणादिक समान (**अप्रज्ञं**) चेतना रहित जड़ और (**अक्रियाभोगं**) क्रिया तथा सुखादि-अनुभव रूप भोग से रहित (**आभाति**) मालुम होने लगता है (**सः**) वह पुरुष (**अक्रियाभोगं शमं याति**) परम वीतरागतामय उस शान्ति-सुख का अनुभव करता है जिसमें मन वचन-काय का व्यापार नहीं है और न इन्द्रिय-द्वारों से विषय का भोग ही किया जाता है (**इतरः न**) उससे विलक्षण दूसरा बहिरात्मा जीव उस शान्ति-सुखको प्राप्त नहीं कर सकता है।

अर्थ- जिस ज्ञानी जीव को अनेक क्रियायें करता हुआ शरीरादि रूप यह जगत स्पंदन रहित, काष्ठादि के समान चेतना रहित जड़, और क्रिया तथा सुखादि अनुभव रूप भोग से रहित प्रतिभाषित होता है, वह पुरुष परम वीतरागता रूप शांति को प्राप्त करता है। उससे विलक्षण दूसरा बहिरात्मा जीव उस शांति को प्राप्त नहीं कर सकता है।

शरीरकंचुकेनात्मा संवृत ज्ञानविग्रहः।
नात्मानं बुध्यते तस्माद् भ्रमत्यतिचिरं भवे॥ 68॥
स्थित आत्म तत्व में होय, तन को पर ही माने सोय।
पर के तन को पर ही जान, निज बुद्धी से ऐसा मान॥

अन्वयार्थ- (**शरीरकंचुकेन**) कार्माणशरीर रूपी कांचली से (**संवृतज्ञानविग्रहः आत्मा**) ढका हुआ है ज्ञानरूपी शरीर जिसका ऐसा बहिरात्मा (**आत्मानं**) आत्मा के यथार्थ स्वरूप को (**न बुध्यते**) नहीं जानता है (**तस्मात्**) उसी अज्ञान के कारण (**अतिचिरं**) बहुत काल तक (**भवे**) संसार में (**भ्रमति**) भ्रमण करता है।

अर्थ-कार्माण शरीर रूपी कांचली से जिसका ज्ञान रूपी शरीर ढका हुआ है ऐसा बहिरात्मा आत्मा के यथार्थ स्वरूप को नहीं जानता है, उसी अज्ञान के कारण बहुत काल तक संसार में भ्रमण करता है।

प्रविशद्गलतां व्यूहे देहेऽणूनां समाकृतौ।
स्थितिभ्रान्त्या प्रपद्यन्ते तमात्मानमबुद्धयः॥ 69॥
अणु समूह आवे अरु जाय, समाकृति तन स्थिति पाय।
भ्रांति वश तन को अज्ञान, करता आतम की पहिचान॥

अन्वयार्थ- (**अबुद्धयः**) अज्ञानी बहिरात्मा जीव (**प्रविशद्गलतां अणूनां व्यूहे देहे**) ऐसे परमाणुओं

के समूहरूप शरीर में जो प्रवेश करते हैं और बाहर निकलते रहते हैं **(समाकृतौ)** शरीरके आकृति के समान रूप से बने रहने पर **(स्थितिभ्रांत्या)** कालांतर-स्थायित्व तथा एक क्षेत्र में स्थिति होने के कारण शरीर और आत्मा को एक समझने के रूप जो भ्रांति होती है उससे **(तम्)** उस शरीर को ही **(आत्मानं)** आत्मा **(प्रपद्यंते)** समझ लेते हैं।

अर्थ- अज्ञानी बहिरात्मा जीव परमाणुओं के समूह रूप शरीर में जो प्रवेश करते हैं और बाहर निकलते रहते हैं, शरीर की आकृति के समान रूप में बने रहने पर स्थायित्व तथा एक क्षेत्र में स्थिति होने के कारण शरीर और आत्मा को एक समझने पर जो भ्रान्ति होती है, उससे उस शरीर को ही आत्मा समझ लेता है।

गौरः स्थूलः कृशो वाऽहमित्यङ्गेनाविशेषयन्।
आत्मानं धारयेन्नित्यं केवलज्ञप्तिविग्रहम्॥ 70॥

मैं गोरा कृश हूँ स्थूल, तन में आत्म की कर ना भूल।
आतम केवल ज्ञान स्वरूप, चित्त में धारण कर ये रूप॥

अन्वयार्थ- **(अहं)** मैं **(गौरः)** गोरा हूँ **(स्थूलः)** मोटा हूँ **(वा कृशः)** अथवा दुबला हूँ **(इति)** इस प्रकार **(अंगेन)** शरीर के साथ **(आत्मानं)** अपने को **(अविशेषयन्)** एक रूप न करते हुए **(नित्यं)** सदा ही **(आत्मानं)** अपने आत्मा को **(केवलज्ञप्तिविग्रहम्)** केवलज्ञान स्वरूप अथवा रूपादि रहित उपयोग शरीरी **(धारयेत्)** अपने चित्त में धारण करें।

अर्थ- मैं गोरा हूँ, मोटा हूँ अथवा दुबला हूँ, इस प्रकार शरीर के साथ अपने को एक रूप न करते हुये सदा ही अपने आत्मा को केवल ज्ञान स्वरूप अपने चित्त में धारण करें।

मुक्तिरेकान्तिकी तस्य चित्ते यस्याचला धृतिः।
तस्य नैकान्तिकी मुक्तिर्यस्य नास्त्यचला धृति॥ 71॥

चित्त में अचल धारणा पाय, नियम से मोक्ष महल को जाय।
चित्त में अचल धारणा नाहिं, मुक्ती नहीं उन्हें मिल पाय॥

अन्वयार्थ- **(यस्य)** जिस पुरुष के **(चित्ते)** चित्त में **(अचला)** आत्म स्वरूप की निश्चल **(धृति)** धारणा है **(तस्य)** उसकी (एकान्तिकी मुक्तिः) नियम से मुक्ति होती है। **(यस्य)** जिस पुरुष की **(अचलाधृतिः नास्ति)** आत्म स्वरूप में निश्चल धारणा नहीं है **(तस्य)** उसकी **(एकान्तिकी मुक्तिः न)** अवश्यम्भाविनी मुक्ति नहीं होती है।

अर्थ- जिसके चित्त में आत्म स्वरूप की निश्चल धारणा है उसकी नियम से मुक्ति होती है, जिसकी आत्म स्वरूप में निश्चल धारणा नहीं है। उसकी नियम से मुक्ति नहीं होती है।

जनेभ्यो वाक् ततः स्पन्दो मनसश्चित्तविभ्रमाः।
भवन्ति तस्मात्संसर्गं जनैर्योगी ततस्त्यजेत्॥ 72॥

लोगों से हो वचनालाप, मन चंचल हो अपने आप।
चित्त में विभ्रम हो, उत्पन्न योगी संगति छोड़ो अन्य॥

अन्वयार्थ- (**जनेभ्यो**) लोगों के संसर्ग से (वाक्) वचनकी प्रवृत्ति होती है (**ततः**) इसलिए (**मनःस्पन्दो**) चित्त चलायमान होता है (**तस्मात्**) चित्त की चंचलता से (**चित्तविभ्रमाः भवन्ति**) चित्तमें नाना प्रकार के विकल्प उठने लगते हैं-मन क्षुभित हो जाता है (**ततः**) इसीलिये (**योगी**) योग में संलग्न होने वाले अन्तरात्मा साधु को चाहिये कि वह (**जनैः संसर्ग त्यजेत्**) लौकिक जनों के संसर्ग का परित्याग करें -ऐसे स्थान पर योगाभ्यास करने न बैठें जहाँ पर लौकिकजन जमा हो अथवा उनका आवागमन बना रहता हो।

अर्थ- लोगों के संसर्ग से वचन की प्रवृत्ति होती है उससे मन क्षुभित हो जाता है इसलिये योगी लौकिक जनों के संसर्ग का परित्याग करें।

ग्रामोऽरण्यमिति द्वेधा निवासोऽनात्मदर्शिनाम्।
दृष्टात्मनां निवासस्तु विविक्तात्मैव निश्चलः॥73॥

आत्मदर्श बिन जन अवकाश, वन या ग्राम दोय में वास।
आतम दर्शी को अवकाश, निश्चय शुद्ध आत्म में वास॥

अन्वयार्थ- (**अनात्मदर्शिनां**) जिन्हें आत्मा की उपलब्धि-उसका दर्शन अथवा अनुभव नहीं हुआ ऐसे लोगों के लिए (**ग्रामः अरण्यम्**) यह गाँव है, यह जंगल है (**इति द्वेधा निवासः**) इस प्रकार दो तरह के निवास की कल्पना होती है (**तु**) किन्तु (**दृष्टात्मनां**) जिन्हें आत्म स्वरूप का अनुभव हो गया है ऐसे ज्ञानी पुरुषों के लिये (**विविक्तः**) रागादि रहित विशुद्ध एवं (**निश्चलः**) चित्त की व्याकुलता रहित स्वरूप में स्थिर (**आत्मा एव**) आत्मा ही (**निवासः**) रहने का स्थान है।

अर्थ- अनात्मदर्शियों को यह गाँव है, वह जंगल है इस प्रकार दो तरह के निवास की कल्पना होती है, किन्तु आत्मदर्शी योगियों के लिये विशुद्ध निश्चल आत्मा ही निवास का स्थान है।

देहान्तरगतेर्बीजं देहेऽस्मिन्नात्मभावना।
बीजं विदेहनिष्पत्तेरात्मन्येवात्मभावना॥ 74॥

इस तन में चेतन का भाव, पर भव गमन को होय उपाव।
आतम में आतम का भाव, देह रहित हो मुक्ति उपाव॥

अन्वयार्थ- (**अस्मिन् देहे**) कर्मोदय वश ग्रहण किये हुए इस शरीर में (**आत्मभावना**) आत्मा की जो भावना है - शरीर को ही आत्मा मानना है-वही (**देहान्तरगतेः**) अन्य शरीर ग्रहण रूप भवान्तरप्राप्ति का (**बीजं**) कारण है और (**आत्मनि एव**) अपनी आत्मा में ही (**आत्मभावना**) आत्म की जो भावना है-आत्मा को ही आत्मा मानना है वह (**विदेह-निष्पत्तेः**) शरीर के सर्वथा त्याग रूप मुक्तिका (**बीजं**) कारण है।

अर्थ- अपने इस शरीर में आत्मपने की भावना ही भवान्तर में गमन का कारण है, और अपनी आत्मा में ही आत्मा की भावना मुक्ति प्राप्ति का कारण है।

नयत्यात्मानमात्मैव जन्म निर्वाणमेव च।
गुरुरात्मात्मनस्तस्मान्नान्योऽस्ति परमार्थतः ॥75॥
धन्य आत्म को करती आत्म, पा निर्वाण बने परमात्म।
गुरु आतम का होता जीव, नहीं अन्य कोइ होय सजीव॥

अन्वयार्थ - (**आत्मा एव**) आत्मा ही (**आत्मानं**) आत्मा को (**जन्म नयति**) देहादिकमें मूढ़ात्मभावना के कारण जन्म मरण रूप संसार में भ्रमण कराता है (**च**) और (**निर्वाणमेव नयति**) आत्मा में ही आत्मबुद्धिके प्रकर्षवश मोक्ष प्राप्त कराता है (**तस्मात्**) इसलिए (**परमार्थतः**) निश्चय से (**आत्मनः गुरुः**) आत्मा का गुरु (**आत्मा एव**) आत्मा ही है (**अन्यः न अस्ति**) दूसरा कोई गुरु नहीं है।

अर्थ- आत्मा ही आत्मा को जन्म मरण रूप संसार में भ्रमण कराता है तथा आत्मा ही आत्म बुद्धि के प्रकर्ष द्वारा मोक्ष प्राप्त कराता है। अतः परमार्थ दृष्टि से आत्मा का गुरू आत्मा ही है अन्य कोई गुरू नहीं है।

दृढात्मबुद्धिदेहादावुत्पश्यन्नाशमात्मनः ।
मित्रादिभिर्वियोगं च बिभेति मरणाद्भृशम् ॥76॥
आत्म बुद्धि तन में दृढ़ होय, मूढ़ मरण माने निज सोय।
सोच के जन परिजन का वियोग, मरण से डरते हैं अति लोग॥

अन्वयार्थ- (**देहादौ दृढात्मबुद्धिः**) शरीरादिक में जिसकी आत्मबुद्धि दृढ़ हो रही है ऐसा बहिरात्मा (**आत्मनः नाशम्**) शरीर के छूटने रूप अपने मरण (**च**) और (**मित्रादिभिः वियोगं**) मित्रादि-सम्बन्धियों के वियोग को (**उत्पश्यन्**) देखता हुआ। (**मरणात्**) मरने से (**भृशम्**) अत्यन्त (**बिभेति**) डरता है।

अर्थ- शरीरादि में सुदृढ़ आत्म बुद्धि युक्त बहिरात्मा शरीर के छूटने पर अपना मरण और मित्र आदि के वियोग को देखता हुआ मरण से अत्यंत डरता है।

आत्मान्येवात्मधीरन्यां शरीरगतिमात्मनः।
मन्यते निर्भयं त्यक्वा वस्त्रं वस्त्रांतरग्रहम्॥ 77॥
आत्म बुद्धि आतम में धार, तन आतम से अन्न अधार।
ज्यों तन से कोई वस्त्र उतार, निर्भय तन पर लेता धार॥

अन्वयार्थ- (**आत्मनिः एव आत्मधीः**) आत्मस्वरूप में ही जिसकी दृढ़ आत्मबुद्धि है ऐसा अन्तरात्मा (**शरीरगति**) शरीर के विनाश को अथवा बाल-युवा आदिरूप उसकी परिणति को (**आत्मनः अन्यां**) अपने आत्मा से भिन्न (**मन्यते**) मानता है-शरीर के उत्पाद विनाश में अपने आत्मा का उत्पाद-विनाश नहीं मानता-और इस तरह मरण के अवसर पर (**वस्त्रं त्वक्त्वा वस्त्रान्तरग्रहम्**

इव) एक वस्त्र को छोड़कर दूसरा वस्त्र ग्रहण करने की तरह **(निर्भयं मन्यते)** निर्भय रहता है।
अर्थ- आत्मा में आत्मबुद्धि धारण करने वाला ज्ञानी शरीर के विनाश को अथवा बाल युवा आदि रूप उसकी परिणति को अपनी आत्मा से भिन्न मानता है इस तरह मरण के अवसर पर एक वस्त्र को छोड़कर दूसरा वस्त्र ग्रहण करने की तरह निर्भय रहता है।

व्यवहारे सुषुप्तो यः स जागर्त्यात्मगोचरे।
जागर्ति व्यवहारेऽस्मिन् सुषुप्ताश्चात्मगोचरे॥ 78॥

प्राणी जो व्यवहार में सोय, आत्म विषय में जाग्रत होय।
जो व्यवहार में जाग्रत होय, आत्म विषय में जाता सोय॥

अन्वयार्थ- **(यः)** जो कोई **(व्यवहारे)** प्रवृत्ति-निवृत्यादि रूप लोक व्यवहार में **(सुषुप्तः)** सोता है-अनासक्त एवं अप्रयत्नशील रहता है **(सः)** वह **(आत्मगोचरे)** आत्मा के विषय में **(जागर्ति)** जागता है-आत्मानुभव में तत्पर रहता है **(च)** और जो **(अस्मिन् व्यवहारे)** इस लोक व्यवहारमें **(जागर्ति)** जागता है-उसकी साधना में तत्पर रहता है वह **(आत्मगोचरे)** आत्मा के विषय में **(सुषुप्तः)** सोता है-आत्मानुभव का कोई प्रयत्न नहीं करता है।
अर्थ- जो प्रवृत्ति निवृत्यादि रूप लोक व्यवहार में सोता है, वह आत्मा के विषय में जागता है और जो इस लोक व्यवहार में जागता है वह आत्मा के विषय में सोता है।

आत्मानमन्तरे दृष्ट्वा दृष्ट्वा देहादिकं बहिः।
तयो रन्तरविज्ञाना दाभ्यासा दच्युतो भवेत्।। 79।।

अन्दर में आतम को देख, बाहर में देहादिक लेख (देख)।
भेद विज्ञान से कर अभ्यास, मोक्ष महल में होता वास॥

अन्वयार्थ- **(अन्तरे)** अन्तरंग में **(आत्मानम्)** आत्मा के वास्तविक स्वरूप को **(दृष्ट्वा)** देखकर और **(बहिः)** बाह्य में **(देहादिकं)** शरीरादिक परभावों को **(दृष्ट्वा)** देखकर **(तयोः)** आत्मा और शरीरादिक दोनों के **(अन्तरविज्ञानात्)** भेदविज्ञान से तथा **(अभ्यासात्)** अभ्यास द्वारा उसे भेदविज्ञान में दृढ़ता प्राप्त करने से **(अच्युतो भवेत्)** यह जीव मुक्त हो जाता है।
अर्थ- अंतरंग में आत्मा को देखकर और बाह्य में देहादिक को देखकर आत्मा और शरीरादिक दोनों में भेद विज्ञान से तथा अभ्यास द्वारा यह जीव मुक्त हो जाता है।

पूर्वं दृष्टात्मतत्त्वस्य विभात्युन्मत्तवज्जगत्।
स्वभ्यस्तात्मधियः पश्चात् काष्ठपाषाणरूपवत्॥ 80॥

आत्म तत्व ज्ञाता विद्वान, पूर्व दिखे उन्मत्त समान।
योगाभ्यास पुष्ट धीमान, पुष्ट काष्ठ पाषाण समान॥

अन्वयार्थ- **(दृष्टात्मतत्वस्य)** जिसे आत्मदर्शन हो गया है ऐसे योगी को **(पूर्व)** योगाभ्यास की

प्राथमिक अवस्था में (**जगत्**) यह प्राणि समूह (**उन्मत्तवत्**) उन्मत्त-सरीखा (**विभाति**) मालूम होता है किन्तु (**पश्चात्**) बाद में जब योग की निष्पन्नावस्था हो जाती है तब (**स्वभ्यस्तात्मधियः**) आत्मस्वरूप के अभ्यास में परिपक्व बद्ध हुए अन्तरात्मा को (**काष्ठपाषाणरूपवत्**) यह जगत् काठ और पत्थर के समान चेष्टारहित मालूम होने लगता है।

अर्थ- जिसे आत्म दर्शन हो गया है ऐसे योगी जीव को प्रारंभिक अवस्था में यह जगत पागल की तरह जान पड़ता है, किन्तु उसके बाद आत्म अनुभव के अच्छे अभ्यासी मनुष्य को यह जगत काष्ठ और पाषाण की तरह प्रतीत होती हैं।

श्रृण्वन्नप्यन्यतः कामं वदन्नपि कलेवरात्।
नात्मानं भावयेद्भिन्नं यावत्तावन्न मोक्षभाक् ॥ 81 ॥
सुनकर गुरु मुख से उपदेश, दें तन से पर को सन्देश।
ना हो आत्म भावना भिन्न, कर्म से ना होगा अवछिन्न॥

अन्वयार्थ- आत्मा का स्वरूप (**अन्यतः**) उपाध्याय आदि गुरुओं के मुख से (**कामं**) खूब इच्छानुसार (**श्रृण्वन्नपि**) सुनने पर भी तथा (**कलेवरात्**) अपने मुख से (**वदन्नपि**) दूसरों को बतलाते हुए भी (**यावत्**) जब तक (**आत्मानं**) आत्मस्वरूप की (**भिन्नं**) शरीरादि पर पदार्थों से भिन्न (**न भावयेत्**) भावना नहीं की जाती। (**तावत्**) तब तक (**मोक्षभाक् न**) यह जीव मोक्ष का अधिकारी नहीं हो सकता।

अर्थ-गुरुओं के मुख से अधिक मात्रा में उपदेश सुनने पर भी तथा अपने शरीर से दूसरों को उपदेश देते हुये भी जब तक आत्मस्वरूप की शरीरादि पर पदार्थों से भिन्न भावना नहीं होती तब तक यह जीव मोक्ष का अधिकारी नहीं हो सकता।

तथैव भावयेद्देहाद्व्यावृत्यात्मानमात्मनि।
यथा न पुनरात्मानं देहे स्वप्नेऽपि योजयेत्॥ 82 ॥
आतम को तन से कर भिन्न, निज में दृढ़ता कर उत्पन्न।
स्वप्न में भी इस तन से योग, योजित न हो निज संयोग॥

अन्वयार्थ- अन्तरात्मा को चाहिए कि वह (**देहात्**) शरीर से (**आत्मानं**) आत्मा को (**व्यावृत्य**) भिन्न अनुभव करके (**आत्मनि**) आत्मा में ही (**तथैव**) उस प्रकार से (**भावयेत्**) भावना करे (**यथा पुनः**) जिस प्रकार से फिर (**स्वप्नेऽपि**) स्वप्न में भी (**देहे**) शरीर की उपलब्धि होने पर उसमें (**आत्मानं**) आत्मा को (**न योजयेत्**) योजित न करे। अर्थात् शरीर को आत्मा न समझ बैठे।

अर्थ- शरीर से आत्मा को भिन्न अनुभव करके आत्मा में ही उस प्रकार से भावना करे जिस प्रकार से फिर स्वप्न में भी शरीर में आत्मा को योजित न कर सके।

अपुण्यमव्रतैः पुण्यं व्रतैर्मोक्षस्तयोव्ययः।
अव्रतानीव मोक्षार्थी व्रतान्यपि ततस्त्यजेत्॥ 83॥
हिंसादिक पापों से अधर्म, सुव्रत से हो सम्यक् धर्म।
मोक्षार्थी अव्रत सम जान, सुव्रत छोड़े अव्रत समान॥

अन्वयार्थ- (**अव्रतैः**) हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह रूप पाँच अव्रतों के अनुष्ठान से (**अपुण्यम्**) पाप का बंध होता है और (**व्रतैः**) अहिंसादिक पाँच व्रतों के पालने से (**पुण्यं**) पुण्य का बंध होता है (**तयोः**) पुण्य और पाप दोनों कर्मों का (**व्ययः**) जो विनाश है वही (**मोक्षः**) मोक्ष है (**ततः**) इसलिये (**मोक्षार्थी**) मोक्ष के इच्छुक भव्य पुरुष को चाहिये कि (**अव्रतानि इव**) अव्रतों की तरह (**व्रतानि अपि**) व्रतों को भी (**त्यजेत्**) छोड़ देवे।

अर्थ- हिंसा, झूठ आदि अव्रतों से पाप का बंध होता है और अहिंसादिक व्रतों से पुण्य का बंध होता है, पुण्य और पाप दोनों के नष्ट होने पर मोक्ष होता है। इसलिये मोक्षार्थी भव्य पुरुष अव्रतों की तरह व्रतों को भी छोड़ देवें।

अव्रतानि परित्यज्य व्रतेषु परिनिष्ठितः।
त्यजेत्तान्यपि संप्राप्य परमं पदमात्मनः॥ 84॥
अव्रत त्याग व्रतों में निष्ठ, निज भावों में होय प्रविष्ट।
आतम से निज सिद्धि पाय, सुव्रत छोड़ परम पद पाय॥

अन्वयार्थ- (**अव्रतानि**) हिंसादिक पंच अव्रतों को (**परित्यज्य**) छोड़ करके (**व्रतेषु**) अहिंसादिक व्रतों में (**परिनिष्ठितः**) निष्ठावान् रहे अर्थात् उनका दृढ़ता के साथ पालन करें, बाद में (**आत्मनः**) आत्मा के (**परमं पदं**) रागद्वेषादि रहित परम वीतराग-पद को (**प्राप्य**) प्राप्त करके (**तानि अपि**) उन व्रतों को भी (**त्यजेत्**) छोड़ देवें।

अर्थ- हिंसादि अव्रतों को छोड़ करके, अहिंसादि व्रतों को दृढ़ता के साथ पालन करें, आत्मा के परम वीतराग पद को प्राप्त करके उन व्रतों को भी छोड़ देवें।

यदन्तर्जल्पसंपृक्तमुत्प्रेक्षाजालमात्मनः।
मूलं दुःखस्य तन्नाशे शिष्टमिष्टं परं पदम्॥ 85॥
अन्तर्जल्प कल्पना जाल, आतम दुख का मूल विशाल।
क्षय होते उत्प्रेक्षा जाल, इष्ट परम पद मिले त्रिकाल॥

अन्वयार्थ- (**अन्तर्जल्पसपृक्तं**) अंतरंग में वचन व्यापार को लिये हुए (**यत् उत्प्रेक्षाजालं**) जो अनेक प्रकार की कल्पनाओं का जाल है वही (**आत्मनः**) आत्मा के (**दुःखस्य**) दुःख का (**मूलं**) मूल कारण है (**तन्नाशे**) उस विविध संकल्प कल्पना जाल के विनाश होने पर (**इष्टं**) अपने प्रिय हितकारी (**परं पदं शिष्टं**) परमपद की प्राप्ति कही गई है।

अर्थ- जो अंतर्जल्प संबंधित कल्पनाओं का जाल है, वही आत्मा के दुख का मूल कारण है उस कल्पना जाल के विनाश होने पर परम पद की प्राप्ति कही गई है।

अव्रती व्रतमादाय व्रती ज्ञानपरायणः।
परात्मज्ञानसम्पन्नः स्वयमेव परो भवेत्॥ 86॥
अव्रती सुव्रत ग्रहणकर लेय, सुव्रती ज्ञान भावना सेय।
केवलज्ञान ग्रहणकर पाय, जगत् छोड़ सिद्धालय जाय॥

अन्वयार्थ- (**अव्रती**) हिंसादिक पंच अव्रतों-पापों में अनुरक्त हुआ मानव (**व्रतं आदाय**) व्रतों को ग्रहण करके, अव्रतावस्था में होने वाले विकल्पों का नाश करें, तथा (**व्रती**) अहिंसादिक व्रतों का धारक (**ज्ञानपरायणः**) ज्ञानभावना में लीन होकर, व्रतावस्था में होने वाले विकल्पों को नाश करें और फिर अरहंत-अवस्था में (**परात्मज्ञानसम्पनः**) केवलज्ञान से युक्त होकर (**स्वयमेव**) स्वयं ही बिना किसी के उपदेश के (**परः भवेत्**) परमात्मा होवे-सिद्धस्वरूप को प्राप्त करें।
अर्थ- अव्रती व्रतों को ग्रहण करें और व्रती भावना में लीन [स्थित] होवें और फिर अरहंत अवस्था में केवलज्ञान से युक्त होकर स्वयं ही सिद्ध स्वरूप को प्राप्त करें।

लिङ्गं देहाश्रितं दृष्टं देह एवात्मनो भवः।
न मुच्यन्ते भवात्तस्मात्ते ये लिङ्गंकृताऽऽग्रहाः॥87॥
देहाश्रित लिंग देखा जाए, तन से आतम जगत् भ्रमाय।
लिंग से मुक्ती माने लोग, छूट ना पावे जग संयोग॥

अन्वयार्थ- (**लिङ्गं**) जटा धारण करना अथवा नग्न रहना आदि वेष (**देहाश्रितं दृष्टं**) शरीर के आश्रित देखा जाता है (**देह एव**) और शरीर ही (**आत्मनः**) आत्मा का (**भवः**) संसार है (**तस्मात्**) इसलिये (**ये लिङ्गकृताग्रहाः**) जिन को लिङ्ग का ही आग्रह है-बाह्य वेष धारण करने से मुक्ति की प्राप्ति होती है ऐसी हठ है (**ते**) वे पुरुष (**भवात्**) संसारसे (**न मुच्यन्ते**) नहीं छूटते हैं।
अर्थ- जटादि धारण करना अथवा नग्न रूपता आदि वेष शरीराश्रित देखा जाता है और शरीर ही आत्मा का संसार है, इसलिये जिनको लिंग का ही आग्रह है वे पुरुष संसार से नहीं छूटते हैं।

जातिर्देहाश्रिता दृष्टा देह एवात्मनो भवः।
न मुच्यन्ते भवात्तस्मात्ते ये जातिकृताग्रहाः॥88॥
देहाश्रित जाती में लोग, तन में आतम भव का योग।
जाती का करके अभिमान, भव से ना उनका उत्थान॥

अन्वयार्थ- (**जातिः**) ब्राह्मण आदि जाति (**देहाश्रिता दृष्टा**) शरीर के आश्रित देखी गई हैं (**देह एव**) और शरीर ही (**आत्मनः भवः**) आत्मा का संसार है (**तस्मात्**) इसलिये (**ये**) जो जीव (**जातिकृताग्रहा**) मुक्ति की प्राप्ति के लिये जाति का हठ पकड़े हुए हैं (**तेऽपि**) वे भी (**भवात्**)

संसार से **(न मुच्यन्ते)** नहीं छूट सकते हैं।

अर्थ- ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि जाति देहाश्रित देखी जाती है और शरीर ही आत्मा का संसार है इसलिये जो जीव मुक्ति की प्राप्ति के लिये जाति का हठ पकड़े हुये हैं वे भी संसार से नहीं छूट सकते।

जातिलिंगविकल्पेन येषां च समयाग्रहः।
तेऽपि न प्राप्नुवन्त्येव परमं पदमात्मनः ॥89॥

जाति और लिंग से जो लोग, माने मोक्ष महल संयोग।
आग्रह आगम आश्रय वान, आत्म परम पद मिले ना आन॥

अन्वयार्थ- **(येषां)** जिन जीवों का **(जातिलिंगविकल्पेन)** जाति और वेष के विकल्प से मुक्ति होती है ऐसा **(समयाग्रहः)** आगम-संबंधी आग्रह है-ब्राह्मण आदि जाति में उत्पन्न होकर अमुक वेष धारण करने से ही मुक्ति होती है ऐसा आगमानुबन्धि हठ है **(ते अपि)** वे पुरुष भी **(आत्मनः)** आत्मा के **(परमं पदं)** परमपद को **(न प्राप्नुन्त्येव)** प्राप्त नहीं कर सकते हैं-संसार से मुक्त नहीं हो सकते हैं।

अर्थ- जिन जीवों का जाति और वेष के विकल्प से मुक्ति होती है ऐसा आगम संबंधी आग्रह है वे पुरुष भी आत्मा के परम पद को प्राप्त नहीं कर सकते हैं।

यत्यागाय निवर्तन्ते भोगेभ्यो यदवाप्तये।
प्रीतिं तत्रैव कुर्वन्ति द्वेषमन्यत्र मोहिनः ॥90॥

तन से ममता का कर त्याग, वीतराग पद के प्रतिराग।
मोही विषयों से कर प्रीति, वीतराग से करे अप्रीति॥

अन्वयार्थ- **(यत्यागाय)** जिस शरीर के त्याग के लिये-उससे ममत्व दूर करने के लिये-और **(यद्अवाप्तये)** जिस परम वीतराग पद को प्राप्त करने के लिये **(भोगेभ्यः)** इन्द्रियों के भोगों से **(निवर्तन्ते)** निवृत्त होते हैं अर्थात् उनका त्याग करते हैं **(तत्रैव)** उसी शरीर और इन्द्रियों के विषयों में **(मोहिनः)** मोही जीव **(प्रीतिं कुर्वन्ति)** प्रीति करते हैं और **(अन्यत्र)** वीतरागता आदि के साधनों में **(द्वेषं कुर्वनित)** द्वेष करते हैं।

अर्थ- जिस शरीर के त्याग के लिये जिस परम वीतराग पद को प्राप्त करने के लिये इन्द्रियों के भोगों से निवृत्त होते हैं उसी शरीर और इन्द्रियों के विषयों में मोही जीव प्रीति करते हैं वीतरागता आदि के साधनों में द्वेष करते हैं।

अनन्तरज्ञः संधत्ते दृष्टिं पंगोर्यथाऽन्धके।
संयोगात् दृष्टिमङ्गेऽपि संधत्ते तद्वदात्मनः ॥91॥

जैसे भेद ज्ञान से हीन, पंगु अंध ना जाने दीन।
वैसे आतम को तन जान, मान रहा है एक समान॥

अन्वयार्थ- (**अनन्तरज्ञः**) भेदज्ञान न रखने वाला पुरुष (**यथा**) जिस प्रकार (**संयोगात्**) संयोग के कारण भ्रम में पड़कर-संयुक्त हुए लँगड़े और अंधे की क्रियाओं को ठीक न समझकर (**पंगोर्दृष्टि**) लँगड़े की दृष्टिको (**अन्धके**) अन्धे पुरुष में (**संधत्ते**) आरोपित करता है-यह समझता है कि अन्धा स्वयं चल रहा है-(**तद्वत्**) उसी प्रकार (**आत्मनः दृष्टि**) आत्मा की दृष्टि को (**अङ्गेऽपि**) शरीर में भी (**सन्धत्ते**) आरोपित करता है-यह समझने लगता है कि यह शरीर ही देखता जानता है।
अर्थ- भेदज्ञान न रखने वाला पुरुष जिस प्रकार संयोग के कारण भ्रम में पड़कर लंगड़ें की दृष्टि को अंधे पुरुष में आरोपित करता है उसी प्रकार आत्मा की दृष्टि को शरीर में भी आरोपित करता है।

दृष्टभेदो यथा दृष्टि पङ्गोरन्धे न योजयेत्।
तथा न योजयेद्देहे दृष्टात्मा दृष्टिमात्मनः॥ 92॥
ज्यों पंगू अंधे को जान, कभी ना माने एक समान।
त्यों ज्ञाता तन चेतन रूप, कभी ना माने एक स्वरूप॥

अन्वयार्थ- (**दृष्टभेदः**) जो लँगड़े और अन्धे के भेद का तथा उनकी क्रियाओं को ठीक समझता है वह (**यथा**) जिस प्रकार (**पंगोर्दृष्टि**) लँगड़े की दृष्टिको अन्धे पुरुष में (**न योजयेत्**) नहीं जोड़ता-अन्धे को मार्ग देखकर चलने वाला नहीं मानता-(**तथा**) उसी प्रकार (**दृष्टात्मा**) आत्मा को शरीरादि परपदार्थों से भिन्न अनुभव करने वाला अन्तरात्मा (**आत्मनः दृष्टि**) आत्मा की दृष्टि को-उसके ज्ञानदर्शन स्वभाव को (**देहे**) शरीर में (**न योजयेत्**) नहीं जोड़ता है-शरीर को ज्ञाता-दृष्टा नहीं मानता है।
अर्थ- जो अंधे और लंगड़े के भेद को समझता है वह जिस प्रकार लंगड़े की दृष्टि को अंधे में नहीं जोड़ता है, उसी प्रकार शरीर और आत्मा के भेद को जानने वाला अंतरात्मा आत्मा की दृष्टि को शरीर में नहीं जोड़ता है।

सुप्तोन्मत्ताद्यवस्थैव विभ्रमोऽनात्मदर्शिनाम्।
विभ्रमोऽक्षीणदोषस्य सर्वावस्थाऽऽत्मदर्शिनः॥93॥
सुप्त उन्मत्त दशा में मूढ़, विभ्रम करके होय विमूढ़।
आत्मदर्शि को अक्षीण दोष, विभ्रम पूर्ण प्रतीति कोष॥

अन्वयार्थ- (**अनात्मदर्शिनाम्**) आत्मस्वरूप का वास्तविक परिज्ञान जिन्हें नहीं है ऐसे बहिरात्माओं का (**सुप्तोन्मत्तादि अवस्था एव**) केवल सोने व उन्मत्त होने की अवस्था ही (**विभ्रम**) भ्रमरूप मालूम होती है। किन्तु (**आत्मदर्शिनः**) आत्मानुभवी अन्तरात्मा को (**अक्षीणदोषस्य**) मोहाक्रान्त बहिरात्मा की (**सर्वावस्थाः**) जाग्रत्, प्रबुद्ध और उन्मत्तादि सभी अवस्थाएँ (**विभ्रमः**) भ्रमरूप मालूम होती हैं।
अर्थ- अनात्मदर्शी [बहिरात्मा] को सुप्त तथा उन्मत्तादि अवस्थायें ही भ्रम रूप प्रतीत होती हैं किन्तु

आत्मदर्शी अंतरात्मा को मोहाक्रांत बहिरात्मा की संपूर्ण अवस्थायें भ्रम रूप प्रतीत होती हैं।

विदिताशेषशास्त्रोऽपि न जाग्रदपि मुच्यते।
देहात्मदृष्टिर्ज्ञातात्मा सुप्तोन्मत्तोऽपि मुच्यते॥ 94॥

बहिरातम जागृत शास्त्रज्ञ, कर्म बन्ध से छूटे न अज्ञ।
आत्मज्ञ होता सुप्तोन्मत्त, कर्म बन्ध से होता मुक्त॥

अन्वयार्थ- (**देहात्मदृष्टिः**) शरीर में आत्मबुद्धि रखनेवाला बहिरात्मा (**विदिताशेषशास्त्रः अपि**) सम्पूर्ण शास्त्रों का जानने वाला होने पर भी तथा (**जाग्रत् अपि**) जागता हुआ भी (**न मुच्यते**) कर्मबंधन से नहीं छूटता है। किन्तु (**ज्ञातात्मा**) जिसने आत्मा के स्वरूप को देह से भिन्न अनुभव कर लिया है ऐसा विवेकी अन्तरात्मा (**सुप्तोन्मत्तः अपिः**) सोता और उन्मत्त हुआ भी (**मुच्यते**) कर्मबंधन से मुक्त होता है-विशिष्ट रूप से कर्मों की निर्जरा करता है।

अर्थ- शरीर में आत्म बुद्धि रखने वाला बहिरात्मा समस्त शास्त्रों का ज्ञाता होने पर भी तथा जागता हुआ भी कर्म बंधन से नहीं छूटता किन्तु आत्मज्ञानी अंतरात्मा सोता तथा उन्मत्त होता हुआ भी कर्म बंधन से मुक्त होता है।

यत्रैवाहितधीः पुंसः श्रद्धा तत्रैव जायते।
यत्रैव जायते श्रद्धा चित्तं तत्रैव लीयते॥ 95॥

नर जिस वस्तु में स्थिर चित्त, श्रद्धा से माने वह वित्त।
श्रद्धा जिन विषयों में होय, मन उन विषयों में ही खोय॥

अन्वयार्थ- (**यत्र एव**) जिस किसी विषय में (**पुंसः**) पुरुष को (**आहितधीः**) दत्तावधानरूप बुद्धि होती है (**तत्रैव**) उसी विषय में उनको (**श्रद्धा जायते**) श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है और (**यत्र एव**) जिस विषय में (**श्रद्धा जायते**) श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है (**तत्रैव**) उस विषय में ही (**चित्तं लीयते**) उसका मन लीन हो जाता है-तन्मय हो जाता है।

अर्थ- जिस किसी विषय में पुरुष की दत्तावधान रूप [उपयोग संयुक्त] बुद्धि होती है उसी विषय में उनको श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है और जिस विषय में श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है उस विषय में ही उसका मन लीन हो जाता है।

यत्रानाहितधीः पुंसः श्रद्धा तस्मान्निवर्तते।
यस्मान्निवर्तते श्रद्धा कुतश्चित्तस्य तल्लयः॥ 96॥

नर जिस द्रव्य में स्थिर नाहिं, उससे दूर स्वयं हो जाहिं।
जिसमें श्रद्धा होती दूर, चित्त लीन क्यों हो भरपूर॥

अन्वयार्थ- (**यत्र**) जिस विषय में (**पुंसः**) पुरुष की (**अनाहितधीः**) बुद्धि दत्तावधानरूप नहीं होती (**तस्मात्**) उससे (**श्रद्धा**) रुचि (**निवर्तते**) हट जाती है-दूर हो जाती है (**यस्मात्**) जिससे

(श्रद्धा) रुचि **(निवर्तते)** हट जाती है **(चित्तस्य)** चित्त की **(तल्लयः कुतः)** उस विषय में लीनता कैसे हो सकती है? अर्थात् नहीं होती।

अर्थ- जिस किसी विषय में पुरुष की बुद्धि दत्तावधान रूप नहीं होती है उससे श्रृद्धा हट जाती है, जिससे रुचि दूर हो जाती है उस विषय में लीनता कैसे हो सकती है ?

भिन्नात्मानमुपास्यात्मा परो भवति तादृशः।
वर्तिदीपं यथोपास्य भिन्ना भवति तादृशी॥ 97॥
आत्म भिन्न आतम स्वरूप, कर उपासना हो निज रूप।
ज्यों बत्ती दीपक से भिन्न, दीप रूप होती उत्पन्न॥

अन्वयार्थ- **(आत्मा)** यह आत्मा **(भिन्नात्मानं)** अपने से भिन्न अर्हन्त सिद्धरूप परमात्मा की **(उपास्य)** उपासना-आराधना करके **(तादृशः)** उन्हीं के समान **(परः भवति)** परमात्मा हो जाता है **(यथा)** जैसे **(भिन्ना वर्तिः)** दीपक से भिन्न अस्तित्व रखनेवाली बत्ती भी **(दीपं उपास्य)** दीपक की आराधना करके उसका सामीप्य प्राप्त करके **(तादृशी)** दीपक स्वरूप **(भवति)** हो जाती है।

अर्थ- यह आत्मा अपने से भिन्न सिद्ध की उपासना करके उन्हीं के समान परमात्मा हो जाता है, जैसे दीपक से भिन्न रहने वाली बत्ती भी दीपक की उपासना करके दीपक स्वरूप हो जाती है।

उपास्यात्मान मेवात्मा जायते परमोऽथवा ।
मथित्वाऽऽत्मान मात्मैव जायतेऽग्निर्यथा तरु॥ 98॥
अथवा आत्म स्वरूपी आत्म, निज आराधन से परमात्म।
ज्यों तरुवर घर्षण को पाय, अग्नी रूप स्वयं हो जाय॥

अन्वयार्थ- **(अथवा)** अथवा **(आत्मा)** यह आत्मा **(आत्मानम्)** अपने चित्स्वरूप को ही **(उपास्य)** चिदानन्दमय रूप से आराधना करके **(परमः)** परमात्मा **(जायते)** हो जाता है **(यथा)** जैसे **(तरुः)** बांस का वृक्ष **(आत्मानं)** अपने को **(आत्मैव)** अपने से ही **(मथित्वा)** रगड़कर **(अग्निः)** अग्निरूप **(जायते)** हो जाता है।

अर्थ- अथवा यह आत्मा अपने चिदानंद स्वरूप आत्मा की ही आराधना करके परमात्मा हो जाता है, जैसे बांस का वृक्ष अपने से ही रगड़कर अग्निरूप हो जाता है।

इतीदं भावयेन्नित्यमवाचांगोचरं पदम् ।
स्वत एव तदाप्नोति यतो नवर्तते पुनः॥99॥
भेदाभेद आत्म स्वरूप, नित्य भावना हो इस रूप ।
वचन अगोचर पद को पाय, स्वयं प्राप्त कर भव नश जाय॥

अन्वयार्थ- **(इति)** उक्त प्रकार से **(इदं)** भेद-अभेद रूप आत्मस्वरूप की **(नित्यं)** निरन्तर

(भावयेत्) भावना करनी चाहिए। ऐसा करने से **(तत्)** उस **(अवाचांगोचरं पदं)** अनिर्वचनीय परमात्म पद को **(स्वत एव)** स्वयं ही यह जीव **(आप्नोति)** प्राप्त होता है **(यतः)** जिस पद से **(पुनः)** फिर **(न आवर्तते)** लौटना नहीं होता है–पुनर्जन्म लेकर संसार में भ्रमण करना नहीं पड़ता है।

अर्थ– उक्त प्रकार से भेद अभेद रूप आत्म स्वरूप की निरंतर भावना करना चाहिये, ऐसा करने से वाणी के अगोचर उस परमात्म पद की स्वयमेव उपलब्धि होती है, जिस पद से फिर लौटना नहीं होता है।

अयत्नसाध्यं निर्वाणं चित्तत्वं भूतजं यदि।
अन्यथा योगतस्तस्मान्न दुःखं योगिनां क्वचित॥ 100॥

चेतनलक्षण चेतन तत्व, अयत्न साध्य निर्वाणक सत्व।
अतः योगि जन करके योग, कभी ना माने दुःख संयोग॥

अन्वयार्थ– **(चित्तत्वम्)** चेतना लक्षण वाला यह जीव तत्त्व **(यदि भूतजं)** यदि भूतज है–चार्वाक मत के अनुसार पृथ्वी, जल अग्नि और वायुरूप भूतचतुष्टय से उत्पन्न हुआ है अथवा सांख्यमत के अनुसार सहज शुद्धात्मस्वरूप से उत्पन्न है– उस शुद्धात्मस्वरूप के संवदेना द्वारा लब्धात्मरूप है, तो **(निर्वाणं)** मोक्ष **(अयत्नसाध्यं)** यत्न से सिद्ध होने वाला नहीं रहेगा। अर्थात् चार्वाकमत की अपेक्षा, जो कि शरीर के छूट जाने पर आत्मा में किसी विशिष्टावस्था की प्राप्ति का अभाव बतलाता है, मरणरुप शरीर का विनाश होने से आत्मा का अभाव हो जायेगा और यही अभाव बिना यत्न का निर्वाण होगा, जो इष्ट नहीं हो सकता। और सांख्यमत की अपेक्षा स्वभाव से ही सदा शुद्धात्मस्वरूप का लाभ मान लेने से मोक्ष के लिये ध्यानादिक कोई उपाय करने की भी आवश्यकता नहीं रहेगी, और इस तरह निरुपाय मुक्ति की प्रसिद्धि होने से बिना यत्न के ही निर्वाण होना ठहरेगा जो उस मत के अनुयायियों को भी इष्ट नहीं है। **(अन्यथा)** यदि चैतन्य आत्मा भूतचतुष्टयजन्य तथा सदा शुद्धात्मस्वरूप का अनुभव करने वाला नित्यमुक्त नहीं है। तो फिर **(योगतः)** योग से स्वरूप संवेदनाचित्तवृत्ति के निरोध का दृढ़ अभ्यास करने से ही निर्वाण की प्राप्ति होगी **(तस्मात्)** चूँकि वस्तुतत्व की ऐसी स्थिति है इसलिये **(योगिनां)** निर्वाण के लिये प्रयत्नशील योगियों को **(क्वचित्)** किसी भी अवस्था में दुर्द्धरानुष्ठान के करने तथा छेदन–भेदनादिरूप उपसर्ग के उपस्थिति होने पर **(दुःख न)** कोई दुःख नहीं होता है।

अर्थ– चेतना लक्षण वाला यह जीव तत्व यदि चार्वाक मत के अनुसार पृथ्वी, जल,अग्नि और वायुरूप भूत चतुष्टय से उत्पन्न हुआ है अथवा सांख्य मत के अनुसार सहज शुद्धात्म स्वरूप से उत्पन्न है तो प्रयत्न से सिद्ध होने वाला नहीं है, यदि चैतन्य आत्मा भूत चतुष्टय जन्म तथा शुद्धात्म स्वरूप का अनुभव करने वाला नित्य मुक्त नहीं है तो फिर योग [मन,वचन, काय की प्रवृत्ति को रोककर] ध्यानादि से निर्वाण की प्राप्ति होगी, इसलिये निर्वाण के लिये प्रयत्नशील योगियों को कठोर तपश्चर्या आदि करने में [किसी भी अवस्था में] कोई दुःख नहीं होता है।

स्वप्ने दृष्टे विनष्टेऽपि न नाशोऽस्ति यथात्मनः।
तथा जागरदृष्टेऽपि विपर्यासाविशेषतः॥ 101॥
स्वप्न में ज्यों उत्पाद विनाश, आतम का ना होवे नाश।
जागृत में उत्पाद विनाश, होता है भ्रम या विपर्यास॥

अन्वयार्थ- (**स्वप्ने**) स्वप्न की अवस्था में (**दृष्टे विनष्टे अपि**) प्रत्यक्ष देखे जाने वाले शरीरादिक विनाश होने पर भी (**यथा**) जिस प्रकार (**आत्मनः**) आत्मा का (**नाशः न अस्ति**) नाश नहीं होता है (**तथा**) उसी प्रकार (**जागरदृष्टे अपि**) जाग्रत अवस्था में भी दृष्ट शरीरादिक का विनाश होने पर आत्मा का नाश नहीं होता है। (**विपर्यासाविशेषतः**) क्योंकि दोनों ही अवस्थाओं में जो विपरीत प्रतिभास होता है उसमें परस्पर कोई भेद नहीं है।

अर्थ- स्वप्न की अवस्था में प्रत्यक्ष देखे जाने वाले शारीरिक विनाश होने पर भी जिस प्रकार आत्मा का नाश नहीं होता है, उसी प्रकार जाग्रत अवस्था में भी दृष्ट शारीरिक का विनाश होने पर आत्मा का नाश नहीं होता है। क्योंकि दोनों ही अवस्थाओं में जो विपरीत प्रतिभास होता है उसमें परस्पर कोई भेद नहीं है।

अदुःखभावितं ज्ञानं क्षीयते दुःखसन्निधौ।
तस्माद्यथाबलं दुःखैरात्मानं भावयेन्मुनि॥ 102॥
अदुख भाव से भावित ज्ञान, दुख में क्षीयत होय अज्ञान।
यथा शक्ति मुनि सहकर कष्ट, निज स्वरूप ध्याते स्पष्ट॥

अन्वयार्थ- (**अदुःखभावितं ज्ञानं**) जो भेदविज्ञान दुःखों की भावना से रहित है-उपार्जन के लिए कुछ कष्ट उठाये बिना ही सहज सुकुमार उपाय-द्वारा बन आता है-वह (**दुःखसन्निधौ**) परिषह-उपसर्गादिक दुःखों के उपस्थित होने पर (**क्षीयते**) नष्ट हो जाता है। (**तस्मात्**) इसलिए (**मुनिः**) अन्तरात्मा योगी को (**यथाबलं**) अपनी शक्ति के अनुसार (**दुःखैः**) दुःखों के साथ (**आत्मानं भावयेत्**) आत्मा की शरीरादि भिन्न भावना करनी चाहिये।

अर्थ- जो भेद विज्ञान दुखों की भावना से रहित है वह उपसर्गादिक दुखों के आने पर नष्ट हो जाता है। इसलिये योगी अपनी शक्ति के अनुसार दुखों के साथ आत्मा की भावना करें।

प्रयत्नादात्मनो वायुरिच्छाद्वेषप्रवर्तितात्।
वायोः शरीरयंत्राणि वर्तन्ते स्वेषु कर्मसु॥ 103॥
रागद्वेष युत आतम यत्न, वायु करती है उत्पन्न।
वायु से तन रूपी यंत्र, निज कार्यों में करता यत्न॥

अन्वयार्थ- (**आत्मनः**) आत्मा के (**इच्छाद्वेषप्रवर्तितात् प्रयत्नात्**) राग और द्वेष की प्रवृत्ति से होने वाले प्रयत्न से (**वायुः**) वायु उत्पन्न होती है- वायु का संचार होता है (**वायोः**) वायु के संचार

से **(शरीरयंत्राणि)** शरीररूपी यंत्र **(स्वेषु कर्मसु)** अपने-अपने कार्य करने में **(वर्तन्ते)** प्रवृत्त होते हैं।
अर्थ- आत्मा के राग और द्वेष की प्रवृत्ति से होने वाले प्रयत्न से शरीर में वायु उत्पन्न होती है, वायु के संचार से शरीर रूपी यंत्र अपने अपने कार्य में प्रवृत्त होते हैं।

तान्यात्मनि समारोप्य साक्षाण्यास्तेऽसुखं जडः।
त्यक्त्वाऽरोपं पुनर्विद्वान् प्राप्नोति परमं पदम्॥ 104॥

मूढ़ इन्द्रिय युत तन रूप, दुखी होय कर आत्म स्वरूप।
ज्ञानी तन में आत्मारोप, त्याग परम पद पावे योग॥

अन्वयार्थ- **(जड़)** मूर्ख बहिरात्मा **(साक्षाणि)** इन्द्रियों सहित **(तानि)** उन औदारिकादि शरीर यन्त्रों को **(आत्मनि समारोप्य)** आत्मा में आरोपण करके-मैं गोरा हूँ, मैं सुलोचन हूँ इत्यादि रूप से उनके आत्मत्व की कल्पना करके **(असुखं आस्ते)** दुःख भोगता रहता है **(पुनः)** किन्तु **(विद्वान्)** ज्ञानी अन्तरात्मा **(आरोपं त्यक्त्वा)** शरीरादिक में आत्मा की कल्पना को छोड़कर **(परमं पदं)** परमपदरूप मोक्ष को **(प्राप्नोति)** प्राप्त कर लेता है।
अर्थ-मूर्ख बहिरात्मा इन्द्रियों सहित उन शरीर यंत्रों को आत्मा में आरोपण करके दुःख प्राप्त करता है, किन्तु ज्ञानी शरीरादिक में आत्मा की कल्पना को छोड़कर परम पद मोक्ष को प्राप्त करता है।

मुक्त्वा परत्र परबुद्धिमहंधियं च, संसार-दुःखजननीं जननाद्विमुक्तः।
ज्योतिर्मयं सुखमुपैति परात्मनिष्ठ- स्तन्मार्गमेतदधिगम्य समाधितंत्रम्।। 105।।

श्रेष्ठ पद का मार्ग यह, पावन समाधि तंत्र है।
परमात्म के भावों में स्थिर, हेतु सम्यक् मंत्र है॥
भव दुःख जननी परात्म बुद्धि, छोड़कर के मुक्त हो।
होकर **'विशद'** ज्योर्तिमयी, सुख रूप भाव संयुक्त हो॥

अन्वयार्थ-**(तन्मार्ग)** उस परमपद की प्राप्ति का उपाय बतलाने वाले **(एतत् समाधितंत्रम्)** इस समाधितंत्र को-परमात्म स्वरूप संवेदन की एकाग्रता को लिए हुए जो समाधि है उसके प्रतिपादक इस 'समाधितंत्र' नामक शास्त्र को **(अधिगम्य)** भले प्रकार अनुभव करके **(परात्मनिष्ठः)** परमात्मा की भावना में स्थिर चित्त हुआ अन्तरात्मा **(संसारदुःखजननीं)** चतुर्गतिरूप संसार के दुःखों को उत्पन्न करने वाली **(परत्र)** शरीरादिपरपदार्थों में **(अहं धियं परबुद्धिं च)** जो स्वात्मबुद्धि तथा परात्म बुद्धि है उसको **(मुक्त्वा)** छोड़कर **(जननाद्विमुक्तः)** संसार से मुक्त होता हुआ **(ज्योतिर्मयं सुखं)** ज्ञानात्मक सुख को **(उपैति)** प्राप्त कर लेता है।
अर्थ- उस परम पद की प्राप्ति का उपाय बताने वाले इस समाधितंत्र को जान करके परमात्मा की भावना में स्थिर चित्त हुआ अंतरात्मा संसार के दुखों को उत्पन्न करने वाली शरीरादि पर पदार्थों में स्वात्मबुद्धि तथा परात्मबुद्धि को छोड़कर संसार से मुक्त होता हुआ ज्ञानात्मक सुख को प्राप्त करता है।

वारसाणुपेक्खा

णमिऊण सव्वसिद्धे झाणुत्तम खविद दीह संसारे ।
दस दस दो दो य जिणे दस दो अणुपेहणं वोच्छे ॥ 1 ॥

उत्तम ध्यान के द्वारा नाशे, रहा दीर्घ संसार अपार।
सर्व सिद्ध चौबीसों जिन पद, वन्दन करते बारम्बार॥
बारह अनुप्रेक्षाओं को मैं, यहाँ कहूँगा पाने ज्ञान।
कुन्दकुन्द जी किए प्रतिज्ञा, करने को स्व- पर कल्याण॥१॥

अन्वयार्थ :- **झाणुत्तम**= ध्यान के द्वारा, **खविददीह संसारे** = दीर्घ संसार को नष्ट करने वाले, **सव्व सिद्धे** = सब सिद्धों को, **य** = और, **दस-दस** = दस+दस (बीस), **दो-दो** = दो+दो (चार), अर्थात कुल चौबीस, **जिणे** = जिनेन्द्रों (तीर्थंकरों) को, **णमिऊग** = नमस्कार करके, **दस - दो** = दस+ दो अर्थात् बारह, **अणुपेहणं** = अनुप्रेक्षाओं को, **वोच्छे** = कहूँगा।

अर्थ :- मैं (आचार्य कुन्दकुन्द) उत्तम ध्यान अर्थात् शुक्ल ध्यान के द्वारा अनादिकालीन जन्म जरा मरण रूप दीर्घ संसार को नष्ट करने वाले सभी सिद्धों को और चौबीस तीर्थंकरों को नमस्कार करके द्वादश अनुप्रेक्षाओं (बारह भावनाओं) को कहूँगा।

अनुप्रेक्षाओं का नाम

अद्धुव मसरण मेयत्त मण्ण संसार - लोगमसुचित्तं ।
आसव संवर णिज्जर - धम्मं बोहिं च चिंतेज्जो ॥ 2॥

अनुप्रेक्षा अध्रुव अशरण एकत्व और अन्यत्व संसार।
लोक और अशुचित्व आस्रव, संवर निर्जरा बारम्बार॥
धर्म और बोधी दुर्लभ ये, अनुप्रेक्षा बारह शुभकार।
इनका चिन्तन करो जीव तुम, पाओ भव सिन्धू से पार॥२॥

अन्वयार्थ :- **अद्धुवं** = अध्रुव (अनित्य), **असरणं** = अशरण, **ऐयत्तं** = एकत्व, **अण्ण-संसार-लोगं**= अन्यत्व, संसार,लोक, **असुचित्तं** = अशुचित्व, **आसव - संवर** = आस्रव, संवर, **णिज्जर - धम्मं** = निर्जरा, धर्म, **च बोहिं** = और बोधि का, **चिंतेज्जो** = **चिन्तन** करना चाहिये ।

अर्थ :- अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचि, आस्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधि दुर्लभ और धर्म, इन भावनाओं का चिन्तन करना चाहिये ।

Aakriti

सभी वस्तुएँ अनित्य

वरभवण-जाण-वाहण, सयणासण-देवमणुवरायाणं ।
मादुपिदुसजणभिच्च य, संबंधिणो पिदिवियाणिच्चा ॥ 3 ॥

ऊँचे भवन यान वाहन अरु, सोने की शैया मनहार।
स्वर्णमयी सिंहासन पाया, बने देव मानव शुभकार॥
मातपिता अरु स्वजन भव्य शुभ, परिजन इत्यादिक की प्रीति।
है अनित्य कोई साथ ना देते, काल अनादी की ये रीति॥३॥

अन्वयार्थ : देव-मणुव = देव मनुष्य, **रायाणं** = और राजाओं के, **वर** = श्रेष्ठ (सुन्दर), **भवण** = महल, **जाण वाहण** = जहाज, वाहन (सवारी), **सयणासण** = शय्या, आसन, **मादुपिदुसजण** = माता-पिता, स्वजन, **भिच्च** = भृत्य (नौकर), **संबंधिणो** = सम्बन्धी, **य** = और, **पिदिविय** = पितृव्य (चाचा, ताऊ आदि सभी), **अणिच्चा** = अनित्य (नाशवान) हैं ।

अर्थ :- देव, मनुष्य और राजाओं के सुन्दर महल, पालकी, शय्या, आसन, माता-पिता, स्वजन और भृत्यादि सभी सम्बन्धी जन अनित्य हैं। सदा साथ रहने वाले नहीं हैं ।

रूप यौवन आदि इन्द्र धनुष के समान

सामग्गिंदियरूवं, आरोग्गं जोव्वणं बलं तेजं ।
सोहग्गं लावण्णं, सुरधणु मिव सस्सयं ण हवे ॥ 4 ॥

चेतन और अचेतन कोई, बाह्य सामग्री योग्यायोग्य।
इन्द्रियाँ पंच रूप यौवन या, तन में पाया हो आरोग्य॥
तेज और लावण्य देह में, पाया हो सौभाग्य महान।
इन्द्र धनुष सम शाश्वत् हैं ना, भाई तुम ये रखना ध्यान॥४॥

अन्वयार्थ :- इंदिय रूवं = इन्द्रियों का स्वरूप, **आरोग्गं** = आरोग्य, **जोव्वणं** = यौवन, **बलं तेजं** = बल, तेज, **सोहग्गं** = सौभाग्य, **लावण्णं** = लावण्य (सौन्दर्य) रूप, **सामग्गी** = सामग्री, **सुरधणुमिव** = इन्द्रधनुष के समान, **सस्सयं** = शाश्वत्, **ण हवे** = नहीं होती है।

अर्थ :- जिस तरह आकाश में प्रकट होने वाला इन्द्र-धनुष थोड़ी ही देर दिखाई देकर नष्ट हो जाता है, ज्यादा देर टिकता नहीं है, उसी तरह इन्द्रियों का स्वरूप, निरोगता, यौवन, बल, तेज, और सौन्दर्य आदि रूप सामग्री शाश्वत् नहीं है, अर्थात् क्षण भंगुर हैं।

अहमिन्द्र और बलदेव पद स्थिर नहीं

जल बुब्बुद-सक्क धणु-खणरुचि-घणसोहमिव थिरं ण हवे ।
अहमिंदट्ठाणाई, बलदेवप्पहुदि- पज्जाया ॥ 5 ॥

स्वर्गों में रहने वाले जो, इन्द्रादिक के है स्थान।
बलदेवादिक महापुरुष भी, पर्याएँ जो पाएँ महान॥
जल के बुद-बुद इन्द्र धनुष या, बिजली की शोभा सम जान।
कोई शाश्वत् नहीं जगत में, ऐसा कहते हैं भगवान॥५॥

अन्वयार्थ :- **अहमिंदट्ठाणाइं** = अहमिन्द्र के स्थान (पद) एवं, **बलदेवप्पहुदि** =बलदेव आदि की, **पज्जाया** = पर्यायें, **जलबुब्बद** = जल के बुलबुले, **सक्क धणु** = इन्द्रधनुष, **खणरूचि** = बिजली की चमक (और), **घणसोहमिव** = बादलों की शोभा के समान, **थिरं ण हवे** = स्थिर नहीं रहतीं। अर्थात् सर्व पदार्थ अनित्य हैं ऐसा चिन्तन करना चाहिए।

अर्थ :- अहमिन्द्र के पद और बलदेव, नारायण, प्रतिनारायण चक्रवर्ती के पद/पर्यायें जल के बुलबुले के समान, इन्द्र धनुष, बिजली की चमक और मेघ की शोभा के समान स्थिर नहीं हैं अर्थात् अल्पकाल में नष्ट हो जाती हैं।

जीव और देह का सम्बन्ध नीर क्षीरवत्

जीव णिबद्धं देहं, खीरोदय मिव विणस्सदे सिग्घं ।
भोगोपभोगकारण, दव्वं णिच्चं कहं होदि ॥ 6॥

जीव से सम्बन्धित शरीर यह, क्षीर नीर सम दिखे विशेष।
शीघ्र नष्ट हो जाता वह भी, कहते हैं श्री जिन तीर्थेश॥
भोग और उपभोग के कारण,भूत द्रव्य जो हैं शुभकार।
कैसे हो सकते वे शाश्वत्, जो बतलाए पूर्ण असार॥६॥

अन्वयार्थ :- **देहं** = इस देह का, **खीरोदयमिव** = दूध-पानी के समान, **जीव-णिबद्धं** = जीव के साथ **(जो)** सम्बन्ध है, जब वह भी, **सिग्घं** = शीघ्र, **विणस्सदे** = नष्ट हो जाता है तब, **भोगोपभोगकरण** = भोगोपभोग का कारणभूत, **दव्वं** = **द्रव्य**, **कहं णिच्चं होदि** = कैसे नित्य हो सकता है ? अर्थात् नित्य नहीं हो सकता।

अर्थ :- क्षीर-नीर की तरह, एकमेक रहने वाला, जीव से अनबद्ध यह शरीर भी जब शीघ्र नष्ट हो जाता है तो फिर भोगोपभोग की सामग्रियाँ कैसे शाश्वत् रह सकती हैं ? अर्थात् नहीं रह सकती।

आत्मा शाश्वत है ऐसा चिन्तन करें

परमट्ठेण दु आदा, देवासुर मणुवराय विहवेहिं ।
वदिरित्तो सो अप्पा, सस्सदमिदि चिंतए णिच्चं ॥ 7॥

निश्चय नय से आतम जानो, सौधर्मेन्द्र और असुरेन्द्र।
छह खण्डों की पाए विभूती, मानव के राजा मनुजेन्द्र॥

Aakriti

सर्व विभूती से है विरहित, विशद आतमा मंगलकार।
शाश्वत् है ऐसा चिन्तन तुम, करो निरन्तर बारम्बार॥७॥

अन्वयार्थ :- परमट्ठेण दु = परमार्थ (निश्चय) से तो, **आदा** = आत्मा, **देवासुर-मणुव** = देव, असुर, मनुष्य (और), **रायविहवेहिं** = राजाओं के वैभव से, **वदिरित्तो** = भिन्न है, **सो अप्पा** = वह आत्मा, **सस्सदं** = शाश्वत् है, **इदि** = इस प्रकार, **णिच्चं चिंतए** = नित्य चिन्तवन करना चाहिये।

अर्थ :- निश्चय नय से आत्मा देव, असुर, मनुष्य और राजाओं के वैभव से भिन्न है और शाश्वत् है, इस प्रकार चिन्तवन करना चाहिए ।

मणि मंत्रादि मृत्यु से नहीं बचा सकते

मणिमंतो सहरक्खा, हय गय रहओ य सयल विज्जाओ ।
जीवाणं ण हि सरणं, तिसु लोए मरणसमयम्हि ॥ 8॥

तीन लोक में जग जीवों को, मृत्यू का जब आए काल।
मंत्रौषधि मणि आदिक कोई, लोक में जो भी रहे त्रिकाल॥
हाथी घोड़ा रथ विद्याएँ, नहीं कोई भी रही शरण।
काल अनादी इसीलिए तो,करता रहता जन्म मरण॥८॥

अन्वयार्थ :- मरणसमयम्हि = मरण के समय, **तिसु लोए** = तीनों लोकों में, **मणिमंतोसहरक्खा** = मणि, मंत्र, औषधि रक्षा के उपकरण, **हयगयरहओ** = घोड़े, हाथी, रथ, **य** = और, **सयलविज्जाओ** = समस्त विद्यायें, **जीवाणं** = जीवों के, **हि** = निश्चय से, **सरणं ण** = शरण नहीं हैं।

अर्थ :- मृत्यु का समय आने पर तीनों लोकों में मणि, मंत्र, औषधि, रक्षक, हाथी, रथ तथा समस्त विद्यायें भी जीव के शरण नहीं हैं, अर्थात् ये भी उन्हें मरने से नहीं बचा सकते ।

मृत्यु के समय इन्द्र को भी शरण नहीं

सग्गो हवे हि दुग्गं, भिच्चा देवा य पहरणं वज्जं ।
अइरावदो गइंदो, इंदस्स ण विज्जदे सरणं ॥ 9॥

जिसका दुर्ग स्वर्ग है सारा, सभी देवता भृत्य प्रधान।
रक्षक वज्र कहा है जिसका, ऐरावत गज रहा महान॥
ऐसे इन्द्रराज को भी जब, नहीं लोक में कोई शरण।
विशद नित्य यह चिन्तन करना, कैसे छूटे जन्म मरण॥९॥

अन्वयार्थ :- हि - निश्यच से, **सग्गो** = स्वर्ग (जिसका), **दुग्गं हवे** = दुर्ग है, **देवा भिच्चा** = देव भृत्य है, **वज्जं पहरणं** = वज्र शस्त्र है, **य** = और, **अइरावदो गइंदो** = ऐरावत गजेन्द्र है, उस, **इंदस्स** = इन्द्र का (भी मृत्यु के समय कोई), **सरणं ण विज्जदे** = शरण नहीं है।

अर्थ :- जिस इन्द्र का स्वर्ग तो किला है, देव नौकर चाकर हैं, वज्र शस्त्र है तथा ऐरावत हाथी

सवारी है, उसके भी कोई शरण नहीं है। अर्थात् मृत्यु से उसे भी कोई बचा नहीं सकता ।

काल का कवल चक्रवर्ती भी

णव णिहि चउदह रयणं, हय मत्त गइंद-चाउरंग बलं ।
चक्के सस्स ण सरणं, पेच्छंतो कड्ढिए काले ॥ 10॥

अतिशयकारी नव निधियाँ अरु, चौदह रत्न श्रेष्ठ गाए।
तेज दौड़ने वाले घोड़े, मत्त गजेन्द्र कई पाए॥
पाए जो चतुरंगी सेना, उसकी भी है नहीं शरण।
काल के द्वारा चक्रवर्ति का, भी तो देखा जाए मरण॥१०॥

अन्वयार्थ :- काले कड्ढिए = काल के द्वारा मर्दन किये जाने पर, **णवणिहि** = नवनिधि, **चउदह रयणं** = चौदह रत्न, **हय मत्तगइंद** = घोड़े, मत्त हाथी, **य** = और, **चाउरंग बलं** = चतुरंगिनी सेना, **चक्के सस्स** = चक्रवर्ती को, **सरणं ण** = शरण नहीं, **पेच्छंतो** = दिखाई देते ।

अर्थ = काल (मृत्यु) के द्वारा आक्रमण किये जाने पर नौ निधियाँ, चौदह रत्न, अठारह हजार घोड़े, चौरासी लाख हाथी तथा चतुरंगिनी (पैदल, अश्व, गज और रथ रूप) सेना भी चक्रवर्ती को शरण नहीं दे सकते, अर्थात् चक्रवर्ती का अपार वैभव भी उसे मृत्यु से बचा नहीं पाता।

आत्मा ही वास्तव में शरण है

जाईजरा मरण रोग, भयदो रक्खेदि अप्पणो अप्पा ।
तम्हा आदा सरणं, बंधोदयसत्त -कम्मवदिरित्तो ॥ 11॥

जन्म बुढ़ापा और मरण हो,या असाध्य कोई हो रोग।
और अन्य कोई कारण से,भय का भी होवे संयोग॥
आतम ही आतम का रक्षक, मैटे सारे जन्म मरण।
बन्धोदय अरु सत्व कर्म से, रहित आत्मा रही शरण॥११॥

अन्वयार्थ :- अप्पा = आत्मा, **जाई जरामरण** = जन्म-जरा मरण, **रोग भयदो** = रोग (और) भय से, **अप्पणो रक्खेदि** = अपनी रक्षा करता है, **तम्हा** = इसलिये, **बंधोदयसत्त** = बन्ध, उदय, सत्व रूप, **कम्मवदिरित्तो** = कर्मों से रहित शुद्ध आत्मा ही अपनी शरण है।

अर्थ :- जन्म, जरा, मरण, रोग और भय से आत्मा अपनी रक्षा स्वयं करती है, इसलिये बन्ध, उदय और सत्व रूप कर्मों से रहित शुद्ध आत्मा ही अपनी शरण है।

परमेष्ठी रूप आत्मा ही शरण है

अरुहा सिद्धाइरिया, उवझाया साहु पंचपरमेट्ठी ।
तेवि हु चेट्ठदि आदे, तम्हा आदा हु मे सरणं ॥ 12॥

घाती कर्म विनाशी अर्हत्, सिद्ध कर्म से रहित महान।

आचार्योपाध्य सर्व साधु हैं, पाँचों ये परमेष्ठी जान॥
निश्चय से ये भी आतम के, निज स्वभाव में रहते एव।
इसीलिए मेरी आतम ही, मुझे शरण है स्वयं सदैव॥१२॥

अन्वयार्थ :- अरुहा = अर्हन्त, **सिद्धाइरिया** = सिद्ध, आचार्य, **अवझाया** = उपाध्याय (और) **साहु पंच परमेट्ठी** = साधु ये पंच परमेष्ठी हैं, **ते वि हु** = वे भी निश्चय से, **आदे** = आत्मा में, **चेट्ठदि** = लीन रहते हैं, प्रवर्तते हैं, **तम्हा** = अतः, **आदा हु** = आत्मा ही, **मे सरणं** = मेरी शरण है।

अर्थ :- अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु ये पांचों परमेष्ठी आत्मा में ही लीन रहते हैं, प्रवर्तते हैं अर्थात् आत्मा की ही पर्यायें हैं, इसलिये आत्मा ही मेरी शरण है।

रत्नत्रय रूप आत्मा ही शरण है

सम्मत्तं सण्णाणं सच्चारित्तं च सत्तवो चेव ।
चउरो चेट्ठदि आदे, तम्हा आदा हु मे सरणं ॥13॥

सम्यकदर्शन श्रेष्ठ लोक में, और बताया सम्यक् ज्ञान।
सम्यक् चारित भी है पावन, सम्यक् तप भी रहा महान॥
रहें आतमा में ये चारों, निश्चय से यह रहा कथन।
विशद लोक में मुझे आत्मा, अतः कही है एक शरण॥१३॥

अन्वयार्थ :- सम्मत्तं = सम्यग्दर्शन, **सण्णाणं** = सम्यग्ज्ञान, **च** = और, **सच्चारित्तं** = सम्यक् चारित्र, **चेव सत्तवो** = तथा सम्यक् तप, **चउरो** = (ये चारों), **आदे चिट्ठदि** = आत्मा में अवस्थित हैं, **तम्हा** = अतः, **मे आदा हु** = मेरी आत्मा ही, **सरणं** = शरण है।

अर्थ :- सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और सम्यक् तप ये चारों आत्मा में ही अवस्थित हैं, इसलिये आत्मा ही मेरी शरण है ।

जन्म-मरण और कर्मबंध अकेला ही करता

एक्को करेदि कम्मं, एक्को हिंडदि य दीह संसारे ।
एक्को जायदि मरदि य, तस्स फलं भुंजदे एक्को ॥ 14॥

कर्म करे यह जीव अकेला, दीर्घ बताया ये संसार।
एक अकेला भ्रमण करे यह, जिसका नहीं है पाराबार॥
जन्म अकेला लेता है यह, एक अकेला करे मरण।
एक अकेला उसके फल को, पाए होकर के अशरण॥१४॥

अन्वयार्थ :- एक्को = यह संसारी जीव अकेला ही, **कम्मं करेदि** = कर्म करता है (बाँधता है), **च** = और, **एक्को** = अकेला ही, **दीह संसारे** = दीर्घ संसार में , **हिंडदि** = परिभ्रमण करता है, **एक्को** = अकेला ही, **जायदि य मरदि** = जन्म लेता है और मरता है, **एक्को** = (और) अकेला ही, **तस्स**

फलं भुंजदे = उस कर्म के फल को भोगता है।

अर्थ :- यह जीव अकेला ही कर्मों को बाँधता है, अकेला ही संसार में परिभ्रमण करता है, अकेला ही जन्मता है, अकेला ही मरता है, और अपने कर्मों का फल भी अकेला ही भोगता है।

अकेला ही पाप करता और फल भोगता

एक्को करेदि पावं, विसय णिमित्तेण तिव्व लोहेण ।
णिरय तिरियेसु जीवो, तस्स फलं भुंजदे एक्को ॥ 15 ॥

तीव्र लोभ से युक्त जीव यह, विषय निमित्तों को पा आप।
स्वयं अकेला करे निरन्तर, जीव अकेला ही कई पाप॥
उसके फल से नरकों में या, तिर्यंच गती में जाए जीव।
वहाँ अकेला उसके फल को, भोगे पाए कष्ट अतीव॥१५॥

अन्वयार्थ :- **एक्को** = अकेला ही, **विसय णिमित्तेण** = विषयों के निमित्त, **तिव्वलोहेण** = तीव्र लोभ से, **पावं करेदि** = पाप करता है (और), **एक्को** = अकेला ही, **जीवों** = (यह) जीव, **णिरय तिरियेसु** = नरक और तिर्यंच गति में, **तस्स फलं** = उस कर्म का फल, **भुंजदे** = भोगता है।

अर्थ :- इन्द्रिय विषयों के निमित्त तीव्र लोभ के कारण संसारी जीव अकेला ही पाप कर्म करता है और नरक-तिर्यंचगति में अकेला ही उस पाप कर्म का फल भोगता है।

अकेला ही पुण्य करता और फल भोगता

एक्को करेदि पुण्णं, धम्म णिमित्तेण पत्तदाणेण ।
मणुव देवेसु जीवो, तस्स फलं भुंजदे एक्को ॥ 16 ॥

पाके धर्म निमित्त जीव यह,सत् पात्रों को देवे दान।
जिसके फल से जीव अकेला, पुण्य प्राप्त यह करे महान॥
और पुण्य का फल पाकर के, मानव गति पावे या देव।
वहाँ अकेला सौख्य भोगता, मनमाने यह जीव सदैव॥१६॥

अन्वयार्थ :- **एक्को** = अकेला ही, **धम्म णिमित्तेण** = धर्म के निमित्त (कारणभूत), **पत्तदाणेण** = पात्र दान के द्वारा, **पुण्णं करेदि** = पुण्य करता (बाँधता) है और, **जीवो** = यह जीव, **एक्को** = अकेला ही, **मणुवदेवेसु** = मनुष्य और देवगति में, **तस्स फलं** = उस पुण्य के फल को भोगता है।

अर्थ:- यह जीव अकेला ही धर्म के निमित्त सत्पात्रों को दान देकर पुण्य करता है और अकेला ही मनुष्य और देवगति में उस पुण्य का फल भोगता है।

उत्तम और मध्यम पात्र

उत्तम पत्तं भणियं, सम्मत्त गुणेण संजुदो साहु ।
सम्मादिट्ठी सावय, मज्झिम पत्तो हु विण्णेओ ॥ 17 ॥

अन्वयार्थ :- सम्मत्त गुणेण = सम्यक्त्व गुण से, **संजुदो साहु** = युक्त साधु (दान का), **उत्तम पत्तं** = उत्तम पात्र, **भणिदं** = कहा गया है (और), **सम्मादिट्ठी सावय** = सम्यग्दृष्टि व्रती श्रावक (को) , **हु** = वास्तव में, **मज्झिमपत्तो** = मध्यम पात्र, **विण्णेओ** = समझना चाहिये ।

अर्थ :- सम्यक्त्व गुण से युक्त साधु उत्तम पात्र कहा गया है, सम्यग्दृष्टि व्रती श्रावक को मध्यम पात्र जानना चाहिये ।

जघन्य पात्र और अपात्र

णिद्दिट्ठो जिणसमए, अविरद सम्मो जहण्ण पत्तो त्ति ।
सम्मत्त रयण रहिदो, अपत्त मिदि संपरिक्खेज्जो ॥ 18 ॥

जैनागम में सम्यक् गुणयुत, सकल संयमी साधु महान।
उत्तम पात्र कहाते हैं अरु, श्रावक सम्यक् श्रद्धावान॥
मध्यम पात्र जघन्य अविरती, सम्यक्वी सम्यक्त्व विहीन।
पात्र नहीं हो सकता ऐसे, पात्र परीक्षा करो प्रवीण॥१७+१८॥

अन्वयार्थ :- जिणसमए = जिनेन्द्र भगवान के धर्म में, **अविरदसम्मो** = अविरत सम्यग्दृष्टि (को दान का), **जहण्ण पत्तो** = जघन्य पात्र, **णिद्दिट्ठो** = कहा गया है जो, **सम्मत्त रयण र हिदो** = सम्यक्त्व रत्न से रहित है (वह), **अपत्तं** = अपात्र है, **इदि** = इस प्रकार (पात्र-अपात्र की), **संपरिक्खेज्जो** = परीक्षा करनी चाहिये ।

अर्थ :- जिनागम में अविरत सम्यग्दृष्टि को जघन्य पात्र कहा गया है और जो सम्यक्त्व रत्न से रहित है, वह अपात्र है । इस प्रकार पात्र-अपात्र की अच्छी तरह परीक्षा करना चाहिये ।

निर्वाण किसे नहीं

दंसण भट्टा भट्टा, दंसण भट्टस्स णत्थि णिव्वाणं ।
सिज्झंति चरिय भट्टा, दंसण भट्टा ण सिज्झंति ॥ 19 ॥

दर्शन से जो भ्रष्ट, भ्रष्ट है,दर्शन भ्रष्ट रहा जो जीव।
हो निर्वाण प्राप्त ना उसको, भ्रमण करे संसार अतीव॥
जो चारित्र भ्रष्ट है कोई, मुक्ती वह पा सके महान।
दर्शन से जो भ्रष्ट जीव है, उसका कभी ना हो निर्वाण॥१९॥

अन्वयार्थ :- दंसणभट्ठा = सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट हैं (वे ही वास्तव में), **भट्ठा** = भ्रष्ट हैं, **दंसण भट्टस्स** = दर्शन से भ्रष्ट जीवों को, **णिव्वाणं णत्थि** = निर्वाण नहीं होता, **चरियभट्टा** = जो चरित्र से भ्रष्ट हो जाते हैं (पुनः चारित्र धारण कर), **सिज्झंति** = सिद्ध पद प्राप्त कर सकते हैं, **दंसण भट्टा** = दर्शन से भ्रष्ट, **ण सिज्झंति** = सिद्ध पद प्राप्त नहीं कर सकते ।

अर्थ :- सम्यक् दर्शन से भ्रष्ट जीव वास्तव में भ्रष्ट हैं, क्योंकि दर्शन से भ्रष्ट जीवों का मोक्ष नहीं

होता जो चारित्र से भ्रष्ट हो जाते हैं (वे पुनः चारित्र धारण कर) मुक्ति पा सकते हैं, किन्तु दर्शन से भ्रष्ट सिद्धि प्राप्त नहीं कर सकता।

शुद्धात्म स्वरूप ही उपादेय

एक्कोहं णिम्ममो सुद्धो, णाण दंसण लक्खणो ।
सुद्धेयत्त मुपादेयं, एवं चिंतेइ संजदो ॥ 20॥

मैं हूँ एक शुद्ध द्रव्यार्थिक,नय के द्वारा हूँ मैं शुद्ध।
ज्ञान और दर्शन है लक्षण, सर्व लोक में परम विशुद्ध॥
अतः मुझे एकत्व और है, शुद्ध स्वभाव ग्रहण के योग्य।
ऐसा चिन्तन साधु जनों को, श्रेष्ठ और है सभी अयोग्य॥२०॥

अन्वयार्थ = **अहं** = मैं, **एक्को** = एक हूँ (अकेला हूँ), **णिम्ममो** = ममता रहित हूँ, **सुद्धो** = शुद्ध हूँ, **णाण-दसंण लक्खणो** = ज्ञान-दर्शन स्वभावी हूँ, **सुद्धेयत्तं** = शुद्ध एकत्व स्वरूप ही, **उपादेयं** = उपादेय है, **एवं** = इस प्रकार, **संजदो** = संयमी को, **चिंतेइ** = चिन्तवन करना चाहिये।

अर्थ :- मैं एक हूँ, ममता रहित हूँ और ज्ञान दर्शन स्वभावी हूँ। एकमात्र शुद्धात्म स्वरूप ही मेरे लिये उपादेय है, इस प्रकार संयमी को सदा चिन्तवन करना चाहिये।

संसार के सम्बन्ध सब स्वार्थमूलक

मादा पिदर सहोदर, पुत्त कलत्तादि बंधु संदोहो ।
जीवस्स ण संबंधो, णिय कज्ज वसेण वट्टंति ॥21॥

माता पिता बहिन वा भाई, का शरीर से है सम्बन्ध।
स्त्री पुत्र मित्र आदिक सब, स्वार्थ में ही मानें आनन्द॥
नहीं रहा सम्बन्ध जीव का, अपने स्वजनादिक के साथ।
ऐसा चिन्तन करे विशद जो, वह नर बने श्री का नाथ॥२१॥

अन्वयार्थ :- **मादापिदर** = माता-पिता, **सहोदर** = सगा भाई, **पुत्त कलत्तादि** = पुत्र, स्त्री आदि, **बंधु संदोहो** = बंधुओं का समूह (इनसे), **जीवस्स** = जीव का, **संबंधो ण** = सम्बन्ध नहीं है ये सब, **णिय कज्जवसेण** = अपने कार्यवश (स्वार्थवश), **वट्टंति** = साथ रहते हैं।

अर्थ :- माता,पिता,भाई,पुत्र, पत्नी आदि बन्धुजनों के समूह से जीव का परमार्थतः कोई सम्बन्ध नहीं है। ये सब स्वार्थवश जीव के साथ रहते हैं।

मोहवश जीव अन्य के लिये शोक करता

अण्णो अण्णं सोयदि, मदो त्ति मम णाहगो त्ति मण्णंतो ।
अप्पाणं ण हु सोयदि, संसार महण्णवे बुड्ढं ॥22॥

मरण हुआ मेरे स्वामी का, प्रायः सोचे यह संसार।

एक दूसरे के बारे में, प्राणी करते यही विचार॥
करे शोक यह चिंतन करके, रहा जीव का यह अज्ञान।
डूब रही संसार सिन्धु में, आतम का ना करता ध्यान॥२२॥

अन्वयार्थ :- **मदो त्ति** = यह मर गया, **मम णाहगोत्ति** = यह मेरा स्वामी था ऐसा, **मण्णंतो** = मानता हुआ, **अण्णे** = अन्य संसारी जीव, **अण्णं** = अन्य जीव के लिये, **सोयदि** = शोक करता है किन्तु, **संसार महण्णवे** = संसार रूपी महासमुद्र में, **बुड्ढं** = डूबते हुए, **अप्पाणं** = अपनी आत्मा के लिये, **ण हु सोयदि** = शोक नहीं करता।

अर्थ :- यह मेरा स्वामी था, यह मर गया' इत्यादि रूप मानता हुआ यह संसारी जीव अन्य जीव के लिये तो शोक करता है किन्तु संसार रूपी महासमुद्र में डूबते हुए अपनी आत्मा के लिये शोक नहीं करता ।

शरीर से भिन्न आत्मा ज्ञानदर्शन रूप

अण्णं इमं सरीरादिगं पि, जं होज्ज बाहिरं दव्वं !
णाणं दंसणमादा, एवं चिंतेहि अण्णत्तं ॥ 23॥

सम्यक् दर्शन ज्ञान आत्मा, जानो निश्चय से हे जीव।
द्रव्य शरीरादिक इस जग के, बाह्य अन्य हैं सभी अजीव॥
इस प्रकार अन्यत्व भावना, का चिन्तन करना शुभकार।
भेद ज्ञान के द्वारा प्राणी, पा लेता है भव से पार॥२३॥

अन्वयार्थ :- **इमं** = यह, **सरीरादिगं पि** = शरीर आदि भी (आत्मा से), **अण्णं** = अन्य हैं, **जं** = क्योंकि (ये) **बाहिरं दव्वं** = बाह्य द्रव्य, **होज्ज** = हैं (और), **आदा** = आत्मा, **णाणं दंसणं** = ज्ञान दर्शन स्वरूप है, **एवं अण्णत्तं** = इस प्रकार अन्यत्व (भावना) का, **चिंतेहि** = चिन्तवन करो।

अर्थ :- शरीर आदि भी आत्मा से भिन्न हैं क्योंकि ये बाह्य द्रव्य हैं । मेरी आत्मा तो ज्ञान दर्शन स्वभावी है, इस प्रकार अन्यत्व का चिन्तवन करना चाहिये ।

श्रद्धा के बिना जीव संसार परिभ्रमण करता

पंचविहे संसारे, जाइ जरामरण - रोग भय पउरे ।
जिण मग्ग मपेच्छंतो, जीवो परिभमदि चिरकालं ॥24॥

मोक्ष मार्ग को नहीं जानने, वाला यह संसारी जीव।
प्रचुर बुढ़ापा जन्म मरण के, दुख पाता है विशद अतीव॥
भय से युक्त रोग के कारण, पंच प्रकार कहा संसार।
करता है परिभ्रमण लोक में, दीर्घकाल तक जीव अपार॥२४॥

अन्वयार्थ :- **जिणमग्गं** = जिनमार्ग को, **अपेच्छंतो** = न देखने वाला (श्रद्धान न करने वाला),

जीवो = जीव, **जाइजरामरण** = जन्म, जरा, मृत्यु, **रोगभयपउरे** = रोग और भय से भरे हुए, **पंचविहे संसारे** = पाँच प्रकार के संसार में, **चिरकालं** = चिरकाल तक, **परिभमदि** = परिभ्रमण करता है।

अर्थ :- जिन मार्ग पर श्रद्धान न करने के कारण यह जीव जन्म, जरा, मरण, रोग और भय से भरे हुए पंच परावर्तन (द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भाव) रूप संसार में चिरकाल तक परिभ्रमण करता है।

द्रव्य परावर्तन का स्वरूप

सव्वे वि पोग्गला खलु, एगे भुत्तुज्झिया हु जीवेण ।
असयं अणंतखुत्तो, पुग्गलपरियट्ट संसारे ॥ 25॥

पुद्गल परिवर्तन रूपी यह, जीव के द्वारा वह संसार।
इसमें जीव नियम से सारे, पुद्गल भोगे बारम्बार॥
क्षेत्र अनन्त प्रमाण अकेले, भ्रमता फिरे अनन्तों बार।
छोड़ा गया छोड़कर फिर से, भोगा गया है अपरम्पार॥२५॥

अन्वयार्थ :- **पुग्गल परियट्ट** = पुद्गल-परावर्तन रूप, **संसारे** = संसार में, **एगे जीवेण** = एक जीव ने, **खलु** = निश्चय से , **सव्वे वि** = सभी, **पोग्गला** = पुद्गलों को, **असयं** = बार-बार, **अणंतखुत्तो** = अनन्तबार, **हु** = वस्तुतः, **भुत्तुज्झिया** = भोगकर त्याग दिया है।

अर्थ :- पुद्गल परावर्तन रूप संसार में पुद्गल वर्गणाओं को इस जीव ने अनन्तों बार भोग-भोग कर छोड़ दिया है ।

क्षेत्र परावर्तन का स्वरूप

सव्वम्हि लोयखेत्ते, कमसो तण्णत्थि जण्ण उप्पण्णं ।
ओग्गाहणेण बहुसो, परिभमिदो खेत्तसंसारे ॥ 26॥

जघन्योत्कृष्ट अवगाहन द्वारा, कई प्रकार क्षेत्र संसार।
सर्वलोक के सर्व क्षेत्र में, भ्रमण होय जो बारम्बार॥
नहीं प्रदेश एक भी ऐसा, क्रमशः जहाँ अनेकों बार।
नहीं हुआ उत्पन्न जीव यह, कहते परमेष्ठी आचार्य॥२६॥

अन्वयार्थ :- **सव्वम्हि** = सम्पूर्ण, **लोयखेत्ते** = लोक के क्षेत्र में (लोकाकाश में), **तण्णत्थि** = वह नहीं है (कोई स्थान ऐसा नहीं है), **जण्ण** = जहाँ (यह जीव), **कमसो** = क्रमशः, **बहुसो** = नाना प्रकार की, **ओगाहणेण** = अवगाहना के द्वारा, **ण उप्पण्णं** = नहीं उत्पन्न हुआ हो (इस प्रकार इस जीव ने), **खेत्त संसारे** = क्षेत्र संसार में, **परिभमिदो** = परिभ्रमण किया है।

अर्थ :- संपूर्ण लोकाकाश में ऐसा कोई स्थान (प्रदेश) नहीं है जहाँ पर यह जीव उत्पन्न न हुआ हो। क्रम-क्रम से अनेक प्रकार की अवगाहना धारण करके बहुत बार इस जीव ने संसार में क्षेत्र

Aakriti

परिवर्तन किया है।

काल परिवर्तन का स्वरूप

अवसप्पिणि उस्सप्पिणि, समयावलियासु णिरवसेसासु।
जादो मुदो य बहुसो, परिभमिदो काल संसारे ॥ 27॥

भ्रमण काल संसार अनादी, करता यह संसारी जीव।
उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी के, कालों में हो भ्रमण अतीव॥
सर्वकाल और आवलियों में, जन्मा मरा है बारम्बार।
जैनागम में कहे जिनेश्वर, भाई इसे काल संसार॥२७॥

अन्वयार्थ :- **अवसप्पिणि** = अवसर्पिणी (और), **उस्सप्पिणि** = उत्सर्पिणी काल की, **णिरवसेसासु** = सम्पूर्ण, **समयावलियासु** = समयावलियों में, **बहुसो** = **अनेक बार (जीव ने)**, **जादो य मुदो** = जन्म लिया और मरण किया है (इस प्रकार), **काल संसारे** = काल संसार में, **परिभमिदो** = परिभ्रमण किया है।

अर्थ :- अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी काल के सम्पूर्ण समयों में जीव ने अनेक बार जन्म और मरण प्राप्त किये हैं। ऐसा कोई समय नहीं बचा जिसमें जीव अनन्तों बार जन्मा और मरा न हो। इस प्रकार इस जीव ने काल परिवर्तन रूप संसार में परिभ्रमण किया है।

भव परावर्तन का स्वरूप

णिरयाउ जहण्णादिसु, जावदु उवरिल्लया दु गेवेज्जा ।
मिच्छत्तसंसिदेण दु, बहुसो वि भवट्ठिदी भमिदो ॥28॥

मिथ्या का संसर्ग प्राप्त कर, भ्रमण करे यह जीव अपार।
उपरिम ग्रैवेयक से लेकर के, नरकादिक में बारम्बार॥
जघन्य आदि स्थितियों संयुत, होकर जीव अनेकों बार।
भ्रमण करे संसार सिन्धु में, कर ना सका आत्म उद्धार॥२८॥

अन्वयार्थ :- **णिरयाउजहण्णादिसु** = जघन्य आयु वाले नरक से लेकर, **उवरिल्लया** = उपरिम, **गेवेज्जा** = ग्रैवेयक, **जावदु** = पर्यन्त, **मिच्छत्तसंसिदेण** = मिथ्यात्व के वशीभूत (जीव ने), **दु** = वस्तुतः, **बहुसो वि** =अनेक बार, **भवट्ठिदी**= भवस्थिति धारण कर, **भमिदो** = भ्रमण किया है।

अर्थ :- संसारी जीव मिथ्यात्व के संबंध से नरक की जघन्य आयु से लेकर उपरिम ग्रैवेयक तक की भव स्थिति बाँधकर बहुत बार परिभ्रमण कर चुका है।

भाव परावर्तन का स्वरूप

सव्वे पयडिट्ठिदिओ, अणुभागपदेसबंधठाणाणि ।
जीवो मिच्छत्तवसा, भमिदो पुण भावसंसारे ॥ 29॥

जीव ने मिथ्या के वश होकर, कर्म बताए हैं जो अशेष।
प्रकृति स्थिति अनुभाग बन्ध अरु, चौथा बंध कहाए प्रदेश॥
बन्ध के जो स्थान बताए, उनमें जीव अनेकों बार।
भ्रमण किया अज्ञानी होके, जीव अनादि भाव संसार॥२९॥

अन्वयार्थ :- **भावसंसारे** = भाव संसार में, **मिच्छत्तवसा** = मिथ्यात्व के वशीभूत, जीवों ने, **सव्वे** = सभी कर्मों के, **पयडिट्ठदिओ** = प्रकृति, स्थिति, अणुभागपदेश-**बंधठाणाणि** = अनुभाग और प्रदेश बंध के सभी स्थानों में, **पुण भमिदो** = बार-बार भ्रमण किया है।

अर्थ :- इस भाव परावर्तन रूप संसार में मिथ्यात्व के वशीभूत जीव ने सभी कर्मों के प्रकृतिबन्ध, स्थिति बन्ध, अनुभाग बन्ध और प्रदेश बन्ध के सभी स्थानों में बार-बार भ्रमण किया है।

दया दान रहित जीव संसार में भटकता है

पुत्र कलत्त णिमित्तं, अत्थं अज्जयदि पाव बुद्धीए ।
परिहरदि दया दाणं, सो जीवो भमदि संसारे ॥ 30॥

जीव पुत्र स्त्री आदिक का, पाकर के कई बार निमित्त।
पाप बुद्धि से धन उपार्जन, में ही सदा लगाए चित्त॥
दयादान आदिक,को तज कर, असद कार्य कर बारम्बार।
अशुभ कर्म के कारण से यह, जीव भ्रमण करता संसार॥३०॥

अन्वयार्थ :- (जो जीव) **पुत्त कलत्त णिमित्तं** - पुत्र और स्त्री के लिये, **पाव बुद्धीए** - पाप बुद्धि से, **अत्थं** = धन, **अज्जयदि** = कमाता है और, **दया-दाणं** = दया और दान को, **परिहरदि** = छोड़ देता है, **सो जीवो** = वह जीव, **संसारे भमदि** = संसार में भ्रमण करता है।

अर्थ :- संसारी जीव स्त्री पुत्रादिक के लिए पाप बुद्धि से धन कमाता है और दया-दान-धर्म रूप शुभ क्रियाओं को छोड़ देता है, इसलिये संसार में परिभ्रमण करता है।

धर्म-बुद्धि छोड़ने वाला दीर्घ संसारी

मम पुत्तं मम भज्जा, मम धण धण्णो त्ति तिव्व कंखाए ।
चइऊण धम्मबुद्धि, पच्छा परिपडदि दीह संसारे ॥ 31॥

धर्म बुद्धि को छोड़के ऐसा, माने यदि संसारी जीव।
मेरा पुत्र ये मेरी भार्या, लोभ हृदय में धार अतीव॥
यह धन धान्य आदि है मेरा, ऐसा मन में करे विचार।
अन्तकाल में मरण करे वह, घूमे वही दीर्घ संसार॥३१॥

अन्वयार्थ :- **मम पुत्तं** = मेरा पुत्र है, **मम भज्जा** = मेरी भार्या है, **मम धण-धण्णोत्ति** = मेरा धन-धान्य है ऐसी, **तिव्वकंखाए** = तीव्र आकांक्षा (इच्छा) से, **धम्म बुद्धि** = धर्म बुद्धि को,

चइऊण = छोड़कर, **पच्छा** = पश्चात् (बाद में), **दीह संसारे** = दीर्घ संसार में, **परिपडदि** = गिरता है (भ्रमण करता है)।

अर्थ :- यह मेरा पुत्र है, यह मेरी स्त्री है, यह मेरा धन-धान्य है, इस प्रकार की तीव्र आकांक्षा (इच्छा, मोहासक्ति) के कारण यह जीव धर्म बुद्धि (धर्म भावना) को छोड़ देता है, जिससे दीर्घ संसार में भटकता है।

मिथ्या मान्यता से संसार भ्रमण

मिच्छोदयेण जीवो, णिंदंतो जेण्ह भासिदं धम्मं ।
कुधम्मकुलिंग कुतित्थं, मण्णंतो भमदि संसारे ॥ 32॥

जीव कोई मिथ्यात्व कर्म का, उदय प्राप्त कर जिन भगवान।
उनके द्वारा कहे धर्म की, निन्दा करता फिरे महान॥
जो कुधर्म को या कुलिंग को, या कुतीर्थ को माने जीव।
वह होकर अज्ञानी प्राणी, भ्रमण करे संसार अतीव॥३२॥

अन्वयार्थ :- **जीवो** = संसारी जीव, **मिच्छोदयेण** = मिथ्यात्व के उदय से, **जेण्हभासिदं** = जिनेन्द्र भगवान द्वारा भाषित, **धम्मं** = धर्म की, **णिंदंतो** = निन्दा करता हुआ, **कुधम्म कुलिंग कुतित्थं** = कुधर्म, कुलिंग और कुतीर्थ को, **मण्णंतो** = मानता हुआ, **संसारे भमदि** = संसार में भ्रमण करता है।

अर्थ :- संसारी जीव मिथ्यात्व कर्म के उदय से जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कहे गये धर्म की निन्दा करता है तथा कुधर्म, कुलिंग और कुतीर्थ को मानता (पूजता) है, इसलिये संसार में भटकता है।

मकारत्रय का सेवन संसार भ्रमण का कारण

हंतूण जीवरासिं, महुमंसं सेविऊण सुरपाणं ।
परदव्व परकलत्तं, गहिऊण य भमदि संसारे ॥ 33॥

जीव राशि की हिंसा करके, माँस मधु करता सेवन।
पिये शराब और पर वस्तू, का भी जो करता अर्जन॥
पर स्त्री का ग्रहण करे जो, इस जग का अज्ञानी जीव।
भ्रमण करे संसार सिन्धू में, कर्म बन्ध जो करे अतीव॥३३॥

अन्वयार्थ :- (संसारी जीव), **जीवरासिं** = जीव राशि को, **हंतूण** = मारकर, **महुमंसं** = मधु (शहद) मांस और, **सुरपाणं** = मदिरापान, **सेविऊण** = सेवन कर, **य** = और, **परदव्व परकलत्तं** = पराये धन तथा पराई स्त्री को, **गहिऊण** = ग्रहण कर, **संसारे भमदि** = संसार में परिभ्रमण करता है।

अर्थ :- संसारी प्राणी जीव राशि के घातक, मधु, मांस और मदिरा के सेवन तथा पराये धन, पर

स्त्री के हरण से अर्जित पाप के कारण संसार में भटकता रहता है।

इन्द्रिय विषयों के कारण संसार में पतन

जत्तेण कुणइ पावं, विसयणिमित्तं अहण्णिसं जीवो।
मोहंधयारसहिओ तेण दु, परिपडदि संसारे ॥ 34॥

यह संसारी जीव लोक में, रहा मोह तम से संयुक्त।
पंचेन्द्रिय विषयों के हेतू, रहे अहिर्निश,प्रयत्न से युक्त॥
नित्य निरन्तर पाप करे जो, इस कारण संसार असार।
में पड़ता है हो अज्ञानी, तीन लोक में बारम्बार॥३४॥

अन्वयार्थ :- मोहंधयार सहिओ = मोहरूपी अन्धकार से युक्त, **जीवो** = जीव, **अहण्णिसं** = दिन-रात, **विसय णिमित्तं** = इन्द्रिय विषयों के लिये, **जत्तेण** = **यत्नपूर्वक, पावं कुणइ** = पाप करता है, **तेण दु** = इसलिए, **संसार परिपडदि** = संसार में गिरता है।

अर्थ :- मोह रूपी अन्धकार से अन्धा हुआ यह जीव दिन-रात इन्द्रिय विषयों के निमित्त प्रयत्न पूर्वक पाप करता रहता है, इसलिये संसार में भटकता है।

चौरासी लाख योनियों के भेद

णिच्चिदरधादु सत्त य, तरु-दस-वियलिंदियेसु छच्चेव ।
सुर णिरय तिरिय चउरो, चोद्दस मणुवे सदसहस्सा ॥35॥

नित्य निगोद इतर पृथ्वी जल, अग्नी वायू कायिक जीव।
सात-सात लख वनस्पती के, जीव कहे,दश लाख अतीव॥
विकलेन्द्रिय के लाख है, दो-दो,चार-चार पशु नारक देव।
चौदह लाख जातियाँ नर की, लाख चौरासी रहें सदैव॥३५॥

अन्वयार्थ :- णिच्चिदरधादु = नित्यनिगोद, इतर निगोद धातु अर्थात् (पृथ्वी, जल, अग्नि, और वायु कायिक) इन में से प्रत्येक की, **सत्त सदसहस्सा** = सात लाख, **य** = और, **तरु** = वनस्पति काय की, दस **सदसहस्सा** = दस लाख, **वियलिंदियेसु** = विकलेन्द्रिय (द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय) की, **छच्चेव सदसहस्सा** = छह लाख, **सुरणिरयतिरिय** = देव, नारकी और तिर्यंच (पंचेन्द्रिय), **चउरो सदसहस्सा** = (प्रत्येक की) चार लाख, **मणुवे** = मनुष्यों की, **चोद्दस सहसहस्सा** = चौदह लाख (इस तरह कुल चौरासी लाख योनियाँ हैं)।

अर्थ :- नित्य निगोद, इतर निगोद और धातु (पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक और वायुकायिक) इनमें से प्रत्येक प्रकार के जीव की सात-सात लाख (अर्थात् 42 लाख), वनस्पतिकायिक की दश लाख, विकलेन्द्रिय (द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रय) में से प्रत्येक की दो-दो लाख (अर्थात् 6 लाख), देव , नारकी और पंचेन्द्रिय तिर्यंच की चार-चार लाख (अर्थात् 12 लाख) और मनुष्य

Aakriti

की चौदह लाख। इस प्रकार जीवों की कुल 84 लाख योनियाँ हैं । (42+10+6+12+14 =84)

संसार में सुख-दुःख होते ही हैं

संजोग विप्पजोगं, लाहालाहं सुहं च दुक्खं च ।
संसारे भूदाणं, होदि हु माणं तहावमाणं च ॥36॥

जीवों को संसार में रहकर, नियम से होता है संयोग।
और वियोग लाभ होता है, या अलाभ का होता योग॥
सुख और दुख भी पाते प्राणी, और प्राप्त हो मानापमान।
करता है परिणमन जीव यह, ऐसा कहते हैं भगवान॥३६॥

अन्वयार्थ :- **संसारे** = संसार में, **भूदाणं** = प्राणियों को, **संजोगविप्पजोगं** = संयोग, वियोग, **च** = और, **लाहालाहं** = लाभ, अलाभ, **सुहं च दुक्खं** = सुख और दुःख, **तहा** = तथा, **माणं च अवमाणं** = मान और अपमान, **हु होदि** = अवश्य ही प्राप्त होते हैं ।

अर्थ :- संसार में सभी प्राणियों को संयोग-वियोग, लाभ-अलाभ, सुख-दुःख तथा मान-अपमान नियम से प्राप्त होते हैं।

निश्चय नय से जीव का संसार भ्रमण नहीं

कम्म णिमित्तं जीवो, हिंडदि संसारघोरकांतारे ।
जीवस्स ण संसारे, णिच्छय णयेण कम्म णिम्मुक्का॥37॥

कर्मों का पाकर निमित्त यह, भ्रमण करें संसारी जीव।
इस संसार सघन वन में जो, घूमें काल अनादि अतीव॥
निश्चय नय से कर्म रहित है, होता ना इसका संसार।
मुक्त कर्म जो कर्म से जानो, जैनागम का है ये सार॥३७॥

अन्वयार्थ :- **जीवो** = जीव, **कम्म णिमित्तं** = कर्म के निमित्त से, **संसार-घोरकांतारे** = संसाररूपी भयानक वन में, **हिंडदि** = भ्रमण करता है (किन्तु), **जीवस्स** = जीव के, **संसारो ण** = संसार नहीं है (क्योंकि वह परमार्थतः), **कम्म णिम्मुक्को** = कर्मों से रहित है।

अर्थ :- यद्यपि जीव कर्मों के निमित्त से संसार रूपी भयानक वन में भटकता रहता है किन्तु यथार्थ में (निश्चय नय से) आत्मा के संसार नहीं है, अर्थात् वह कर्मों से रहित है।

हेयोपादेय जीव का कथन

संसार मदिक्कंतो, जीवोवादेय मिदि वि चिंतिज्जो ।
संसार-दुहक्कंतो, जीवो सो हेयमिदि विचिंतिज्जो ॥38॥

अतिक्रांत संसार से प्राणी, रहा ग्रहण करने के योग्य।
ऐसा चिन्तन श्रेष्ठ कहा, विपरीत और सब रहा अयोग्य॥

Aakriti

इस संसार के दु:खों से हैं, जो आक्रान्त लोक के जीव।
हेय छोड़ने योग्य रहे वह, ऐसा चिन्तन करो सजीव ॥३८॥

अन्वयार्थ :- संसारमदिक्कंतो = जिसने संसार को पार कर लिया है (वह), **जीवोवादेयं** = जीव उपादेय है, **इदि**= ऐसा, **विचिंतिज्जो** = चिन्तवन करना चाहिये (तथा), **संसार दुहक्कंतो** = जो संसार के दु:खों से आक्रान्त है, **सो जीवो** = वह जीव, **हेयं** = हेय है, **इदि विचिंतिज्जो** = ऐसा चिन्तवन करना चाहिये ।

अर्थ :- जो जीव संसार से पार हो गया है वह उपादेय है, और जो संसार के दु:खों से आक्रान्त है (घिरा हुआ है) वह हेय है, अर्थात् ध्यान योग्य नहीं है, ऐसा चिन्तवन करना चाहिये ।

लोक और उसके भेद

जीवादि पयत्थाणं, समवाओ सो णिरुच्चये लोगो ।
तिविहो हवेइ लोगो, अहमज्झिम उड्ढभेएण ॥39॥

है जीवादि पदार्थों का जो, एकत्रित समूह समवाय।
लोक शब्द से है निरुक्त वह, जैनागम में लोक कहाय॥
अधो मध्य अरु ऊर्ध्वलोक के, भेद से गाया तीन प्रकार।
दिव्य देशना देकर जिनवर, किए जगत जन का उपकार ॥३९॥

अन्वयार्थ :- जीवादिपयत्थाणं = जीवादि पदार्थों का (जो), **समवाओ** = समुदाय है, **सो** = वह, **लोगो** = लोक, **णिरुच्चये** = कहलाता है , **लोगो** = लोक, **अहमज्झिम** = अधोलोक, मध्यलोक और, **उठ्ढभेएण** = ऊर्ध्वलोक के भेद से, **तिविहो हवेइ** = तीन प्रकार का होता है ।

अर्थ :-जीवादि छह द्रव्यों के समुदाय को लोक कहते हैं, और वह अधोलोक, मध्यलोक और ऊर्ध्वलोक के भेद से तीन प्रकार का है ।

तीनों लोकों की संरचना

णिरया हवंति हेट्ठा, मज्झे दीवंबुरासयोसंखा ।
सग्गो तिसट्ठि भेओ, एत्तो उड्ढं हवे मोक्खो ॥ 40॥

अधोलोक में नरक बताए, मध्य लोक में संख्यातीत।
द्वीप समुद्रों का वर्णन है, जैनागम से होय प्रतीत॥
ऊर्ध्व लोक में स्वर्ग बताए, त्रेसठ पटलों के भी भेद।
इसके आगे मोक्ष कहा है, रहें जीव जहाँ हो नि:खेद ॥४०॥

अन्वयार्थ :- णिरया = नरक, **हेट्ठा हवंति** = अधोलोक में हैं, **मज्झे** = मध्यलोक में, **असंखा दीवंबुरासयो** = असंख्यात द्वीप और समुद्र हैं, **सग्गो** = स्वर्गों के, **तिसट्ठि भेओ** = त्रेसठ भेद (पटल) हैं, **एत्तो उड्ढं** = इससे ऊपर, **मोक्खो हवे** = मोक्ष है ।

अर्थ :- नरक अधोलोक में हैं, मध्यलोक में असंख्यात द्वीप और समुद्र हैं, ऊर्ध्वलोक में स्वर्गों के त्रेसठ भेद (पटल) हैं, इससे ऊपर मोक्ष है ।

स्वर्गों के त्रेसठ पटल

इगतीस सत्त चत्तारि, दोण्णि एक्केक्क छक्क चदुकप्पे।
तित्तिय एक्केक्के दय, णामा उडुआदि तेसट्ठी ॥ 41 ॥

स्वर्ग युगल पहले में इकतिस, द्वितिय युगल में जानो सात।
ब्रह्म युगल में चार पटल हैं, लान्तव युगल में दो विख्यात॥
शुक्र शतार युगल में इक-इक, आनतादि में छह पहिचान।
तीन-तीन ग्रैवेयक में इक-इक, आगे सब त्रेसठ हैं मान॥४१॥

अन्वयार्थ :- इगतीस = (सौधर्म ऐशान स्वर्ग के) इकतीस पटल, **सत्त** = (सानतकुमार माहेन्द्र के) सात, चत्तारि (ब्रह्म ब्रह्मोत्तर के) चार, **दोण्णि** = (लान्तव कापिष्ठ के) दो, **एक्केक्क** = (शुक्र, महाशुक्र, शतार, सहस्सार का) एक-एक, **चदुकप्पे** = (आनत, प्राणत, आरण, अच्युत) चार कल्पों में , **छक्क** = छह, **तित्तय** = (नव अनुदिश और ऊर्ध्व ग्रैवेयक के) तीन-तीन, **एक्केक्क** = (नव अनुदिश और पाँच अनुत्तर का) एक-एक, **उडु आदि** = ऋतुआदि, **इंदय णामा तेसट्ठी** = इन्द्रक नामक त्रेसठ पटल होते हैं ।

अर्थ :- इकतीस, सात, चार, दो, एक-एक, चार कल्पों में छः तीन-तीन के तीन तथा इसके आगे एक पटल है । इस प्रकार ऋतु (ऋजु) आदि इन्द्रक नामक त्रेसठ पटल (विभाग) हैं ।

उपयोगों का फल

असुहेण णिरय तिरियं, सुह उवजोगेण दिविज णर सोक्खं।
सुद्धेण लहइ सिद्धिं, एवं लोगं वि चिंतिज्जो ॥ 42 ॥

अशुभोपयोग के द्वारा प्राणी,नरक तिर्यंच गति को पाय।
शुभोपयोग से देव मनुष्यों, का सुख पाकर के हर्षाय॥
शुद्धोपयोग से मोक्ष प्राप्त हो, तीन लोक में अपरम्पार।
इस प्रकार लोक की रचना, के स्वरूप का करो विचार॥४२॥

अन्वयार्थ - असुहेण = अशुभ भाव से, **णिरयतिरियं** = नरक और तिर्यंच गति प्राप्त करता है, **सुहउवजोगेण** = शुभ उपयोग से, **दिविजणरसोक्खं** = स्वर्ग और मनुष्यगति के सुख प्राप्त करता है और, **सुद्धेण** = शुद्ध उपयोग से, **सिद्धिं लहइ** = मोक्ष प्राप्त करता है, **एवं लोगं** = इस प्रकार लोक का , **विचिंतिज्जो** = चिन्तवन करना चाहिये ।

अर्थ :- अशुभ उपयोग से जीव को नरक तथा तिर्यंचगति प्राप्त होती है । शुभ उपयोग से मनुष्य तथा देवगति का सुख मिलता है एवं शुद्धोपयोग से मुक्ति की प्राप्ति होती है । इस प्रकार लोक का

Aakriti

चिन्तवन करना चाहिये।

शरीर की अशुचिता

अट्ठीहिं पडिबद्धं, मंसविलित्तं तएण ओच्छण्णं।
किमिसंकुलेहिं भरिय मचोक्खं देहं सयाकालं ॥ 43॥

बँधा हुआ जो कई हड्डियों, रहा मांस से भी जो लिप्त।
धर्म से भी आच्छादित है जो, कृमि समूह से है विक्षिप्त॥
कीड़े भरे हुए हैं जिसमें, अपवित्र यह रहा शरीर।
चिन्तन करो विषय में इसके, हे सम्यक् ज्ञानी सद्धीर॥४३॥

अन्वयार्थ :- **देहं** = यह देह, **अट्ठीहिं** = हड्डियों से, **पडिबद्धं** = बना हुआ है, **मंसविलित्तं** = मांस से लिप्त है, **तएण** = त्वचा से , **ओच्छण्णं** = ढका या मढ़ा हुआ है, **किमिसंकुलेहिं** = कीट समूहों से, **भरियं** = भरा हुआ है (अतः यह देह), **सयाकालं** = सदैव, **अचोक्खं** = अपवित्र है ।

सड़न गलन शरीर का स्वभाव

दुग्गंधं बीभच्छं, कलि मल भरिदं अचेयणं मुत्तं ।
सडणप्पडण सहावं, देहं इदि चिंतये णिच्चं॥ 44॥

यह शरीर दुर्गन्ध युक्त है, और रहा वीभत्स विशेष।
कलुषित मल से भरा हुआ है, और अचेतन कहे जिनेश॥
मूर्तिक है पुद्गल से निर्मित, होने वाला है जो नाश।
ऐसा चिंतन करो हमेशा, जिससे होगा ज्ञान प्रकाश॥४४॥

अन्वयार्थ :- **देहं** = यह देह, **दुग्गंधं बीभच्छं** = दुर्गन्धमय है, वीभत्स है, **कलिमलभरिदं** = गन्दे मल से भरा हुआ है, **अचेयणं** = अचेतन है, **मुत्तं** = मूर्तिक है, **सडप्पडण सहावं** = सड़ना गलना इसका स्वभाव है, **इदि णिच्चं** = इस प्रकार सदा, **चिंतये** = चिन्तवन करना चाहिये ।

शरीर सप्तधातुमय है

रसरुहिर मंस मेदट्ठी, मज्जसंकुलंमुत्तपूय-किमिबहुलं ।
दुग्गंध मसुचि चम्ममय मणिच्च, मचेयणं पडणं॥ 45॥

यह शरीर रस रुधिर माँस युत, मेदा हड्डी मज्जावान।
इत्यादिक जो सप्त धातुएँ, इनसे संयुत रहा प्रधान॥
मूत्र पीव कृमियों से पूरित, दुर्गन्धित अपवित्र विशेष।
है अनित्य जो रहा अचेतन, चर्ममयी नश जाए अशेष॥४५॥

अन्वयार्थः- **रसरुहिरमंस** = रस, रुधिर, मांस, **मेदट्ठी मज्जसंकुलं** = चर्बी, अस्थि, मज्जा से भरा हुआ है, **मुत्तपूयकिमिबहुलं** = (इसमें) मूत्र, मवाद और कृमि की बहुलता है, **दुग्गंधं** =

दुर्गन्धमय है, **असुचि** = अपवित्र है, **चम्ममयं** = चर्ममय है, **अणिच्चं** = अनित्य है, **अचेयण** = अचेतन है (और), **पडणं** = पतनशील (नाशवान) है ।

अर्थ :- यह शरीर रस, रुधिर, मांस, मेदा, हड्डी, मज्जा आदि सप्त धातुओं से व्याप्त है । मूत्र, पीव और कृमियों की इसमें बहुलता है । अतः यह अपवित्र, दुर्गन्धित चर्ममय अस्थिर, अचेतन और नाशवान है ।

देहातीत आत्मा की शुद्धता का चिन्तवन

देहादो वदिरित्तो, कम्म विरहिओ अणंत सुह णिलओ ।
चोक्खो हवेइ अप्पा, इदि णिच्चं भावणं कुज्जा ॥ 46 ॥

निश्चय नय से जीव रहा है, अष्ट कर्म से पूर्ण विहीन।
मूर्त विशद पुद्गल शरीर से, भी है पूर्ण रूप से हीन॥
सुखानन्त की निलय है सच्ची, आतम भाई ये पहिचान।
करो भावना ऐसी हरदम, जीव का तब होगा कल्याण॥४६॥

अन्वयार्थ :- **अप्पा** = आत्मा, **देहादो वदिरित्तो** = देह से भिन्न है, **कम्मविरहिओ** = कर्मों से रहित है, **अणंत सुहणिलओ** = अनन्त सुख का धाम है, **चोक्खो हवेइ** = शुद्ध है, **इदि** = ऐसी, **णिच्चं भावणं** = भावना सदा, **कुज्जा** = करनी चाहिये ।

अर्थ :- देह से भिन्न, कर्मों से रहित, अनन्त सुख का धाम आत्म-तत्व ही शुद्ध/प्रशस्त है, ऐसी भावना सदा भानी चाहिये ।

कर्मास्रव के कारण

मिच्छत्तं अविरमणं, कसाय जोगा य आसवा होंति ।
पण पण चउ तिय भेदा, सम्मं परिकित्तिदा समए ॥47 ॥

पाँच कहे मिथ्यात्व पाँच हैं,अविरति भाई यह पहिचान।
चार कषाएँ योग तीन हैं, जिनसे आस्रव होय महान॥
किया गया है जैनागम में, इसका वर्णन भली प्रकार।
ऐसा चिंतन करो जीव हे !, अपने मन से बारम्बार॥४७॥

अन्वयार्थ :- **मिच्छत्तं अविरमणं** = मिथ्यात्व, अविरति, कसाय **जोगा य** = कषाय और योग (ये), **आसवा होंति** = आस्रव होते हैं (इनके क्रमशः), **पण पण चउ** = पाँच-पाँच, चार और , **तिय भेदा** = तीन भेद, **समए** = जिन शास्त्र में, **सम्मं** = सम्यक् प्रकार से, **परिकित्तिदा** = कहे गये हैं।

अर्थ :- मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग रूप परिणाम कर्मास्रव के कारण हैं। इनके क्रमशः पाँच-पाँच, चार और तीन भेद जिनागम में सम्यक् प्रकार से कहे गये हैं। भेद रूप से भावास्रव के 57 भेद होते हैं।

Aakriti

मिथ्यात्व और अविरति के भेद

एयंत विणय विवरिय, संसय मण्णाणमिदि हवे पंच ।
अविरमणं हिंसादी, पंचविहा हवइ णियमेण ॥ 48॥

हैं एकान्त विनय संशय अरु, कहा विपरीत और अज्ञान।
यह मिथ्यात्व पाँच कहलाए, पाँच पाप भी कहे प्रधान॥
हिंसा झूठ चोरी कुशील अरु, रहा परिग्रह पंचम पाप।
अविरत पंच छोड़कर पाँचों, परमेष्ठी का करना जाप॥४८॥

अन्वयार्थ :- एयंत विणय विवरिय = एकान्त, विनय, विपरीत, **संसय मण्णाणं** - संशय और अज्ञान, **इदि** =ये, (मिथ्यात्व) **पंच हवे** = पाँच (भेद) होते हैं, **अविरमणं** = अविरति, **णियमेण** = नियम से, **हिंसादी पंचविहो** = हिंसा आदि पाँच प्रकार की , **हवइ** = होती है ।

अर्थ :- एकांत, विनय, विपरीत, संशय और अज्ञान के भेद से मिथ्यात्व के पाँच भेद हैं । हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह के भेद से अविरति (असंयम) भी पाँच भेद वाली है ।

कषाय और योग के भेद

कोहो माणो माया, लोहो इदि चउव्विहं कसायं खु ।
मण वच कायेण पुणो, जोगो तिवियप्प मिदि जाणे॥49॥

क्रोध मान मायाचारी अरु, लोभ कषाएँ जानो चार।
कही नियम से जिनके कारण, आस्रव होता बारम्बार॥
काय वचन अरु मन ये भाई, योग बताए तीन प्रकार।
विशद भाव से योग रोधकर, निज आतम का करो विचार॥४९॥

अन्वयार्थ :- कसायं = कषाय, **खु** = निश्चय से, **कोहो माणो** = क्रोध, मान, **माया लोहो** = माया, लोभ, **इदि चउव्विहं** = इस तरह चार प्रकार की है, **पुणो** = पुनः (और), **जोगो** = योग, **मणवचकायेण** = मन, वचन, काय के भेद से, **तिवियप्पं** = तीन प्रकार का है, **इदि जाणे** = ऐसा जानो।

अर्थ :- क्रोध, मान, माया और लोभ के भेद से कषाय चार प्रकार की है तथा मन, वचन और काय के भेद से योग तीन प्रकार का है ऐसा जानो।

योग के शुभाशुभ भेद

असुहेदर भेदेण दु, एक्केक्कं वण्णिदं हवे दुविहं।
आहारादी सण्णा, असुहमणं इदी विजाणेहि ॥ 50॥

योग पूर्व में कहे गये जो, रहे शुभाशुभ उनके भेद।
जैनागम में बतलाए हैं, दो योगों के यहाँ प्रभेद॥

Aakriti

आहारादिक संज्ञा संयुत, मन को जानो भली प्रकार।
अशुभ रहा मन ऐसा जानो, चिन्तन करना बारम्बार ॥५० ॥

अन्वयार्थ :- एक्केक्कं = (उन तीनों योगों में से) प्रत्येक योग, **असुहेदर भेदेण दु** = अशुभ और इतर अर्थात् शुभ के भेद से, **दुविहं** = दो प्रकार का, **वण्णिदं हवे** = बतलाया गया है, **आहारादी सण्णा** = आहारादि संज्ञा, **असुहमणं** = अशुभ मन है, **इदि विजाणेहि** = ऐसा जानो ।

अर्थ :- प्रत्येक योग शुभ और अशुभ के भेद से दो प्रकार का कहा गया है। आहार, भय, मैथुन और परिग्रह रूप संज्ञाएँ (इच्छाएँ) अशुभ मनो योग हैं ऐसा जानो ।

अशुभ भाव ही अशुभ मन है

किण्हादि तिण्ण लेस्सा, करणज सोक्खेसु-गिद्ध परिणामो।
ईसा विसाद भावो, असुह मणं त्तिय जिणा वेंति॥ 51॥

कृष्ण नील कापोत अशुभ यह, लेश्याएँ बतलाई तीन।
इन्द्रियों से उत्पन्न सुखों में, रहता है यह प्राणी लीन॥
गिद्धि रूप परिणाम ईर्ष्या, और विषाद रूप धर भाव।
रहा अशुभ मन जिनवर कहते, रहा जीव का विशद विभाव ॥५१ ॥

अन्वयार्थ :- किण्हादि = कृष्ण आदि, **तिण्ण लेस्सा** = तीन लेश्याएँ, **करणज सोक्खेसु** = इन्द्रियजन्य सुखों में, **गिद्ध परिणामो** = गृद्धता रूप परिणाम, **ईसा विसादभावो** = ईर्ष्या और विषाद रूप भाव, **असुहमणं** = अशुभ मन है, **त्तिय** = ऐसा, **जिणा वेंति** = जिनेन्द्र देव कहते हैं।

अर्थ :- कृष्ण, नील और कापोत ये तीन लेश्याएँ, इन्द्रिय सुखों में तृष्णा रूप परिणाम, ईर्ष्या तथा विषाद (शोक) भाव अशुभ मनो योग हैं ऐसा जिनेन्द्रदेव कहते हैं ।

कषाय नोकषाय रूप परिणाम अशुभ मन है

रागो दोसो मोहो, हास्सादि-णोकसाय-परिणामो।
थूलो वा सुहुमो वा, असुहमणो त्तिय जिणावेंति॥ 52॥

राग द्वेष से युक्त जीव वह, मोह से भी होता जो युक्त।
नो कषाय हास्यादि रूप है, परिणामों से भी संयुक्त॥
सूक्ष्म और स्थूल अशुभ मन, है ऐसा कहते जिनदेव।
भव्य जीव निज के हित हेतू, ऐसा चिन्तन करो सदैव ॥५२ ॥

अन्वयार्थ :- रागो दोसो मोहो = राग, द्वेष, मोह, **हास्सादी** = हास्य आदि, **णोकसाय परिणामो** = नोकषाय रूप परिणाम, **थूलो वा** = चाहे वे स्थूल हों, **सुहुमो वा** = अथवा सूक्ष्म, **असुहमणो** = अशुभ मन है , **त्ति य** = ऐसा , **जिणा वेंति** = जिनेन्द्रदेव कहते हैं ।

अर्थ :- राग, द्वेष, मोह और हास्यादि (हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद,

पुरुषवेद, नपुंसकवेद) नोकषाय रूप परिणाम चाहे वे स्थूल (तीव्र) हों अथवा सूक्ष्म (मन्द) हों अशुभ मनो योग हैं ऐसा जिनेन्द्रदेव कहते हैं ।

अशुभ वचन और अशुभ काय

भत्तित्थि राय चोर कहाओ, वयणं वियाण असुहमिदि।
बंधण छेदण मारण, किरिया सा असुह कायेत्ति ॥ 53 ॥

स्त्री राजा चोर कथा अरु,भक्त कथाएँ चार प्रकार।
अशुभ वचन कहलाते हैं ये, मन में ऐसा करो विचार॥
बन्धन छेदन मारण आदिक, क्रिया करे यह जो भी जीव।
अशुभ काय कहलाए जानो, जिससे होता बन्ध अतीव॥५३॥

अन्वयार्थ : - **भत्तित्थि** = भोजनकथा, स्त्रीकथा, **रायचोर कहाओ** = राज कथा और चोर कथा, **असुहं वयणं** = अशुभ वचन हैं, **इदि वियाण** = ऐसा जानो (तथा), **बंधण छेदण** = बाँधने, छेदने, **मारण किरिया** = और मारने की जो क्रिया है, **सा** = वह, **असुहकाय** = अशुभ काय है, **इत्ति (वियाण)** = ऐसा जानो ।

अर्थ :-भोजन कथा, स्त्री कथा, राज कथा और चोर कथा अशुभ वचन योग हैं तथा बाँधने, छेदने और मारने आदि की क्रियाओं को करना अशुभ काय योग है ऐसा जानो ।

व्रत समिति रूप शुभ परिणाम शुभ मन है

मोत्तूण असुहभावं, पुव्वत्तं णिरवसेसदो दव्वं।
वदसमिदिसीलसंजम, परिणामं सुहमणं जाणे॥ 54॥

बतलाए पूर्वोक्त द्रव्य जो, और अशुभ जो भाव विशेष।
चिन्तन मनन क्रिया के द्वारा, इन्हें छोड़कर नि:अवशेष॥
सुव्रत समिति शील अरु संयम, रूप धार के निज परिणाम।
शुभ मन होता है जीवों का, ऐसा कहते हैं भगवान॥५४॥

अन्वयार्थ:- **पुव्वत्तं** = पहले कहे हुए, **असुहभावं**= अशुभ भाव (और), **दव्वं** = अशुभ द्रव्य को, **णिरवसेसदो** = सम्पूर्ण रूप से, **मोत्तूण** = छोड़कर, **वदसमिदिसील** = व्रत, समिति, शील (और), **संजम परिणामं** = संयम परिणाम का होना, **सुहमणं** = शुभ मन है, **जाणे** = ऐसा जानो ।

अर्थ :- पूर्व में कहे हुए सर्व अशुभ भावों (राग-द्वेषादि परिणाम) और द्रव्यों (धन-धान्यादि परिग्रह) को छोड़कर जो व्रत, समिति, शील और संयम रूप परिणाम होते हैं, उन्हें शुभ मनोयोग जानना चाहिये ।

शुभ वचन और शुभ काय का कथन

संसारछेदकारण, वयणं सुह वयणमिदि जिणुद्दिट्ठं ।

जिण देवादिसु पूया, सुह कायं त्ति य हवे चेट्ठा ॥ 55 ॥

जो संसार छेद के कारण, वचन कहे शुभकार महान।
श्री जिनेन्द्र देवाधिदेव की, पूजा सच्ची रही प्रधान॥
इस प्रकार चेष्टा जो भी है ,वह कहलाती है शुभ काय।
श्री जिनेन्द्र कहते हैं ऐसा, जानो भाई योग लगाय॥५५॥

अन्वयार्थ :- संसारछेद = संसार के छेद (विनाश), **कारणवयणं** = करने में वचन हैं वे, **सुहवयणं** = शुभ वचन हैं, **इदि** = ऐसा, **जिणुद्दिट्ठं** = जिनेन्द्र भगवान ने कहा है, **य** = और, **जिणदेवादिसु** = जिनेन्द्रदेव आदि की, **पूयाचेट्ठा** = पूजा रूप चेष्टा (क्रिया), **सुहकायं** = शुभकाय, **हवेत्ति** = है ।

अर्थ :- जो वचन जन्म-मरण रूप संसार का छेद(नाश) करने में कारण हैं उन वचनों को भगवान जिनेन्द्र ने शुभ वचन कहा है तथा, जिनदेव, जिनवाणी और निर्ग्रन्थ गुरू की पूजा/भक्ति (शुभ प्रवृत्ति) करना शुभ काय अर्थात् शुभ काययोग है।

संसार परिभ्रमण कर्मास्रव के कारण

जम्मसमुद्दे बहुदोस, वीचिए दुक्ख जल चराकिण्णे।
जीवस्स परिब्भणं, कम्मासव कारणं होदि ॥ 56 ॥

दुख रूपी जलचरों से पूरित, दोष रूप लहरों से युक्त।
जन्म जरा मरणादि रूप यह, है संसार समुद्र संयुक्त॥
होता है परिभ्रमण जीव का, जिसके अन्दर बारम्बार।
कारण मूल बताया जिसका, कर्मास्रव ही अपरम्पार॥५६॥

अन्वयार्थ :- (जो वचन) **बहुदोसवीचिए** = अनेक दोष रूप तरंगों से युक्त (और), **दुक्ख जल चर** = दु:ख रूपी जलचर जीवों से, **आकिण्णे** = व्याप्त, **जम्मसमुद्दे** = जन्म (संसार) रूप समुद्र में, **जीवस्स परिब्भमणं**= जीव का परिभ्रमण, **कम्मासव कारणं** = कर्मास्रव के कारण, **होदि**= होता है।

अर्थ :- जिसमें क्षुधा-तृषादि अनेक दोष रूप तरंगें उठती हैं और जो दु:ख रूप जलचरों से व्याप्त है, ऐसे जन्म रूप समुद्र में जीव का परिभ्रमण कर्मास्रव के कारण ही होता है।

ज्ञानपूर्वक क्रिया मोक्ष का कारण

कम्मासवेण जीवो, बूडदि संसारसायरे घोरे।
जं णाणवसं किरिया, मोक्ख णिमित्तं परंपरया॥ 57॥

कर्म के आस्रव से इस जग में, रहते जो संसारी जीव।
घोर असार संसार सिन्धु में, डूबें पावें दु:ख अतीव॥
सम्यक् दर्शन ज्ञान पूर्वक, होती है जो क्रिया विशेष।

Aakriti

परम्परा से मोक्ष में कारण, हो निमित्त यह कहे जिनेश ॥५७॥

अन्वयार्थ :- जीवो= जीव, **कम्मासवेण** = कर्मास्रव के कारण, **घोरे** = घोर, **संसार सायरे** = संसार रूप सागर में, **बूडदि**= डूबता है (और), **जं किरिया** = जो क्रिया, **णाणवसं** = ज्ञानपूर्वक होती है, वह **परम्परया** = परम्परा से, **मोक्खणिमित्तं** = मोक्ष का कारण होती है।

अर्थ :- कर्मास्रव के कारण ही जीव संसार रूप भयानक सागर में डूब जाता है किन्तु जो क्रिया ज्ञानपूर्वक (संवरपूर्वक) होती है, वह परम्परा से मोक्ष का कारण होती है।

आस्रव मोक्ष का साक्षात् कारण नहीं

आसव हेदू जीवो, जम्मसमुद्दे णिमज्जदे खिप्पं ।
आसव किरिया तम्हा, मोक्ख णिमित्तं ण चिंतेज्जो ॥58॥

जीव कर्म आस्रव के कारण, जन्म रूप सागर में जान।
शीघ्र डूब जाता है भाई, ऐसा कहते हैं भगवान॥
आस्रव रूप क्रिया जो भी है, नहीं मोक्ष का है कारण।
ऐसा चिंतन करो जीव हे !, भव से होगा तव वारण॥५८॥

अन्वयार्थ :- जीवो = जीव, **आसवहेदू** = आस्रव (कर्मास्रव) के कारण, **जम्मसमुद्दे** = जन्म (संसार) समुद्र में, **खिप्पं** = शीघ्र, **णिमज्जदे** = डूब जाता है (गोते खाता है), **तम्हा** = इसलिये, **आसव किरिया** = आस्रव रूप क्रिया (जो कर्मास्रव का कारण है ऐसी क्रिया), **मोक्ख णिमित्तं ण** = मोक्ष का निमित्त (हेतु) नहीं है, **चिंतेज्जो** = (ऐसा) विचार करना चाहिये।

अर्थ :- कर्मास्रव के कारण ही जीव संसार-समुद्र में गोते खाता है, डूब जाता है। इसलिये आस्रव रूप क्रिया मोक्ष का कारण नहीं हो सकती, ऐसा चिन्तवन करना चाहिये।

परम्परा से भी आस्रव से मोक्ष नहीं

पारंपज्जाएण दु, आसव किरियाए णत्थि णिव्वाणं।
संसार गमण कारण, मिदि णिंदं आसवो जाण ॥ 59॥

आस्रव रूप क्रिया के द्वारा, परम्परा से भी निर्वाण।
हो सकता है नहीं कभी भी, ऐसे जीवों का कल्याण॥
है संसार गमन का कारण, इसीलिए हे जग के जीव !।
निन्दनीय जानो आस्रव को, इस जग में तुम सभी अतीव॥५९॥

अन्वयार्थ:- पारंपज्जाएण = परम्परा से, **दु**= भी, **आसव किरियाए** = आस्रव की कारणभूत क्रिया से, **णिव्वाणं** = निर्वाण, **णत्थि** = नहीं होता, **आसवो** = आस्रव, **संसार गमणकारणं** = संसार गमन का कारण है, **इदि** = इसलिए (इसे), **णिंदं जाण** = निन्दनीय जानना चाहिये ।

अर्थ :- कर्मों की आस्रव रूप क्रिया से परम्परा से भी मोक्ष नहीं होता, इसलिये संसार में भटकाने

वाले आस्रव को निन्दनीय (हेय, त्याज्य) समझना चाहिये ।

निश्चय से आत्मा के कर्मास्रव नहीं

पुव्वुत्तासव भेया, णिच्छय णयएण णत्थि जीवस्स ।
उहयासव णिम्मुक्कं , अप्पाणं चिंतए णिच्चं ॥ 60॥

पूर्व गाथाओं में बतलाए, हैं जो भी आस्रव के भेद।
निश्चय नय से नहीं जीव के, फिर क्यों करते हो तुम खेद॥
अत: आत्मा का नित चिन्तन, द्रव्यभाव आस्रव से हीन।
विशद करो तुम सम्यक् चिंतन, हो जाओ आतम में लीन॥६०॥

अन्वयार्थ :- **पुव्वुत्ता आसव भेया** = पहले जो आस्रव के भेद कहे गये हैं (वे), **णिच्छय णयएण** = निश्चय नय से **जीवस्स णत्थि** = जीव के नहीं हैं (इसलिये), **अप्पाणं** = आत्मा को, **उहय आसव णिम्मुक्कं** = दोनों प्रकार के आस्रवों से रहित, **णिच्चं चिंतए** = सदा विचारना चाहिये।

अर्थ :- पहले कहे गये मिथ्यात्व, अविरति आदि आस्रव के भेद निश्चय नय से जीव के नहीं हैं, इसलिये शुभ - अशुभ अथवा द्रव्यास्रव और भावास्रव दोनों प्रकार के आस्रवों से रहित आत्मा का सदैव चिन्तवन करना चाहिये।

मिथ्यात्व का निरोधक सम्यक्त्व

चल मलिण मगाढं च, वज्जिय सम्मत्त दिढ कवाडेण।
मिच्छत्तासवदार, णिरोहो होदि त्ति जिणेहि णिद्दिट्ठं ॥61॥

चल अरुमलिन अगाढ़ दोष से, रहित लोक में जो भी जीव।
दृढ़ सम्यक्त्व रूप दरवाजों, का प्रभाव भी पड़े अतीव॥
हैं मिथ्यात्व के आस्रव के जो, द्वार का हो जाता है रोध।
ऐसा कहा जिनेन्द्र देव ने, अत: जगाओ आतम बोध॥६१॥

अन्वयार्थ :- **चलमलिणं** = चल, मलिन, **च** = और, **अगाढं वज्जिय** = अगाढ़ (दोष) को छोड़कर, **सम्मत्तदिढकवाडेण** = सम्यक्त्व रूपी दृढ़ कपाटों के द्वारा, **मिच्छत्तासवदार** = मिथ्यात्व रूपी आस्रव के द्वार का, **णिरोहो होदि** = निरोध हो जाता है, **त्ति** = ऐसा, **जिणेहि णिद्दिट्ठं** = जिनेन्द्र देव ने कहा है।

अर्थ :- जो चल, मलिन और अगाढ़ रूप इन तीन दोषों से रहित है, ऐसे सम्यक्त्व रूपी सघन कपाटों से मिथ्यात्व रूप आस्रव का द्वार बन्द हो जाता है, ऐसा जिनेन्द्र भगवान ने कहा है।

आस्रव द्वार के निरोधक हेतु

पंच महव्वय मणसा, अविरमण णिरोहणं हवे णियमा।
कोहादि आसवाणं, दाराणि कसाय रहिय पलग्गेहिं ॥62॥

पंच महाव्रत युक्त सु मन से, अविरत जो बतलाए विशेष।
होय निरोध नियम से उनका, ऐसा कहते श्री जिनेश॥
क्रोधादिक चारों कषाय से, होने वाला आस्रव रोध।
कषाय रूप द्वारों के रुकते, हो जाता है पूर्ण निरोध॥६२॥

अन्वयार्थ :- पंचमहव्वयमणसा = पाँच महाव्रतों से युक्त मन से, **अविरमण णिरोहणं** = अविरति रूप आस्रव का निरोध, **णियमा हवे** = नियम से हो जाता है और, **कोहादि आसवाणं**= क्रोधादि कषाय रूप आस्रवों के, **दाराणि** = द्वार, **कसायरहिय** = कषाय के अभाव रूप, **पलग्गेहिं** = फाटकों से, **णिरोहो** = बंद हो जाते है।

अर्थ :- अहिंसादि पाँच महाव्रत रूप परिणामों से नियमपूर्वक हिंसादि पाँचों अव्रतों का आगमन (आस्रव) रुक जाता है और क्रोधादि कषाय रहित परिणामों से क्रोधादि रूप आस्रव के द्वार बंद हो जाते हैं ।

अशुभ और शुभ उपयोग के निरोधक हेतु

सुहजोगस्स पवित्ती, संवरणं कुणदि असुहजोगस्स।
सुहजोगस्स णिरोहो, सुद्धुवजोगेण संभवदि॥ 63॥

शुभ योगों की प्रवृत्ती जब, करते हैं संसारी जीव।
अशुभ योग का संवर होता, पूर्व से होता रहा अतीव॥
शुभ योगों का हो निरोध जब, इस संसार सिन्धु में जान।
है शुद्धोपयोग से सम्भव, ऐसा कहते हैं भगवान॥६३॥

अन्वयार्थ:- सुहजोगस्स = शुभ योग की , **पवित्ति** = प्रवृत्ति, **असुहजोगस्स** = अशुभयोग का, **संवरणं कुणदि** = संवर करती है (और), **सुद्धुवजोगेण**= शुद्धोपयोग के द्वारा, **सुहजोगसस** = शुभयोग का, **णिरोहो** = निरोध, **संभवदि** = होता है।

अर्थ :- शुभ योग की प्रवृत्ति (मन, वचन, काय की शुभ प्रवृत्ति) अशुभ योग का संवर करती है और शुद्धोपयोग के द्वारा शुभयोग का निरोध (संवर) हेाता है।

ध्यान संवर का कारण

सुद्धुवजोगेण पुणो, धम्मं सुक्कं च होदि जीवस्स ।
तम्हा संवरहेदू, झाणे त्ति विचिंतए णिच्चं ॥ 64॥

पुनः जीव को शुद्धोपयोग से, धर्म ध्यान हो शुक्ल ध्यान।
जिसके द्वारा भवि जीवों का, निश्चय से होता कल्याण॥
इस कारण संवर का हेतू, मुख्य रूप से माना ध्यान।
चिंतन करो हमेशा प्राणी, पाओ तुम भी पद निर्वाण॥६४॥

Aakriti

अन्वयार्थ :- **पुणो** = पुनः **सुद्धुवजोगेण** = शुद्धोपयोग के द्वारा, **जीवस्स** = जीव के, **धम्मं च सुक्कं** = धर्मध्यान और शुक्लध्यान, **होदि** = होता है, **तम्हा** = इसलिये, **झाणे** = ध्यान, **संवरहेदू** = संवर का कारण है, **त्ति** = ऐसा, **णिच्चं विचिंतए** = सदा विचार करना चाहिये ।

अर्थ :- शुद्धोपयोग के द्वारा जीव के धर्मध्यान और शुक्ल ध्यान होता है, इसलिये ध्यान (शुद्धोपयोग) संवर का कारण है, ऐसा सतत् चिन्तवन करना चाहिये ।

निश्चय से आत्मा संवर रहित

जीवस्स ण संवरणं, परमट्ठएण सुद्धभावादो ।
संवरभाव विमुक्कं , अप्पाणं चिंतए णिच्चं ॥ 65॥

परम शुद्ध निश्चय नय का शुभ,कथन किए हैं जिन तीर्थेश।
संवर होता नहीं जीव को, जैनागम का कथन विशेष॥
शुद्ध भाव से सहित जीव है, संवर भाव से होता हीन।
नित्य विचार करो हे भाई ! होके धर्म ध्यान में लीन॥६५॥

अन्वयार्थ :- **परमट्ठएण** = परमार्थ (निश्चय नय) से, **जीवस्स** = जीव के, **संवरणं ण** = संवर नहीं है (क्योंकि द्रव्य दृष्टि से वह), **सुद्धभावादो** = शुद्धभाव मय है, इसलिये, **अप्पाणं** = आत्मा को, **संवरभावविमुक्कं** = संवर भाव से रहित, **णिच्चं चिंतए** = सदा विचारना चाहिये ।

अर्थ :- परमार्थ (निश्चय नय) से जीव के संवर नहीं है, क्योंकि जीव सदा शुद्धभाव वाला है, इसलिये आत्मा को सदा संवर भाव से रहित विचारना चाहिये ।

जिस कारण से संवर उसी से निर्जरा भी

बंधपदेशग्गलणं, णिज्जरणं इदि जिणेहिं पण्णत्तं ।
जेण हवे संवरणं, तेण दु णिज्जरणमिदि जाण ॥ 66॥

कर्म प्रदेश बँधे पूरव के, जिनका गालन हो इक देश।
कर्म निर्जरा कहलाए वह, ऐसा कहते वीर जिनेश॥
जिन भावों से संवर होता, उन्हीं से कर्म निर्जरा होय।
ऐसा जानो इस प्रकार से, श्री जिनेन्द्र कहते हैं सोय॥६६॥

अन्वयार्थ :- **बंधपदेसग्गलणं** = बंधे हुए कर्म प्रदेशों का गलना, **णिज्जरणं** = निर्जरा है, **इदि** = ऐसा, **जिणेहिं पण्णत्तं** = जिनेन्द्र देव ने कहा है, **जेण** = जिस कारण से, **संवरणं हवे** = संवर होता है, **तेण दु** = उसी कारण से, **णिज्जरणं** = निर्जरा होती है, **इदि जाण** = ऐसा जानो ।

अर्थ :-आत्म प्रदेशों के साथ बंध को प्राप्त पुद्गल वर्गणा रूप कर्म प्रदेशों का गलना निर्जरा है। आत्मा के जिन व्रत, समिति, गुप्ति आदि रूप परिणामों से संवर होता है उन्हीं से कर्मों की निर्जरा होती है । ऐसा जानना चाहिये ।

Adkirti

निर्जरा के सविपाक अविपाक भेद

सा पुण दुविहा णेया, सकालपक्का तवेण कयमाणा।
चदु गदियाणं पढमा, वय जुत्ताणं हवे विदिया॥ 67॥

पुनः निर्जरा दो प्रकार की, जानो हे संसारी जीव!।
प्रथम स्वकाल प्राप्त द्वितिय तप, द्वारा होती श्रेष्ठ अतीव॥
प्रथम चार गति के जीवों को, होती किए प्रभू व्याख्यान।
और दूसरी होय निर्जरा, प्राणी जो होते व्रतवान॥६७॥

अन्वयार्थः- **पुण**= फिर, **सा** = वह (निर्जरा), **दुविहा णेया** = दो प्रकार की जाननी चाहिये, **सकालपक्का** = स्वकाल पकना (कर्मों का उदयकाल आने पर स्वयं होने वाली निर्जरा) तथा दूसरी, **तवेण कयमाणा** = तप के द्वारा की जाने वाली (स्थिति पूर्ण होने से पहले ही तप के द्वारा कर्मों का झड़ाना), **पढमा** = पहली निर्जरा, **चदुगदियाणं** = चारों गतियों के जीवों के होती है तथा, **विदिया**= दूसरी निर्जरा, **वयजुत्ताणं** = व्रतों से युक्त जीवों (व्रतियों) के ही होती है।

अर्थ :- वह निर्जरा दो प्रकार की जाननी चाहिये, स्वकाल पकना, तथा दूसरी तप के द्वारा की जाने वाली । पहली निर्जरा चारों गतियों के जीवों के होती है तथा दूसरी निर्जरा व्रतों से युक्त जीवों के ही होती है ।

श्रावक और मुनि धर्म के भेद

एयारस दसभेयं, धम्मं सम्मत्त पुव्वयं भणियं ।
सागा रणगाराणं , उत्तम सुहसंपजुत्तेहिं ॥68॥

श्रावक धर्म है सम्यक् दर्शन, पूर्वक ग्यारह प्रतिमा रूप।
अब अनगार धर्म का भाई, यहाँ बताते हैं स्वरूप॥
दश धर्मों से युक्त कहा है, श्री जिनेन्द्र ने महति महान।
उत्तम सुख सम्पन्न कहे जो, किया जिनागम में व्याख्यान॥६८॥

अन्वयार्थ :- (जिनेन्द्र भगवान ने), **उत्तमसुह संपजुत्तेहिं** = उत्तम (आत्मिक) सुख से युक्त, **सागारणगाराणं** = सागारों और अनगारों का, **धम्मं** = धर्म (क्रमशः), **एयारस दसभेयं** = ग्यारह और दशभेद वाला, **भणितं** = कहा है (वह धर्म), **सम्मत्त पुव्वयं** = सम्यक्त्व पूर्वक होता है।

अर्थ :- अपने श्रेष्ठ आत्मसुख में लीन रहने वाले जिनेन्द्र भगवान ने श्रावक और मुनियों का धर्म क्रमशः ग्यारह (ग्यारह प्रतिमा) और दश भेद (दश धर्म) वाला कहा है जो कि सम्यक्त्व पूर्वक होता है।

श्रावक के ग्यारह धर्म (प्रतिमाएँ)

दंसण वय सामाइय, पोसह सच्चित्त रायभत्ते य ।

बह्मारंभ-परिग्गह, अणुमण मुद्दिट्ठ देसविरदे य ॥ 69 ॥

दर्शनव्रत सामायिक प्रोषध, और सचित्त त्याग व्रतवान।
रात्री भुक्ती त्याग ब्रह्मचर्य, आरम्भ त्याग व्रती गुणवान॥
परिग्रह अरु अनुमति के त्यागी, श्रावक उद्दिष्ट त्यागी जान।
जैनागम में देशव्रती के, बतलाए ग्यारह स्थान॥६९॥

अन्वयार्थ :- **दंएणवयसामाइय** = दर्शन, व्रत, सामायिक, **पोसहसच्चित** = प्रोषध, सचित्त त्याग, **रायभत्तेय** = रात्रि भुक्ति त्याग, **बह्मारंभ परिग्गह** = ब्रह्मचर्य, आरंभ और परिग्रह त्याग, **अणुमणं उद्दिट्ठ** = अनुमति और उद्दिष्ट त्याग, **देवविरदे य** = ये देशविरत (श्रावक) धर्म के ग्यारह भेद हैं।

अर्थ :- दर्शन, व्रत, सामायिक, प्रोषध, सचित्त त्याग, रात्रिभुक्ति त्याग, ब्रह्मचर्य, आरंभ त्याग, परिग्रह त्याग, अनुमति त्याग और उद्दिष्ट त्याग ये देशव्रती श्रावक के ग्यारह भेद हैं ।

मुनियों के दशधर्म

उत्तम खममद्दवज्जव, सच्चसउच्चं च संजमं चैव ।
तवचागमकिंचण्हं, बह्मा इदि दसविहं होदि ॥ 70॥

उत्तम क्षमा मार्दव उत्तम, उत्तम आर्जव महति महान।
उत्तम शौच सत्य भी उत्तम, संयम उत्तम रहा प्रधान॥
उत्तम सुतप त्याग भी उत्तम, उत्तम आकिन्चन पहिचान।
उत्तम ब्रह्मचर्य शुभ जानो, मुनी धर्म के दश स्थान॥७०॥

अन्वयार्थ :- **उत्तमखम** = उत्तम क्षमा, **मद्दवज्जव** = मार्दव, आर्जव, **सच्चसउच्चं च** = सत्य, शौच, **संजमं चैव** = और इसी प्रकार संयम, **तवचाग मकिंचण्हं** = तप, त्याग, आकिंचन्य और, ब्रह्मा = ब्रह्मचर्य, **इदि** = ये, **दसविहं होदि** =(मुनि धर्म के) दश भेद हैं।

अर्थ :- उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिंचन और ब्रह्मचर्य ये दश भेद मुनि धर्म के हैं।

उत्तम क्षमा धर्म

कोहुप्पत्तिस्स पुणो, बहिरंगं जदि हवेदि सक्खादं।
ण कुणदि किंचि वि कोहो, तस्स खमा होदिधम्मो त्ति ॥71॥

क्रोध की उत्पत्ती का कोई, कारण भी यदि मिले विशेष।
बहिरंग कारण भी साक्षात् हो, और अन्य कोई अवशेष॥
जो कोई किंचित् भी अपने, मन में क्रोध नही उपजाय।
उस सम्यक्त्वी प्राणी के ही, उत्तम क्षमा धर्म कहलाय॥७१॥

Aakriti

अन्वयार्थ :- पुणो= पुनः, **कोहुप्पत्तिस्स** = क्रोध की उत्पत्ति का, **जदि** = यदि, **सक्खादं** = साक्षात्, **बहिरंगं हवेदि** = बहिरंग (कारण) हो, फिर भी जो, **किंचिवि कोहो** = तनिक (थोड़ा) भी क्रोध, **ण कुणदि** = नहीं करता, **तस्स** = उसके, **खमा धम्मो त्ति** = क्षमा धर्म, **होदि** = होता है।

अर्थ :- क्रोध उत्पन्न करने वाले बाह्य कारणों के मिलने पर भी जो किंचित् मात्र भी क्रोध नहीं करता, उसको उत्तम क्षमा धर्म होता है।

उत्तम मार्दव धर्म

कुल रूवजादि बुद्धिसु, तव सुद सीलेसु गारवं किंचि ।
जो ण वि कुव्वदि समणो, मद्दव धम्मं हवे तस्स ॥ 72 ॥

जो अनगार रूप कुल जाती, पाए सुबुद्धी अपरम्पार।
सम्यक् तप श्रुत और शील को, धारण करता भली प्रकार॥
नहीं कभी किंचित् भी मन में, करता है जो भी अभिमान।
उत्तम मार्दव धर्म का धारी, होता है जग में इन्सान॥७२॥

अन्वयार्थ :- जो समणो = जो श्रमण, **कुल रूप जादि बुद्धिसु** = कुल, रूप, जाति, बुद्धि, **तव सुद सीलेसु** = तप, श्रुत और शील के विषय में, **किंचि वि** = किंचित मात्र भी, **गारवं** = गर्व, **ण कुव्वदि** = नहीं करता है, **तस्स** = उसके, **मद्दव धम्मं** = मार्दव धर्म, **हवे** = होता है।

अर्थ :- जो श्रमण (ज्ञानी) कुल, रूप, जाति, बुद्धि , तप, शास्त्र और शीलादि के विषय में किंचित मात्र भी गर्व (मद, मान, स्मय) नहीं करता उसके मार्दव धर्म होता है।

उत्तम आर्जव धर्म

मोत्तूण कुडिलभावं, णिम्मल हिदएण चरदि जो समणो ।
अज्जव धम्मं तइयो, तस्स दु संभवदि णियमेण ॥ 73 ॥

मन के सभी कुटिल भावों को, स्वयं छोड़ता जो अनगार।
निर्मल हृदय से करें आचरण, निर्मल भावों के अनुसार॥
नियम से उस मानव के अन्दर, सम्भव होय तीसरा धर्म।
उत्तम आर्जव कहे जिनेश्वर, होय विनाशी अपने कर्म॥७३॥

अन्वयार्थ :- जो समणो = जो श्रमण , **कुडिलभावं मोत्तूण** = कुटिल भाव को छोड़कर, **णिम्मल हिदएण** = निर्मल हृदय से, **चरदि**= आचरण करता है, **तस्स दु** = उसके तो, **णियमेण** = नियम से, **तइयो** = तृतीय, **अज्जवधम्मं** = आर्जव धर्म, **संभवदि** = होता है।

अर्थ :- जो श्रमण कुटिल भावों को छोड़कर निर्मल हृदय से आचरण करता है उसके नियम से तीसरा (आर्जव) धर्म होता है।

Aakriti

उत्तम सत्य धर्म

परसंतावय कारण, वयणं मोत्तूण सपर हिद वयणं ।
जो वददि भिक्खु तुरियो, तस्स दु धम्मो हवे सच्चं ॥74॥

वीतरागी मुनिवर जो औरों, को दुख के जो कारण जान।
गर्हित वचन छोड़ देते हैं, जीवों को दुखकारी मान॥
स्व-पर हितकारी वचनों को, कथन करें जो जीव विशेष।
सत्य धर्म उनको ही होता, कहते हैं यह जिन तीर्थेश॥७४॥

अन्वयार्थ :- **जो भिक्खु** = जो भिक्षु, **पर संतावय** = दूसरों को संताप, **कारणवयणं** = उत्पन्न करने वाले वचन को, **मोत्तूण** = छोड़कर, **सपरहिदवयणं** = स्व और पर का हित करने वाले वचन, **वददि** = बोलता है, **तस्सदु** = उसके, **तुरिया**=चतुर्थ, **सच्चं धम्मो**= सत्य धर्म, **हवे** = होता है।

अर्थ :- पर को संताप (क्लेश) उत्पन्न करने वाले वचनों को छोड़कर जो भिक्षु स्व-पर हितकारी वचन बोलता है, उसके चौथा (सत्य) धर्म होता है।

उत्तम शौच धर्म

कंखाभावणिवित्तं, किच्चा वेरग्ग भावणा जुत्तो ।
जो वट्टदि परम मुणी, तस्स दु धम्मो हवे सोच्चं ॥ 75॥

इच्छा भावों की निवृत्ती, कर देते हैं श्रेष्ठ मुनीश।
होकर के वैराग्य युक्त जो, करें प्रवर्तन सर्व ऋशीष॥
शौच धर्म उनके ही होता, जैनागम से होता ज्ञात।
जैन धर्म की महिमा भाई, तीन लोक में है विख्यात॥७५॥

अन्वयार्थ :- **जो परममुणी** = जो परम मुनी, **कंखाभावणिवित्तिं** = कांक्षा भाव से निवृत्ति, **किच्चा** = करके, **वेरग्ग भावणा जुत्तो** = वैराग्य भावना से युक्त, **वट्टदि** = वर्तता है, **तस्स दु** = उसके, **सोच्चं धम्मो** = शौच धर्म, **हवे** = होता है।

अर्थ :- कांक्षा भाव से मुक्त होकर, वैराग्य भावना से भरपूर जो परम मुनि वर्तता (व्यवहार करता) है, उसके शौच धर्म होता है।

उत्तम संयम धर्म

वद समिदि पालणाए, दंडच्चाएण इंदिय जएण ।
परिणम माणस्स पुणो, संजम धम्मो हवे णियमा ॥ 76॥

सम्यक् दर्शन सहित महाव्रत, और समिति करते पालन।
काय वचन मन रूप दण्ड त्रय, त्याग करें ऋषिगण मुनिजन॥
इन्द्रिय जय परिणमन युक्त जो, मुनिवर गाए हैं अनगार।
उत्तम संयम धर्म नियम से, उनको होता मंगलकार॥७६॥

Adkriti

अन्वयार्थ :- पुणो = पुनः, **दंडच्चाएण** = दण्ड (मन, वचन, काय की प्रवृत्ति) का त्याग कर, **इंदिय जयेण** = इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर, **वदसमिदि पालणाए** = व्रत और समितियों के पालन में, **परिणममाणस्स** = प्रवृत्ति करने वाले मुनि के, **णियमा** = नियम से, **संजमधम्मो** = संयम धर्म, **हवे** = होता है।

अर्थ :- मन, वचन, काय की प्रवृत्तिरूप दण्ड का त्यागकर, इंद्रियों पर विजय प्राप्तकर, व्रत और समितियों के पालन में प्रवृत्ति करने वाले मुनि के नियम से संयम धर्म होता है।

उत्तम तप धर्म

विसय कसाय विणिग्गह, भावं काऊण झाण सज्झाए ।
जो भावइ अप्पाणं, तस्स तवं होदि णियमेण ॥ 77॥

विषय कषायों का निग्रह कर, जो मुनिवर करते हैं ध्यान।
ज्ञानाध्ययन रूपी भावों को, पाकर करें स्वयं कल्याण॥
निज आतम को ध्याते हैं जो, ऐसे मुनिवर महति महान।
नियम से उत्तम तप को पाते, ऐसा कहते हैं भगवान॥७७॥

अन्वयार्थ :- जो = जो (मुनि), **झाणसज्झाए** = ध्यान और स्वाध्याय के द्वारा, **विसय कसाय** = विषय और कषाय के, **विणिग्गहभावं** = निग्रहरूप भाव को, **काऊण** = करके (निग्रह करके), **अप्पाणं भावदि** = आत्मा की भावना करता है, **तस्स**= उसके, **णियमेण** = नियम से, **तवं होदि** = तप (धर्म) होता है।

अर्थ :- स्वाध्याय और ध्यान के बल से जो मुनि पंचेन्द्रिय के विषयों तथा क्रोधादि कषायों का निग्रह करके आत्म-भावना भाता है, उसके तप धर्म होता है।

उत्तम त्याग धर्म

णिव्वेगतियं भावइ, मोहं चइऊण सव्वदव्वेसु ।
जो तस्स हवे चागो, इदि भणिदं जिण वरिंदेहिं ॥ 78॥

चेतनाचेतन सब द्रव्यों में, मोह का जो करते परित्याग।
भाते हैं निर्वेग भावना, मन वच तन से तज अनुराग॥
त्याग धर्म होता उन मुनि को, ऐसा कहते हैं जिनदेव।
त्याग धर्म में प्रीति जगे यह, विशद भावना रखो सदैव॥७८॥

अन्वयार्थ :- जो = जो (मुनि), **सव्वदव्वेसु** = सभी द्रव्यों में , **मोहं चइऊण**= मोह का त्याग करके, **णिव्वेगतियं** = तीन प्रकार के निर्वेद (संसार, शरीर तथा भोगों से वैराग्य) की, **भावइ** = भावना करता है, **तस्स** = उस (मुनि के), **चागो हवे** = त्याग (धर्म) होता है, **इदि** =ऐसा, **जिणवरिंदेहिं** = जिनेन्द्र ने , **भणिदं** = कहा है।

Aakriti

अर्थ :- जो मुनि समस्त परद्रव्यों से मोह (ममत्व) छोड़कर, संसार, शरीर और भोगों से निर्वेद (उदासीन) भाव रखता है, उसके त्याग धर्म होता है। ऐसा जिनेन्द्र भगवान ने कहा है।

उत्तम आकिंचन्य धर्म

होऊण य णिस्संगो, णियभावं णिग्गहित्तु सुहदुहदं।
णिद्दंदेण दु वट्टदि, अणयारो तस्स किंचण्हं ॥ 79॥

बाह्याभ्यन्तर सर्व परिग्रह, का कर देते हैं परित्याग।
सुख देने वाले निज भावों, का भी पूर्ण रूप कर त्याग॥
जो निर्द्वन्द भाव को धारण , करने वाले हैं अनगार।
वे आकिन्चन धर्म के धारी, कहे लोक में मंगलकार॥७९॥

अन्वयार्थ :- (जो), **अणयारो** = अनगार (मुनि), **णिस्संगो होऊण** =निस्संग (परिग्रह रहित)होकर, **य**= और, **सुहदुहदं** = सुख-दुःख देने वाले, **णियभावं** = अपने भावों को, **णिग्गहित्तु** = निग्रह करके, **णिद्दंदेण दु**= निर्द्वन्दता (समता भाव) पूर्वक, **वट्टदि** = रहता है, प्रवर्तन करता है, **तस्स** = उस (मुनि) के, **अकिंचण्हं (हवे)** = आकिंचन्य (धर्म) होता है।

अर्थ :- सर्व प्रकार के परिग्रह (द्विविध संग) से निःसंग होकर तथा सुख-दुःखदायक कर्मजनित निज परिणामों (इष्टानिष्ट विकल्प) का निग्रह करके जो अनगार निर्द्वन्दतापूर्वक प्रवर्तन करता है, उसके आकिंचन्य धर्म होता है।

उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म

सव्वंगं पेच्छंतो, इत्थीणं तासु मुयदि रदिभावं ।
सो बह्मचेरभावं, सक्कदि खलु दुद्धरं धरिदुं ॥ 80॥

जो सम्पूर्ण स्त्रियों के सब, अंगों को भी देख ऋशीष।
उनके विषय में दुर्भावों को, भी जो तजते जैन मुनीश॥
बड़ा कठिन है नियम से वह भी, ब्रह्मचर्य के हैं जो भाव।
ऐसे ब्रह्मचर्य धारी का ,रहा लोक में विशद प्रभाव॥८०॥

अन्वयार्थ :- (जो मुनि), **इत्थीणं**= स्त्रियों के, **सव्वंगं पेच्छंतो**= सब अंगों को देखते हुए भी, **तासु**= उन स्त्रियों में, **रदिभावं मुयदि** = रागभाव छोड़ देता है, **सो** = वह (मुनि), **खलु**= निश्चय ही, **दुद्धरं बह्मचेरभावं**= दुर्धर ब्रह्मचर्य को, **धरिदुं सक्कदि** = धारण करने में समर्थ होता है (धारण करता है) ।

अर्थ :- स्त्रियों के सर्व अंगों को देखता हुआ भी जो साधक (श्रमण) अपने परिणामों में रागभाव नहीं करता वह पवित्रात्मा दुर्धर ब्रह्मचर्य का धारक होता है।

Aakriti

मुनि धर्म से निर्वाण की प्राप्ति

सावय धम्मं चत्ता, जदि धम्मे जो हु वट्टए जीवो ।
सो चेव जादि मोक्खं, धम्मं इदि चिंतए णिच्चं ॥ 81॥

सम्यक् श्रावक धर्म छोड़ कर, इस जग में रहते जो जीव।
मुनी धर्म में करें प्रवर्तन, ज्ञानी वे कहलाए अतीव॥
पा लेता है शीघ्र मोक्ष वह, ऐसा कहते जिन तीर्थेश।
विशद हमेशा धर्म का चिन्तन, भाव सहित तुम करो विशेष॥८१॥

अन्वयार्थ :- जो हु = जो, **जीवो**= जीव, **सावय धम्मं**= श्रावक धर्म को, **चत्ता** = छोड़कर, **जदि धम्मे**= मुनियों के धर्म में, **वट्टए** = प्रवृत्त होता है, **सो चेव** = वही, **मोक्खं जादि**= मोक्ष प्राप्त करता है, **इदि** = इस प्रकार, **णिच्चं** = निरंतर, **धम्मं चिंतए** = धर्म का चिन्तवन करना चाहिये।

अर्थ :- जो जीव श्रावकधर्म का त्यागकर (पारकर) मुनिधर्म में प्रवृत्ति करता है, उसे मोक्ष प्राप्त हुए बिना नहीं रहता। अर्थात् उसे मोक्ष की प्राप्ति अवश्य होती है। इस प्रकार निरंतर चिन्तवन करना चाहिये ।

निश्चय से द्विविध धर्मरहित आत्मा

णिच्छय णएण जीवो, सागा रणगार धम्मदो भिण्णो ।
मज्झत्थ भावणाए, सुद्धप्पं चिंतए णिच्चं ॥ 82॥

निश्चय नय से यह संसारी, जीव धर्म धारी सागार।
और धर्म जो श्रेष्ठ बताया, रहित धर्म से है अनगार॥
इसीलिए माध्यस्थ भावना, को धारण करके शुभ भाव।
नित्य शुद्ध आतम का चिन्तन, करने से हो विशद प्रभाव॥८२॥

अन्वयार्थ :- जीवो= जीव, **णिच्छयणएण**= निश्चय नय से, **सागारणगार धम्मदो**= सागार और अनगार धर्म से, **भिण्णो** = भिन्न है (इसलिए), **मज्झत्थ भावणाए** = इन दोनों में मध्यस्थ भावना से (माध्यस्थ भाव रखकर), **सुद्धप्पं** = शुद्धात्मा का, **णिच्चं चिंतए** = निरन्तर चिन्तवन करना चाहिए।

अर्थ :- जीव निश्चय नय से श्रावकधर्म और मुनिधर्म से भिन्न है, अतः इन दोनों धर्मों में माध्यस्थ भाव रखकर एकमात्र शुद्धात्मा का चिन्तवन निरन्तर करना चाहिए।

बोधि की प्राप्ति अत्यंत दुर्लभ

उप्पज्जदि सण्णाणं, जेण उवाएण तस्सुवायस्स ।
चिंता हवेइ बोही, अच्चंतं दुल्लहं होदि ॥ 83॥

Aakriti

जिस उपाय के द्वारा ज्ञानी, सम्यक् ज्ञान करें सम्प्राप्त।
उस उपाय की चिंता करना, बोधी है यह कहते आप्त॥
जो अत्यन्त लोक में दुर्लभ, होता है यह कहे जिनेश।
दुर्लभ सम्यक् ज्ञान लोक में, ऐसा चिन्तन करो विशेष॥८३॥

अन्वयार्थ :- जेण उवाएण = जिस उपाय से, **सण्णाणं उप्पज्जदि** = सम्यग्ज्ञान उत्पन्न होता है, **तस्स उवायस्स** = उस उपाय का, **चिंता** = चिन्तवन करना, **बोही हवेइ** = बोधि है (वह बोधि), **अच्चंतं दुल्लहं** = अत्यंत दुर्लभ, **होदि** = है ।

अर्थ :- जिस उपाय से सम्यग्ज्ञान उत्पन्न होता है उस उपाय से चिन्तन करना बोधि है, वह बोधि अत्यन्त दुर्लभ है।

स्वद्रव्य उपादेय है ऐसा निश्चय, सम्यग्ज्ञान है

कम्मुदयज पज्जाया, हेयं खाओवसमिय णाणं खु ।
सग्ग दव्वमुवादेयं, णिच्छित्ति य होदि सण्णाणं ॥ 84॥

कर्मोदय से होने वाली, सम्यक् निश्चय नय अनुसार।
रागद्वेष आदिक पर्यायों, और क्षयोपशम ज्ञानाधार॥
रहा छोड़ने योग्य सभी यह, सम्यक् ज्ञान स्वभाव महान।
और द्रव्य है इसीलिए वह, उपादेय है जगत प्रधान॥८४॥

अन्वयार्थ :- खु= वस्तुतः, **कम्म उदयज पज्जाया** = कर्मोदय जनित पर्यायें तथा, **खाओवसमियणाणं हेयं** = क्षायोपशमिक ज्ञान हेय है, **य**= और, **सगदव्वं उवादेयं** = स्वद्रव्य उपादेय है **णिच्छित्ति** = ऐसा निश्चय (निर्णय) होना, **सण्णाणं** = सम्यग्ज्ञान है।

अर्थ :- क्षायोपशमिक ज्ञान तथा कर्मोदय जनित पर्यायें परद्रव्य हैं इसलिये त्याज्य हैं। एक निज द्रव्य ही जीव के लिये उपादेय है, ऐसा निश्चय होना सम्यग्ज्ञान है।

केवल आत्मा ही स्वद्रव्य है

मूलुत्तरपयडीओ, मिच्छत्तादी असंख लोग परिमाणा ।
परदव्वं सगदव्वं, अप्पा इदि णिच्छयणएण ॥ 85॥

निश्चय नय से मिथ्यात्वादिक, असंख्यात हैं लोक प्रमाण।
मूल और उत्तर प्रकृतियाँ, हैं पर द्रव्य कहे भगवान॥
निज आतम स्वद्रव्य कही है, ऐसा जानो तुम हे भ्रात!।
जैनागम में वर्णित पावन, कथन लोक में है विख्यात॥८५॥

अन्वयार्थ :- मिच्छत्तादी = मिथ्यात्व आदि, **असंखलोग परिमाणा** = असंख्यात लोक प्रमाण, **मूल-उत्तर पयडीओ** = (कर्मों की), मूल तथा उत्तर प्रकृतियाँ, **परदव्वं** = पर द्रव्य हैं, **अप्पा सगदव्वं**

= आत्मा (ही) स्वद्रव्य है, **इदि णिच्छयणएण** = ऐसा निश्चय नय से (कहा जाता है) ।

अर्थ :- मिथ्यात्व आदि असंख्यात लोक प्रमाण कर्मों की आठ मूल और एक सौ अड़तालीस, उत्तर प्रकृतियाँ पर द्रव्य हैं, आत्मा ही स्वद्रव्य है, ऐसा निश्चय नय से जानना चाहिए।

निश्चय में हेयोपादेय का विकल्प नहीं

एवं जायदि णाणं, हेयमुवादेय णिच्छये णत्थि ।
चिंतिज्जइ मुणि बोहिं, संसार विरमणट्ठे य ॥ 86॥

इस प्रकार निश्चय नय से है, हेय और उपादेय प्रधान।
शुभ संकल्प विकल्पों द्वारा, हो उत्पन्न क्षयोपशम ज्ञान॥
नहीं आत्म स्वरूप नहीं है, इसीलिए संसार विरक्त।
मुनिवर को बोधी का चिंतन, करना चहिए यह हर वक्त॥८६॥

अन्वयार्थ :- **एवं**= इस प्रकार (हेयोपादेय का), **णाणं जायदि** = ज्ञान होता है, **णिच्छये** = निश्चय नय से, **हेयं उपादेयं** = हेय और उपादेय रूप संकल्प, विकल्पों को, **जायदि** = उत्पन्न करने वाला, **णाणं**= क्षायोपशमिक ज्ञान, **णत्थि** = (आत्म-स्वरूप) नहीं है, इसलिये **संसार विरमणट्ठेय** = संसार के विरक्त, **मुणि** = मुनि को, **बोहिं** = बोधि का, **चिंतिज्जइ** = चिन्तवन करना चाहिये ।

अर्थ :- इस प्रकार निश्चय नय से हेय और उपादेय रूप संकल्प विकल्पों को उत्पन्न करने वाला क्षायोपशमिक ज्ञान निजी स्वभाव नहीं है, इसलिये संसार से विरक्त मुनि को निज स्वभाव क्षायिक केवलज्ञान रूपी बोधि का चिन्तवन करना चाहिये ।

अनुप्रेक्षाएँ ही प्रतिक्रमण आदि हैं

बारस अणुवेक्खाओ, पच्चक्खाणं तहेव पडिकमणं ।
आलोयणं समाहिं, तम्हा भावेज्ज अणुवेक्खं ॥ 87॥

ये बारह अनुप्रेक्षाएँ ही, प्रतिक्रम हैं प्रत्याख्यान।
यही आलोचना कही जिनेश्वर, इसी तरह आगे व्याख्यान॥
यही समाधी जानो पावन, अतः सभी हे श्रद्धावान!।
अनुप्रेक्षाओं का ही चिंतन, नित्य निरन्तर करो महान॥८७॥

अन्वयार्थ :- **बारस अणुवेक्खाओ** = ये बारह अनुप्रेक्षाएँ ही, **पच्चक्खाणं** = प्रत्याख्यान, **पडिकमणं** = प्रतिक्रमण, **आलोयणं** = आलोचना, **तहेव** = तथा, **समाहिं** = समाधि हैं, **तम्हा** = इसलिये (इन), **अणुवेक्खं** = अनुप्रेक्षाओं की (निरंतर), **भावेज्ज** = भावना करनी चाहिये ।

अर्थ :- इस प्रकार ये बारह भावनायें ही प्रत्याख्यान, प्रतिक्रमण, आलोचना तथा समाधि (ध्यान) रूप हैं, इसलिये निरन्तर इन्हीं का चिन्तवन करना चाहिये।

Aakriti

रात-दिन सामायिक प्रतिक्रमण करें

रत्तिदिवं पडिकमणं , पच्चक्खाणं समाहिं सामइयं ।
आलोयणं पकुव्वदि, जदि विज्जदि अप्पणो सत्ती ॥ 88 ॥

हे मुमुक्षु अपनी निज शक्ती, जितनी है उसके अनुसार।
प्रतिक्रमण दिन रात करो तुम, प्रत्याख्यान भी मंगलकार॥
धारण करो समाधी पावन, सामायिक भी करो महान।
भली भांति आलोचन करना, विशद रखो तुम इसका ध्यान॥८८॥

अन्वयार्थ :- जदि = यदि, **अप्पणो सत्ती** = अपने में शक्ति, **विज्जदि** = है, (तो) **रत्तिदिवं** = दिन-रात, **पडिकमणं** = प्रतिक्रमण, **पच्चक्खाणं** = प्रत्याख्यान, **समाहिं** = समाधि (ध्यान), **सामइयं** = सामायिक(और), **आलोयणं** = आलोचना, **पकुव्वदि** = करनी चाहिए ।

अर्थ :- यदि अपने में आत्म-शक्ति विद्यमान है तो रात-दिन (सतत्) प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, समाधि, सामायिक और आलोचना करते रहना चाहिए ।

जो भी मोक्ष गए बारह भावना के चिन्तवन से

मोक्खगया जे पुरिसा, अणाइ कालेण बारसणुवेक्खं ।
परिभाविऊण सम्मं, पणमामि पुणो पुणो तेसिं ॥ 89 ॥

काल अनादी से जितने भी, पुरुष पाए हैं पद निर्वाण।
इन बारह अनुप्रेक्षाओं को, सभी भाए हैं करके ध्यान॥
इसीलिए हम विधी पूर्वक, भाते हैं वह बारम्बार।
सिद्ध अनन्तों के चरणों में, वन्दन करते हैं शतबार॥८९॥

अन्वयार्थ :- जे पुरिसा = जो पुरुष, **अणाइकालेण** = अनादिकाल से (आज तक), **मोक्ख गया** = मोक्ष गये हैं (वे), **बारसणुवेक्खं** = बारह अनुप्रेक्षाओं का, **सम्मं** = सम्यक प्रकार, **परिभाविऊण** = चिन्तवन करके (गये हैं), **पुणो पुणो** = बारम्बार (मैं), **तेसिं पणमामि** = उन्हें प्रणाम करता हूँ ।

अर्थ :- अनादिकाल से लेकर आज तक जितने भी महापुरुष मोक्ष को प्राप्त हुए हैं, वे सब बारह भावनाओं के भाने से ही प्राप्त हुए हैं, अतः मैं इन भावनाओं को बार-बार प्रणाम करता हूँ ।

अनुप्रेक्षा माहात्म्य

किं पलविएण बहुणा, जे सिद्धा णरवरा गए काले ।
सिज्झिहदि जे वि भविया, तज्जाणह तस्स माहप्पं ॥ 90 ॥

बहुत अधिक कहने से क्या है, यह संक्षेप में रहा कथन।
भूतकाल में सिद्ध हुए जो, किए हैं अनुप्रेक्षा चिंतन॥

Aakriti

और भविष्य में होंगे जो भी, इन अनुप्रेक्षाओं से भ्रात।
है माहात्म्य विशद इस जग में, ऐसा है जग में विख्यात॥९०॥

अन्वयार्थ :- **बहुणा** = बहुत, **पलविएण** = प्रलाप करने से, **किं** = क्या (लाभ है), **गए काले** = भूतकाल में , **जे णरवरा** = जो महापुरुष, **सिद्धा** = सिद्ध हुए हैं (और), **जे वि भविया** = जो भी भव्यजन (भविष्य में), **सिज्झिहदि** = सिद्ध होंगे, **तत्** = उसे, **तस्स** = उन (अनुप्रेक्षाओं) का ही, **माहप्पं जाणह** = माहात्म्य जानो ।

अर्थ :- बहुत कहने से क्या प्रयोजन संक्षेप में इतना ही समझो कि भूतकाल में जो आज तक सिद्ध हुए हैं और भविष्य काल में भी जो भव्य सिद्ध होंगे ।वह सब बारह अनुप्रेक्षाओं का ही माहात्म्य है, ऐसा जानो ।

भावना भाने का फल

इदिणिच्छयववहारं, जं भणियं कुन्दकुन्द मुणिणाहे ।
जो भावइ सुद्धमणो सो पावइ परम णिव्वाहं ॥ 91॥

इस प्रकार सब मुनियों के भी, साथ में कुन्द कुन्द आचार्य।
निश्चय अरु व्यवहार कहा शुभ, उसे भाएँ जो मन से आर्य॥
परम मोक्ष पद को पाता वह, ऐसा कहते जिन तीर्थेश।
'विशद' भाव से अनुप्रेक्षा का, चिन्तन करना नित्य विशेष॥९१॥

अन्वयार्थ :- **इदि** = इस प्रकार, **कुन्दकुन्द मुणिणाहे** = कुन्दकुन्द मुनिनाथ ने, **णिच्छय ववहारं** = निश्चय और व्यवहार नयों से, **जं भणियं** = जो कुछ कहा है (भावनाओं का जो वर्णन किया है), **सुद्धमणो** = शुद्ध मन से उसे, **जो भावइ** = जो भाता है, (चिन्तवन करता है), **सो** = वह, **परम णिव्वाणं** = परम निर्वाण को, **पावइ** = प्राप्त करता है ।

अर्थ :- इस प्रकार मुनियों के नाथ आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी ने निश्चय और व्यवहार पूर्वक बारह भावनाओं का जो विशद प्रतिपादन किया है, उसे जो शुद्ध मन से भाता है वह परम निर्वाण को प्राप्त करता है।

छियालीस मुलगुणों को पाते, अनन्त चतुष्टय के धारी।
ऋषभादिक चौबीस जिनेश्वर, रहे लोक में अविकारी॥
काल अनादी मैट रहे हैं, भवि जीवों केा विशद भ्रमण।
ऐसे श्री महावीर प्रभु पद, मेरा बारम्बार नमन॥

लघु द्रव्य संग्रह

मंगलाचरण

छद्दव्व पंच अत्थी, सत्तवि तच्चाणि णव पयत्था य।
भंगुप्पाय धुवत्ता, णिद्दिट्ठा जेण सो जिणो जयउ ॥1॥

चौपाई

नव पदार्थ पञ्चास्तिकाय, तत्त्व सप्त छह द्रव्य बताय।
व्यय उत्पाद ध्रौव्य तक अंत, निर्देशे जिनवर जयवंत॥

अन्वयार्थ - **छद्दव्व** - छः द्रव्य, **पंच अत्थी**- पाँच अस्तिकाय, **सत्त तच्चाणि**- सात तत्त्व, **वि**- और, **णव पयत्था**- नौ पदार्थ, **य** - और, **भंगुप्पाय धुवत्ता**- व्यय, उत्पाद, ध्रौव्य, **जेण**- जिन्होंने कहे हैं, **सो**- वह, **जिणो**-जिनेन्द्र देव! **जयउ**- जयवंत हों।

भावार्थ - जिन्होंने विशद छः द्रव्यों, पाँच अस्तिकाय, सात तत्त्व और नौ पदार्थों तथा उत्पाद व्यय-ध्रौव्य का निर्देश दिया है वे श्री जिनेन्द्र देव जयवंत हों।

' द्रव्य और अस्तिकाय'

जीवो पुग्गल धम्माऽधम्मागासो तहेव कालो य ।
दव्वाणि कालरहिया, पदेश बाहुल्लदो अत्थिकाया य ॥2॥

चौपाई

पुद्गल जीव काल आकाश, धर्माऽधर्म द्रव्य छह खास।
काल द्रव्य बिन अस्तिकाय, बहु प्रदेश जिनके कहलाय॥

अन्वयार्थ - **जीवो**-जीव, **पुग्गल**- पुद्गल, **धम्माऽधम्मागासो**- धर्म, अधर्म और आकाश, **तहेव य** - यह और, **कालो**- काल, **दव्वाणि**- द्रव्यें हैं, **य** - और, **काल रहिया**- काल के अतिरिक्त, **पदेश बाहुल्लदो**- बहुप्रदेशी होने से, **अत्थिकाया** - अस्तिकाय हैं

भावार्थ -जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म आकाश और काल ये छः द्रव्यें हैं। काल के अतिरिक्त शेष पाँच द्रव्य बहुप्रदेशी होने के कारण अस्तिकाय हैं।

नव पदार्थ

जीवाजीवासवबंध, संवरो णिज्जरा तहा मोक्खो।
तच्चाणि सत्त एदे, सपुण्ण पावा पयत्थ य ॥3॥

चौपाई

जीव अजीव अरु आस्रव बंध, संवर निर्जर और अबंध।
सप्त तत्त्व ये पुण्य अरु पाप, नव पदार्थ भाषे जिन आप॥

Aakriti

अन्वयार्थ - जीवाजीवास्रव-जीव,अजीव, आस्रव, **बंध**- बंध, **संवरो**- संवर **णिज्जरा** -निर्जरा, **तहा**- और, **मोक्खो**- मोक्ष, **एदे**- यह, **सत्त तच्चाणि य**- सात तत्त्व हैं और, **सपुण्य पावा** -पुण्य और पाप सहित, **पयत्थ**- नव पदार्थ हैं।

भावार्थ -जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये सात तत्त्व हैं। ये सात तत्त्व पुण्य और पाप सहित नौ पदार्थ होते हैं। ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है।

जीवों का लक्षण और भेद

जीवो होई अमुत्तो, सदेहमित्तो सचेयणा कत्ता ।
भोत्ता सो पुण दुविहो, सिद्धो संसारिओ णाणा॥4॥

चौपाई

जीव अमूर्तिक देह प्रमाण, कर्त्ता भोक्ता चेतनवान।
सिद्ध संसारी दोय प्रकार, संसारी है बहु प्रकार॥

अन्वयार्थ - जीवो-जीव, **अमुत्तो**- अमूर्तिक, **सदेहमित्तो**- स्वदेह प्रमाण, **सचेयणा**-सचेतन, **कत्ता** -कर्त्ता, **भोत्ता**- भोक्ता है, **सो**- वह, **दुविहो**- दो प्रकार के हैं, **सिद्धो**-सिद्ध,**पुण संसारिओ**-और संसारी, **णाणा होई** - अनेक प्रकार के होते हैं।

भावार्थ -जीव अमूर्तिक, स्वदेह प्रमाण, सचेतन, कर्त्ता और भोक्ता है। जीव दो प्रकार के हैं- सिद्ध और संसारी। संसारी जीव अनेक प्रकार के हैं।

निश्चय से जीव का लक्षण (अमूर्तिकपना)

अरस-मरूव-मगंधं, अव्वत्तं चेयणागुण -मसद्दं।
जाण आलिंगग्गहणं, जीव-मणिदिट्ठ-संट्ठाणं॥5॥

चौपाई

रूप शब्द रस गंध विहीन, है अव्यक्त और लिंग हीन।
चेतन गुण युत आतम ज्ञान, होता अनिर्दिष्ट संस्थान॥

अन्वयार्थ - जीवम्-जीव को, **अरसं**- रस रहित, **अरूवं**- रूप रहित, **अगन्धं** -गंध रहित, **अव्वत्तं**- अव्यक्त, **चेयणागुणमसद्दं**- चेतन गुण युक्त, **आलिंगग्गहणं**- लिंग ग्रहण से रहित, **अणिदिट्ठ**- जो निर्दिष्ट नहीं है, **संट्ठाणं**- संस्थान, **जाण**- ऐसा जानो।

भावार्थ -जीव को रस रहित, रूप सहित, गंध रहित, अव्यक्त, शब्द रहित, आलिंगग्रहण (लिंग द्वारा जिसका ग्रहण न हो सके, ऐसा) अनिर्दिष्ट संस्थान जिसका आकार निश्चित नहीं है ऐसा जानो और चेतन गुण से युक्त जानना चाहिए।

Aakriti

पुद्गलकाय का लक्षण

वण्ण-रस-गंध-फासा, विज्जंते जस्स जिणवरुद्दिट्ठा।
मुत्तो पुग्गलकाओ, पुढवी पहुदी हु सो सोढा॥6॥

चौपाई

वर्ण गंध रस फास सुजान, मूर्तिक पुद्गल को पहिचान।
पृथ्वी आदिक के छह भेद, श्री जिनेन्द्र का यह निर्देश॥

अन्वयार्थ - जस्स वण्ण-जिसमें वर्ण, **रस**- रस, **गंध**- गंध, **फासा**- स्पर्श, **विज्जते सो**- विद्यमान हैं वे, **मुत्तो**- मूर्तिक, **पुग्गलकाओ**- पुद्गलकाय, **पुढवी पहुदी**- पृथ्वी आदि के, **सोढा** -छह भेद, **हु**- निश्चय से, **जिणवरुद्दिठा**- जिनेन्द्र देव ने कहे हैं।

भावार्थ -जिसमें वर्ण, रस, गंध और स्पर्श विद्यमान हैं वे मूर्तिक पुद्गलकाय पृथ्वी आदि के भेद से छः प्रकार का (बादर-बादर, बादर, बादर-सूक्ष्म, सूक्ष्म-बादर, सूक्ष्म, सूक्ष्म-सूक्ष्म) श्री जिनेन्द्र देव ने कहा है।

पुद्गलकाय के भेद (उदाहरण)

पुढवी जलं च छाया, चउरिंदिय-विसय कम्म परमाणु।
छव्विह भेयं भणियं पुग्गल-दव्वं जिणिंदेहिं॥7॥

चौपाई

पृथ्वी जल छाया अरु चार, इन्द्रिय विषय कर्म उरधार।
अणु सहित पुद्गल के भेद, श्री जिनवर कीन्हे निर्देश॥

अन्वयार्थ - पुढवी-पृथ्वी, **जलं**- जल, **छाया**- छाया, **चउरिंदयविसय**-चार इंद्रियों के विषय, **कम्म परमाणु**- कर्म एवं परमाणु, **च**- और, **पुग्गलदव्वं**- पुद्गल द्रव्य, **छव्विहभेयं**-छः प्रकार से, **जिणिंदेहिं**- जिनेन्द्र देव ने, **भणियं** - कहे हैं।

भावार्थ -पृथ्वी, जल, छाया, (नेत्रेन्द्रिय के अतिरिक्त) चार इंद्रियों के विषय, कर्मवर्गणा और परमाणु ये छः पुद्गल द्रव्य श्री जिनेन्द्रदेव ने कहे हैं।

धर्म द्रव्य का लक्षण

गइपरिणयाण धम्मो, पुग्गल जीवाण गमण सहयारी।
तोयं जह मच्छाणं अच्छंता णेव सो णेई॥8॥

चौपाई

जीवाजीव को गति जो देय, धर्म द्रव्य जिनराज कहेय।
मछली को सहकारी तोय, बल से नहीं चलावे कोय॥

अन्वयार्थ - **जह**-जैसे, **गइपरिणयाण**- चलती हुई (गति परिणत), **मच्छाणं**- मछलियों को, **गमणसहयारी तोयं** - चलने में जल सहायक होता है, **तह**- उसी प्रकार चलते हुए, **पुग्गल जीवाण**- पुद्गल और जीव को, **गमण सहयारी**- चलने में सहायक, **धम्मो सो**- धर्म द्रव्य होता है किन्तु वह धर्म द्रव्य, **अच्छंता**- न चलते हुए जीव और पुद्गल को, **णेव णेई** - नहीं चलाता है।

भावार्थ -जैसे जल चलती हुई मछलियों को चलने में सहायक होता है उसी प्रकार धर्म द्रव्य गतिमान (चलते हुए) जीव और पुद्गल को चलने में सहायक होता है, ठहरे हुए को नहीं।

अधर्म द्रव्य का लक्षण

ठाणजुदाण अधम्मो, पुग्गल जीवाण ठाण सहयारी।
छाया जह पहियाणं, गच्छंता णेव सो धरई ॥9॥

चौपाई

सहकारी चलने को होय, द्रव्य अधर्म कहा वह सोय।
जीवाजीव ज्यों छाया पाय, बलपूर्वक ना उसे रुकाय॥

अन्वयार्थ - **जह छाया**-जैसे छाया- **ठाण जुदाण**- ठहरते हुए, **पहियाणं**- राहगीरों को, पथिकों को, **ठाण सहयारी** - ठहरने में सहायक होती है, **तह**- उसी प्रकार, **पुग्गल जीवाण**- पुद्गल और जीव को, **अधम्मो**- अधर्म द्रव्य होता है किन्तु, **सो**- वह अधर्म द्रव्य, **गच्छंता**- चलते हुए जीव और पुद्गलों को, **णेव धरई** - नहीं ठहराता है।

भावार्थ -जैसे छाया ठहरते हुए राहगीरों को ठहरने में सहायता पहुँचाती है उसी प्रकार अधर्म द्रव्य रुकते हुए जीव और पुद्गल को ठहरने में सहायता पहुँचाती है। चलते हुए को नहीं।

आकाश द्रव्य का लक्षण और भेद

अवगासदाण जोग्गं, जीवादीणं वियाण आयासं।
जेण्हं लोगागासं, अल्लोगागास-मिदि दुविहं ॥10॥

चौपाई

सब द्रव्यों को दे अवकाश, कहलाता है वह आकाश।
लोकाकाश आलोकाकाश, भेद कहे जिनवर यह खास॥

अन्वयार्थ - **जीवादीणं**- जीवादि समस्त द्रव्यों को, **अवगास**- अवकाश, **दाणजोग्गं**- देने योग्य, **जेण्हं**- जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कहा गया, **आयासं**- आकाश द्रव्य, **वियाण**- जानो तथा, **लोगागासं**- लोकाकाश, **अल्लोगागासं**- अलोकाकाश, **इदि**- इस प्रकार आकाश, **दुविहं** -दो प्रकार का है।

भावार्थ -जो जीवादि द्रव्यों को अवकाश देने वाला है वह आकाश द्रव्य है। लोकाकाश और अलोकाकाश के भेद से वह आकाश दो प्रकार का है। (छह द्रव्य युक्त लोकाकाश है इसके बाहर अलोकाकाश है)

व्यवहार और निश्चय काल का लक्षण

दव्व परियट्ट जादो, जो सो कालो हवेई ववहारो।
लोगागास पएसो, एक्केक्काणु य परमट्ठो ॥11॥

चौपाई

द्रव्यों के परिणमन से होय, व्यवहार काल कहा वह सोय।
लोकाकाश प्रदेश पर जान, निश्चय काल उसे पहचान॥

अन्वयार्थ - जो- जो, **दव्व परियट्ट**- द्रव्यों के परिवर्तन से, **जादो**- उत्पन्न होता, **सो**-वह, **ववहारो कालो**- व्यवहार काल है, **य**- और, **लोगागासपएसो**- लोकाकाश के प्रदेशों पर स्थित, **एक्केक्काणु**- एक, एक कालाणु है, **से**- वह, **परमट्ठो**- परमार्थ (निश्चय) काल है।

भावार्थ -जो द्रव्यों के परिवर्तन में सहायक परिणाम आदि लक्षण वाला है वह व्यवहार काल है और वर्तना लक्षण वाला निश्चय काल है।

काल द्रव्य के प्रदेश

लोयायास पदेसे, इक्किक्के , जे ठिया हु एक्किक्का।
रयणाणं रासीमिव, ते कालाणू असंख दव्वाणि ॥12॥

चौपाई

हर प्रदेश पर करके यत्न, कालाणू ठहरा ज्यों रत्न।
लोकाकाश में होते ज्ञात, कालाणू होते असंख्यात्॥

अन्वयार्थ - इक्किक्के - एक-एक, **लोयायासपदेसे**- लोकाकाश के प्रदेश पर, **जे रयणाणं**- जो रत्नों की, **रासमिव**- राशि के समान, **इक्किक्का**- एक-एक, **कालाणु**- काल द्रव्य के अणु, **ठिया ते हु**- स्थित हैं वे निश्चय से, **असंख्यदव्वाणि**- असंख्यात द्रव्यें हैं।

भावार्थ - जो लोकाकाश के एक-एक प्रदेश पर रत्नों की राशि के समान परस्पर भिन्न होकर एक-एक स्थित हैं वे कालाणू असंख्यात द्रव्यें हैं।

द्रव्यों का प्रदेश

संखातीदा जीवे, धम्माधम्मे अणंत आयासे।
संखादासंखदा, मुत्ति पदेसाउ संति णो काले ॥13॥

चौपाई

धर्म अधर्म जीव तक अन्त, संख्यातीत आकाश अनन्त।
तिय विध पुद्गल द्रव्य के जान, विरहित काल प्रदेश सुजान॥

अन्वयार्थ - जीवे- एक जीव में, **धम्माधम्मे**- धर्म और अधर्म द्रव्य में, **संखातीदो**- असंख्यात,

असंख्यात, **आयासे**- आकाश द्रव्य में, **अणंत**- अनंत, **मुत्ति**- मूर्तिक, **संखादासंखादा**-संख्यात असंख्यात (अनंत), **प्रदेशा**- प्रदेश होते हैं, **काले**- काल द्रव्य में प्रदेश, **णो संति**- नहीं होते (बहु प्रदेशी नहीं होता)

भावार्थ - एक जीव द्रव्य में, धर्म द्रव्य में और अधर्म द्रव्य में असंख्यात-असंख्यात प्रदेश हैं। आकाश द्रव्य में अनंत प्रदेश हैं, पुद्गल में संख्यात, असंख्यात और अनंत प्रदेश हैं काल दव्य में प्रदेश नहीं हैं, (वह कालाणू एक प्रदेश है, उसमें शक्ति अथवा व्यक्ति की अपेक्षा से बहुप्रदेशीपना नहीं है।)

प्रदेश का लक्षण

जावदियं आयासं, अविभागी पुग्गलाणु उट्टद्धं।
तं खु पदेसं जाणे, सव्वाणु-ट्ठाण दाणरिहं ॥14॥

चौपाई

गगन में अणु रुकता है एक, जिनवर कहते उसे प्रदेश।
एक प्रदेश का वह आकाश, कई अणुओं को दे अवकाश॥

अन्वयार्थ - **जावदियं**- जितना, **आयासं**- आकाश, **अविभागी**- एक अविभागी, **पुग्गलाणुउट्ठद्धं**- पुद्गल परमाणु से व्याप्त हो, **तं खु**- उसे निश्चय से, **सव्वाणुठाण**- समस्त अणुओं को स्थान, **दाणरिहं**- देने में समर्थ, **पदेशं**- प्रदेश, **जाणे**-जानो।

भावार्थ - जितना आकाश अविभागी पुद्गल परमाणु से व्याप्त (घेरा जाता) होता है। उसे सब परमाणुओं को स्थान देने में समर्थ 'प्रदेश' जानना चाहिए।

द्रव्यों में चेतन अचेतनपना

जीवो णाणी पुग्गल, धम्माधम्मायासा तहेव कालो य।
अज्जीवा जिणभणिओ, ण हु मण्णइ जो हु सो मिच्छो ॥15॥

चौपाई

ज्ञानवान होता है जीव, शेष द्रव्य कहलाएँ अजीव।
इस प्रकार कहते जिनदेव!, जो ना माने मूढ़ सदैव॥

अन्वयार्थ - **जीवो णाणी**, जीव ज्ञानी है, **पुग्गल**- पुद्गल, **धम्माधम्मायासा** - धर्म, अधर्म और आकाश, **या कालो**- और काल, **अज्जीवा**- अजीव हैं, **जिणभणिओ**- जिनेन्द्र देव ने ऐसा कहा है, **जो हु**- जो ऐसा, **ण मण्णइ सो**- नहीं मानता वह, **मिच्छाइट्ठी**- मिथ्यादृष्टि, **अस्ति**- है।

भावार्थ - जीव ज्ञानी है, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल अजीव हैं। इस प्रकार श्री जिनेन्द्र ने कहा है जो ऐसा नहीं मानता है वह मिथ्यादृष्टि है।

Aakriti

आस्रव और बंध का लक्षण

मिच्छत्तं हिंसाई, कसाय जोगा य आसवो बंधो।
सकसाई जं जीवो, परिगिण्हइ पोग्गलं विविहं॥16॥

चौपाई

हिंसादिक मिथ्यात्व कषाय, योगों से आस्रव हो जाए।
जीव कषाय सहित जो सोय, कर्मबंध पुद्गल से होय॥

अन्वयार्थ - **मिच्छत्तं**- मिथ्यात्व, **हिंसाई**- हिंसा आदि, **कसाय**- कषाय, **जोगा य**- और योग से, **आसवो**- आस्रव होता है, **जं जीवो**- जो जीव, **सकसाई**- कषाय सहित, **विविहं**- विविध प्रकार, **पोग्गलं**- कर्म पुद्गलों को, **परिगिण्हइ**- ग्रहण करता है, **बंधो अस्ति**- वह बंध है।

भावार्थ - मिथ्यात्व हिंसा आदि (अव्रत) कषाय और योगों से आस्रव होता है। कषाय सहित जीव विविध प्रकार के जिन कर्म पुद्गलों को ग्रहण करता है वह बंध है।

संवर और निर्जरा का लक्षण भेद

मिच्छत्ताई चाओ, संवर जिण भणइ णिज्जरादेसे।
कम्माण खओ सो पुण, अहिलसिओ अणहिलसिओ य17॥

चौपाई

मिथ्यात्वादि रोध से संवर, एक देश क्षय से हो निर्जर।
अभिलाषा युत होय सकाम, बिन अभिलाषा होय अकाम॥

अन्वयार्थ - **जिण**- जिनेन्द्र देव ने, **मिच्छत्ताईचाओ**- मिथ्यात्व आदि त्याग को, **संवर**-संवर **भणइ**-कहा है, **कम्माण देस**- कर्मों का एक देश, **खओ**- क्षय, **णिज्जरा**- निर्जरा कही है, **सो पुण**- वह पुनः, **अहिलसिओ**- अभिलाषा सहित (सकाम) और, **अणहिलसिओ**- अभिलाषा रहित (अकाम) दो प्रकार की है।

भावार्थ - श्री जिनेन्द्र देव ने मिथ्यात्व आदि के त्याग को संवर कहा है, कर्मों का एक देश क्षय निर्जरा है। वह निर्जरा अभिलाषा सहित (सकाम) और अभिलाषा रहित (अकाम) दो प्रकार की है।

मोक्ष का लक्षण

कम्म बंधण बद्धस्स, सब्भूदस्संत-रप्पणो।
पुण्णं तित्थयरादी, अण्णं पावं तु आगमे॥18॥

चौपाई

साता गोत्र आयु शुभ नाम, तीर्थंकर प्रकृति परिणाम।
पुण्य प्रकृतियाँ कहीं विशेष, पाप रूप हैं सभी अशेष॥

Aakriti

अन्वयार्थ - सादाऽऽउ- साता वेदनीय शुभ आयु, **णामगोदाणं**- शुभ नाम और गोत्र, **तित्थयरादी**- तीर्थंकर आदि, **पुण्णं**- पुण्य, **पयडीओ**- प्रकृतियाँ, **हवे**- हैं, **तु अण्णं**- और शेष, **पावं**- पाप प्रकृतियाँ, **आगमे**- आगम में, **भणियं**- कही हैं।

भावार्थ - साता वेदनीय, शुभ आयु, शुभ नाम, शुभ गोत्र, तीर्थंकर आदि प्रकृतियाँ पुण्य प्रकृतियाँ हैं, शेष पाप प्रकृतियाँ हैं, इस प्रकार परमागम में कहा है।

उत्पाद व्यय और धौव्य

णासइ णर पज्जाओ, उप्पज्जइ देव पज्जओ तत्थ।
जीवो स एव सव्वस्स, भंगुप्पाया धुवा एवं॥19॥

चौपाई

नर पर्याय ज्यों होय विनाश, देव सुगति में हो उत्पाद।
सब द्रव्यों में भंगुत्पाद, ध्रौव्य सुजीव होय विख्यात॥

अन्वयार्थ - णरपज्जाओ- नर पर्याय का, **णासइ**- नष्ट होना, **देव पज्जओ**- देव पर्याय का, **उप्पज्जइ**- उत्पाद होना, **तत्थ**- उस समय, **जीवो**- जीव, **एव**- वही रहता है, **एवम्**- इस प्रकार, **सव्वस्स**- सभी द्रव्यों में, **भंगुप्पाया**- व्यय, उत्पाद, **धुवा**- ध्रौव्य होता है।

भावार्थ - मनुष्य पर्याय नष्ट होती है, देव पर्याय उत्पन्न होती है और जीव वही का वही रहता है। इस प्रकार सभी द्रव्यों में उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य होता है।

वस्तु का नित्य और अनित्यपना

उत्पादप्पद्धंसा, वत्थूणं होंति पज्जय-णयेण (णएण)।
दव्वट्ठिएण णिच्चा, बोधव्वा सव्व जिणवुत्ता॥20॥

चौपाई

भंग उत्पाद पर्याय में होय, वस्तु द्रव्य से नित्य है सोय।
श्री सर्वज्ञ प्रभू जिनदेव! 'विशद' कथन युत कहें सदैव॥

अन्वयार्थ - वत्थूणं- वस्तु में, **उत्पादप्पद्धंसा**- उत्पाद व्यय, **पज्जय णयेण**- पर्याय नय से, **होंति**- होता है, **दव्वट्ठिएण**- द्रव्य दृष्टि से, **णिच्चा**- वस्तु नित्य, **बोधव्वा**- जानना चाहिए, **सव्वजिणवुत्ता**- ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है।

भावार्थ - वस्तु में उत्पाद और व्यय पर्यायनय से होता है। द्रव्य दृष्टि से वस्तु नित्य है, ऐसा जानना चाहिए श्री सर्वज्ञ जिनेन्द्र देव ने ऐसा ही कहा है।

Aakriti

राग द्वेष त्याग का निर्देश

एवं अहिगयसुत्तो, सट्ठाणजुदो मणो णिरुंभिता ।
छंडउ रायं रोसं, जइ इच्छइ कम्मणो णासं (णास) ॥21 ॥

चौपाई

कर्मनाश की हो यदि चाह, तो आतम में कर अवगाह।
मन स्थिर कर निज में लीन, रागद्वेष से होय विहीन॥

अन्वयार्थ - **जइ**- यदि, **कम्मणो णासं**- कर्म नाश की, **इच्छइ**- इच्छा है तो, **अहिगयसुत्तो**- सूत्र के ज्ञाता होकर, **एवं**- और **सट्ठाणजुदो**-स्वयं में स्थित हो, **मणो**- मन को, **णिरुंभिता**- रोककर, **रायं रोसं**- रागद्वेष को, **छंडउ**- छोड़ो।

भावार्थ - यदि कर्मों का नाश करना चाहते हो तो सूत्र के ज्ञाता होकर, स्वयं में स्थित होकर तथा मन को रोककर राग और द्वेष को छोड़ो।

आत्मध्यान का फल

विसएषु पवट्टंतं, चित्तं धारेत्तु अप्पणो अप्पा।
झायइ अप्पाणमिणं, जो सो पावेइ खलु सेयं ॥22 ॥

चौपाई

जीव विषय में रत जो होय, फिर भी मन को रोके सोय।
निज आतम से आतम ध्यान, करके सुख पावे विद्वान॥

अन्वयार्थ - **जो अप्पा**- जो आत्मा, **विसएषु**- विषयों में, **पवट्टंतं**- प्रवर्तमान होते, **चित्तं**- चित्त को (मन को), **धारेत्तु**- रोककर, **अप्पणो**- आत्मा का, **अप्पाण मिणं**- आत्मा द्वारा, **झायइ**- ध्यान करता है, **सो खलु**- वह वास्तविक, **सेयम**- श्रेय (सुख) **पावेई**- प्राप्त करता है।

भावार्थ - जो आत्मा विषयों में प्रवर्तते हुए भी मन को रोककर, अपने आत्मा को आत्मा के द्वारा ध्यान करता है, वह वास्तव में सुख प्राप्त करता है।

मोह विजयी साधु को नमन्

सम्मं जीवादीया, णच्चा सम्मं सुकित्तिदा जेहिं।
मोहगय केसरीणं, णमो-णमो ठाण साहूणं ॥23 ॥

चौपाई

जीवादिक का भली प्रकार, वर्णन किया है तत्त्व विचार।
मोह रूप गज को सिंह संत, विशद संत पद नमन अनन्त॥

अन्वयार्थ - **जीवादीया**- जीवादिक को, **सम्मं**- सम्यक् प्रकार से, **णच्चा**- जानकर, **जेहिं**-

जिन्होंने, **सम्मं सुकित्तिदा**- यथार्थ वर्णन किया, **मोहगय**- मोहरूप हाथी के लिए, **केसरीणं**- जो सिंह के, **ठाण**- समान हैं, **साहूणं**- उन साधुओं को, **णमो-णमो**-नमस्कार हो, नमस्कार हो।
भावार्थ - जीवादिक तत्त्वों को सम्यक् प्रकार से जानकर जिन्होंने उन जीवादि पदार्थों का यथार्थ वर्णन किया है, जो मोहरूपी हाथी के लिए केसरी (सिंह) के समान हैं उन साधुओं को हमारा नमस्कार हो नमस्कार हो।

ग्रंथ लेखन का निमित्त

सोमच्छलेण रइया, पयत्थ-लक्खण कराउ गाहाओ।
भव्वुवयार णिमित्तं, गणिणा सिरि णेमिचंदेण ॥24॥

चौपाई

सोम श्रेष्ठि का ले आधार, भवि जीवों का हो उपकार।
गाथाएँ गणि नेमीचंद, रचे पदार्थ के लक्षण वंत॥

अन्वयार्थ - **सोमच्छलेण**- श्री सोम श्रेष्ठि के लक्ष्य से, **भव्वुवयार**- भव्व जीवों के उपकार के, **णिमित्तं** - निमित्त से, **सिरि णेमिचंदेण**- श्री नेमिचंद, **गणिणा**- गणी (आचार्य) ने, **पयत्थ**- पदार्थों के, **लक्खण**-लक्षण, **कराउ**- करने वाली, **गाहाओ**- गाथाएँ, **रइया**- रची हैं।
भावार्थ - श्री सोम श्रेष्ठी के निमित्त से तथा जीवों के उपकार के लिए श्री नेमिचंद गणि आचार्य देव ने पदार्थों के लक्षण बतलाने वाली विशद गाथायें रची हैं।

॥ इति समाप्तम॥

भोला भाला मैं अज्ञानी, धर्म सभा में बैठ गया।
देकर सद्उपदेश गुरु ने, इस पदवी तक पहुँचाया॥
मोक्ष मार्ग की विशद राह पे, करा रहें हमे गमन।
ऐसे गुरुवर विशद् सिन्धु पद, पद मेरा बारम्बार नमन्॥

Akriti